ओशो रजनीश

शिव दर्शन

भगवान श्री रजनीश
अब केवल 'ओशो'
नाम से जाने जाते हैं।

ओशो के अनुसार उनका नाम
विलियम जेम्स के शब्द
'ओशनिक' से लिया गया है, जिसका
अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना।

'ओशनिक' से अनुभूति की व्याख्या तो होती है, लेकिन वे कहते हैं कि अनुभोक्ता के संबंध में क्या? उसके लिए हम 'ओशो' शब्द का प्रयोग करते हैं। बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक रूप से सुदूर पूर्व में भी 'ओशो' शब्द प्रयुक्त होता रहा है, जिसका अभिप्राय है: भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति, जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है।
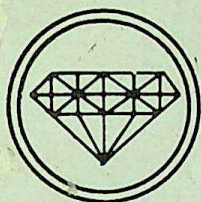
ओशो रजनीश

ओशो रजनीश परम दुर्लभ घटना हैं अस्तित्व की।

बुद्धत्व की उपलब्धि में सदियों-सदियों, जन्मों-जन्मों का एक तूफान शांत होता है—परम समाधान को प्राप्त है और अस्तित्व उसमें नये रंग लेता है। अस्तित्व का परम सौन्दर्य उसमें खिलता है, श्रेष्ठतम पुष्प विकसित होते हैं और अस्तित्वगत ऊंचाई का एक परम शिखर-एक नया गौरीशंकर-वहाँ उस व्यक्ति की परम शून्यता में निर्मित हो उठता है। ऐसा व्यक्ति अपने स्वभाव के अंतिम बिन्दु में स्थित हो जाता है, जहाँ से बुद्ध के भीतर का बुद्ध बोल उठता है, कृष्ण के भीतर का कृष्ण बोल उठता है, क्राइस्ट के भीतर का क्राइस्ट बोल उठता है, पतंजलि के भीतर का पतंजलि बोल उठता है; लाओत्से के भीतर का लाओत्से बोल उठता है और लाखों-लाखों और तूफान परम समाधान की दिशा में मार्गदर्शन पाते हैं।

डायमंड पाकेट बुक्स में

ओशो रजनीश की अलौकिक पुस्तकें

निरगुन का बिसराम (कबीर वाणी)
लिखालिखी की है नहीं (कबीर वाणी)
नहीं जोग नहीं जाप (कबीर वाणी)
गुरु गोविन्द दोउ खड़े (कबीर वाणी)
हीरा पायो गांठ गठियायो (कबीर वाणी)
मन लागो यार फकीरी में (कबीर वाणी)
तेरा साईं तुज्झ में (कबीर वाणी)
सुखिया सब संसार दुखिया दास कबीर (कबीर वाणी)
जोतहि जोति समानी (कबीर वाणी)
राम नाम रस पीजै (मीरा वाणी)
मेरे तो गिरधर गोपाल (मीरा वाणी)
राम नाम निज औषधि (दादू वाणी)
दादू सहजै देखिए (दादू वाणी)
जित देखूं तित तूं (फरीद वाणी)
कृष्ण और हँसता हुआ धर्म
कृष्ण : साधना - रहित सिद्धि
कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि
कृष्ण : गुरु भी, सखा भी
साक्षी कृष्ण और रासलीला
सम्भोग से समाधि की ओर (4 भाग)
जात हमारी ब्रह्म है (दरिया वाणी)
दरिया झूठ सो झूठ है (दरिया वाणी)
शिव दर्शन
शिव साधना
कुंडलिनी और सात शरीर
कुंडलिनी और तंत्र
कुंडलिनी जागरण और शक्तिपात
कुंडलिनी यात्रा
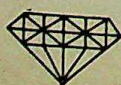
ओशो रजनीश

शिव दर्शन

संकलन : मा अमृत साधना, मा कृष्ण प्रिया
संपादन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
प्रकाशक : डायमण्ड पाकेट बुक्स, प्रा० लि०
2715, दरियागंज. नई दिल्ली - 2
मुद्रक : हिन्दुस्तान आफसैट प्रिंटर्स दिल्ली - 32
प्रथम संस्करण : 1990
मूल्य : बारह रुपये

Shiv Darshan Osho Rajneesh 12.00

अनुक्रम

क,
नों
ना

00

अनुक्रम

जीवन-सत्य की खोज की दिशा

पहला प्रवचन

दिनांक 11 सितंबर, 1974,
प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

ॐ नमः श्रीशंभवे स्वात्मानन्दप्रकाशवपुषे।
अथ
शिव-सूत्रः
चैतन्यमात्मा
ज्ञानं बन्धः।
योनिवर्गः कलाशरीरम्।
उद्यमो भैरवः।
शक्तिचक्रसंधाने विश्वसंहारः।

ॐ स्वप्रकाश आनंद-स्वरूप भगवान शिव को नमन।
(अब) शिवसूत्र (प्रारंभ)
चैतन्य आत्मा है।
ज्ञान बंध है।
योनिवर्ग और कला शरीर है।
उद्यम ही भैरव है।
शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है।

जीवन-सत्य की खोज दो मार्गों से हो सकती है। एक पुरुष का मार्ग है—आक्रमण का, हिंसा का, छीन-झपट का। एक स्त्री का मार्ग है—समर्पण का, प्रतिक्रमण का।

विज्ञान पुरुष का मार्ग है; विज्ञान आक्रमण है। धर्म स्त्री का मार्ग है; धर्म नमन है।

इसे बहुत ठीक से समझ लें।

इसलिए पूर्व के सभी शास्त्र परमात्मा को नमस्कार से शुरू होते हैं। वह नमस्कार केवल औपचारिक नहीं है। वह केवल एक परंपरा और रीति नहीं है। वह नमस्कार इंगित है कि मार्ग समर्पण का है, और जो विनम्र हैं, केवल वे ही उपलब्ध हो सकेंगे। और, जो आक्रमक हैं, अहंकार से भरे हैं; जो सत्य को भी छीन-झपटकर पाना चाहते हैं; जो सत्य के भी मालिक होने की आकांक्षा रखते हैं; जो परमात्मा के द्वार पर एक सैनिक की भांति पहुंचे हैं—विजय करने, वे हार जायेंगे। वे क्षुद्र को भला छीन-झपट लें, विराट उनका न हो सकेगा। वे व्यर्थ को भला लूटकर घर ले आयें; लेकिन जो सार्थक है, वह उनकी लूट का हिस्सा न बनेगा।

इसलिए विज्ञान व्यर्थ को खोज लेता है; सार्थक चूक जाता है। मिट्टी, पत्थर, पदार्थ के संबंध में जानकारी मिल जाती है, लेकिन आत्मा और परमात्मा की जानकारी छूट जाती है। ऐसे ही जैसे तुम राह चलते एक स्त्री पर हमला कर दो, बलात्कार हो जाएगा, स्त्री का शरीर भी तुम कब्जा कर लोगे, लेकिन उसकी आत्मा तुम्हें नहीं मिल सकेगी। उसका प्रेम तुम न पा सकोगे।

तो जो लोग आक्रमण की तरह जाते हैं परमात्मा की तरफ, वे बलात्कारी हैं। वे परमात्मा के शरीर पर भला कब्जा कर लें— इस प्रकृति पर, जो दिखाई पड़ती है, जो दृश्य है— उसकी चीर-फाड़ कर, विश्लेषण करके, उसके कुछ राज खोज लें, लेकिन उनकी खोज वैसी ही क्षुद्र होगी, जैसे किसी पुरुष ने किसी स्त्री पर हमला किया हो,

बलात्कार किया हो। स्त्री का शरीर तो उपलब्ध हो जायेगा, लेकिन वह उपलब्धि दो कौड़ी की है; क्योंकि उसकी आत्मा को तुम छू भी न पाओगे। और अगर उसकी आत्मा को न छूआ, तो उसके भीतर प्रेम की जो संभावना थी— वह जो छिपा था बीज प्रेम का— वह कभी अकुंरित न होगा। उसकी प्रेम की वर्षा तुम्हें न मिल सकेगी।

विज्ञान बलात्कार है। वह प्रकृति पर हमला है; जैसे कि प्रकृति कोई शत्रु हो; जैसे कि उसे जीतना है, पराजित करना है। इसलिए विज्ञान तोड़-फोड़ में भरोसा करता है— विश्लेषण तोड़-फोड़ है; काट-पीट में भरोसा करता है।

अगर वैज्ञानिक से पूछो कि फूल सुंदर है, तो तोड़ेगा फूल को, काटेगा, जांच-पड़ताल करेगा; लेकिन उसे पता नहीं है, कि तोड़ने में ही सौंदर्य खो जाता है। सौंदर्य तो पूरे में था। खंड-खंड में सौंदर्य न मिलेगा। हां, रासायनिक तत्व मिल जायेंगे। किन चीजों से फूल बना है, किन पदार्थों से बना है, किन खनिज और द्रव्यों से बना है— वह सब मिल जायेगा। तुम बोतलों में अलग-अलग फूल के खंडों को इकट्ठा करके लेबल लगा दोगे। तुम कहोगे— ये केमिकल्स हैं, ये पदार्थ हैं; इनसे मिलकर फूल बना था। लेकिन तुम एक भी ऐसी बोतल न भर पाओगे, जिसमें तुम कह सको कि यह सौंदर्य है, जो फूल में भरा था। सौंदर्य तिरोहित हो जायेगा। अगर तुमने फूल पर आक्रमण किया तो फूल की आत्मा तुम्हें न मिलेगी, शरीर ही मिलेगा।

विज्ञान इसीलिए आत्मा में भरोसा नहीं करता। भरोसा करे भी कैसे ? इतनी चेष्टा के बाद भी आत्मा की कोई झलक नहीं मिलती। झलक मिलेगी ही नहीं। इसलिए नहीं कि आत्मा नहीं है; बल्कि तुमने जो ढंग चुना है, वह आत्मा को पाने का ढंग नहीं है। तुम जिस द्वार से प्रवेश किये हो, वह क्षुद्र को पाने का ढंग है। आक्रमण से, जो बहुमूल्य है, वह नहीं मिल सकता।

जीवन का रहस्य तुम्हें मिल सकेगा, अगर नमन के द्वार से तुम गये। अगर तुम झुके, तुमने प्रार्थना की, तो तुम प्रेम के केंद्र तक पहुंच पाओगे। परमात्मा को रिझाना करीब-करीब एक स्त्री को रिझाने जैसा है। उसके पास अति प्रेमपूर्ण, अति विनम्र, प्रार्थना से भरा हृदय चाहिए। और जल्दी वहां नहीं है। तुमने जल्दी की, कि तुम चूके। वहां बड़ा धैर्य चाहिए। तुम्हारी जल्दी और उसका हृदय बंद हो जायेगा। क्योंकि जल्दी भी आक्रमण की खबर है।

इसलिए जो परमात्मा को खोजने चलते हैं, उनके जीवन का ढंग दो शब्दों में समाया हुआ है— प्रार्थना और प्रतीक्षा। प्रार्थना से शास्त्र शुरू होते हैं और प्रतीक्षा पर पूरे होते

हैं। प्रार्थना से खोज इसलिए शुरू होती है।

इस शास्त्र का पहला चरण है : ॐ स्वप्रकाश आनंद-स्वरूप भगवान शिव को नमन !

और अब शिव-सूत्र प्रारंभ।

इस नमन को बहुत गहरे उतर जाने दें। क्योंकि अगर द्वार ही चूक गया, तो पीछे महल की जो मैं चर्चा करूंगा, वह समझ में न आयेगी।

पुरुष को थोड़ा हटायें। आक्रमक-वृत्ति को थोड़ा दूर करें। यह समझ कुछ बुद्धि से आनेवाली नहीं है; हृदय से आनेवाली है। यह समझ तुम्हारे कुछ तर्क पर निर्भर न करेगी; यह तुम्हारे प्रेम पर निर्भर करेगी। इस शास्त्र को तुम समझ पाओगे; लेकिन वह समझ ऐसी न होगी जैसे कोई गणित को समझता है। वह समझ ऐसी होगी, जैसे कोई काव्य को समझता है। कविता पर तुम झपट नहीं पड़ते। तुम कविता का धीरे-धीरे स्वाद लेते हो, चुस्की लेते हो; जैसे कोई चाय को पीता है। तुम उसे गटक नहीं जाते। वह कोई कड़वी दवा नहीं है। तुम उसका स्वाद लेते हो, चुस्की लेते हो— धीरे-धीरे, उसके स्वाद को लीन होने देते हो। और एक ही कविता को समझना हो, तो बहुत बार पढ़ना पड़ता है। एक गणित को तुमने एक बार समझ लिया, फिर दुबारा करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती; गणित समाप्त हो गया। कविता कभी भी समाप्त नहीं होती; क्योंकि हृदय का कोई ओर-छोर नहीं है। और तुम जितना ही प्रेम करते हो, उतना ही उदघाटित होता है।

इसलिए पूर्व में हम शास्त्र का अध्ययन नहीं करते; हम शास्त्र का पाठ करते हैं। अध्ययन शास्त्र का हो भी नहीं सकता। अध्ययन का अर्थ है कि एक बार समझ लिया, फिर कचरे में फेंक दिया, जैसे कि बात खतम हो गई। जब समझ ही लिया तो अब दुबारा क्या करना। पाठ का अर्थ होता है; समझ बुद्धि की होती तो एक बार में पूरी हो जाती। इसकी तो चुस्कियां बार-बार लेनी पड़ेंगी। इसे तो जाने-अनजाने न मालूम कितनी बार दोहराना पड़ेगा। इसे बहुत-से भाव-क्षणों में, बहुत-सी मनोदशाओं में— कभी सुबह जब सूरज उगता है तब, कभी रात जब सब अंधकार हो जाता है तब, कभी मन जब प्रफुल्लित होता है तब, और कभी मन जब उदासी से भरा होता है तब— विभिन्न चित्त की दशाओं में, विभिन्न मनों-क्षणों में, इसमें उतरना होगा, तब इसके सभी पहलू धीरे-धीरे प्रकट होंगे। फिर भी तुम उसे चुकता न कर पाओगे।

कोई शास्त्र कभी चुकता नहीं। जितना ही तुम पाओगे कि खोज लिया, उतना ही

तुम पाओगे कि खोज के लिए और भी ज्यादा बाकी रह गया। जितने तुम गहरे उतरोगे, पाओगे कि गहराई बढ़ती चली जाती है। शास्त्र को कभी पाठी चुका नहीं पाता। पाठ का मतलब ही यही है कि बार-बार, बहुत बार। पश्चिम इस बात को समझ ही नहीं पाता। उनकी पकड़ के बाहर है कि लोग गीता को हजारों साल से क्यों पढ़ रहे हैं ? फिर एक ही आदमी रोज सुबह उठकर गीता पढ़ लेता है; पागल हो गया है ? उनको खयाल में नहीं कि पाठ की प्रक्रिया हृदय में उतारने की प्रक्रिया है। उसका समझ से बहुत वास्ता नहीं है; स्वाद से वास्ता है। तर्क और गणित और हिसाब से उसका कोई भी संबंध नहीं है। उसका संबंध तो अपने हृदय को और उसके बीच की जो दूरी है, उसको मिटाने से है। धीरे-धीरे हम इतने लीन हो जायें उसमें कि पाठी और पाठ एक हो जाये; पता ही न चले कि कौन गीता है और कौन गीता का पाठी।

ऐसे भाव से जो चले...यह स्त्री का भाव है। यह समर्पण की धारा है। इसे खयाल में ले लें।

नमन से हम चलें तो शिव के सूत्र समझ में आ सकेंगे। उन्हें तुम अपने में उतरने देना, और जल्दी निर्णय की मत करना कि वे ठीक हैं कि गलत हैं। क्योंकि सूत्रों के संबंध में एक बात खयाल में रख लेना— तुम्हारे ऊपर निर्भर नहीं है तय करना कि ये ठीक हैं या गलत हैं। तुम निर्णय कर भी कैसे पाओगे ? जो अंधेरे में खड़ा है, वह प्रकाश के संबंध में क्या निर्णय करेगा ! और जिसने कभी स्वास्थ्य नहीं जाना, जो रोग की शय्या से ही बंधा रहा, उसे स्वास्थ्य की परिभाषा कैसे समझ में आयेगी ! जिसने कभी प्रेम की स्फुरणा नहीं पहचानी और जो जीवनभर घृणा, ईर्ष्या और द्वेष में जिया है, वह प्रेम की कविता तो पढ़ सकता है, क्योंकि शब्द उसकी समझ में आ जायेंगे; लेकिन शब्दों में जो छिपा है, अंतरगुंफित है, वह द्वार तो उसके लिए बंद ही रहेगा। इसलिए तुम निर्णय मत करना कि क्या ठीक, क्या गलत।

तुम सिर्फ पीना,—समझना भी नहीं कहता हूं— तुम सिर्फ पीना, तुम सिर्फ स्वाद में उतरना। और, अगर वह स्वाद तुम्हारे भीतर रहस्य के लोक खोलने लगे, और वह स्वाद अगर तुम्हारे भीतर नई सुगंध को जन्म दे दे और तुम पाओ की क्षणभर को ही सही, तुम्हारे दुर्गंध का व्यक्तित्व विलीन हो गया, और तुम्हारे भीतर कोई फूल खिला, और तुम सुगंधित हुए, क्षणभर को ही तुम पाओ कि तुम अंधकार नहीं हो, कोई दिया जल गया, एक झलक मिली; जैसे अंधेरे में बिजली कौंध गई हो, उसी से— उसी से समझ आयेगी, तुम्हारे समझने से नहीं। तुम्हारे अनुभव की झलक से समझ आयेगी।

इसलिए तुम विनम्र रहना।

दूसरी बात— सूत्र का अर्थ होता है; संक्षिप्त से संक्षिप्त, सारभूत, टेलीग्राफिक। वहां एक-एक शब्द अत्यंत घना है; विस्तार नहीं होता सूत्र में, घनत्व होता है। लंबा नहीं होता सूत्र, बड़ा छोटा होता है; जैसे छोटा-सा बीज होता है। उसमें सारा वृक्ष समाया होता है। जैसा बीज है, ऐसा सूत्र है। बीज में तुम वृक्ष देख भी नहीं सकते। देखना भी चाहोगे तो बीज में तुम वृक्ष को पाओगे नहीं, क्योंकि उसके लिए बड़ी गहरी आंखें चाहिए—जो बीज में वृक्ष को देख लें, जो वर्तमान में भविष्य को देख लें, जो आज कल को देख लें, जो दृश्य से अदृश्य को खोज लें— बड़ी पैनी आंखें चाहिए। वैसी पैनी आंखें तुम्हारे पास अभी नहीं हैं। अभी तो तुम्हें बीज बीज ही दिखाई पड़ेगा। वृक्ष को देखना हो तो बीज को तुम्हें बोना पड़ेगा. और कोई रास्ता तुम्हारे पास देखने का नहीं है। और जो बीज टूटेगा जमीन में और वृक्ष अकुंरित होगा, तभी तुम पहचान पाओगे।

ये सूत्र बीज हैं। इन्हें तुम्हें अपने हृदय में बोना होगा। तुम अभी निर्णय मत करना। क्योंकि अभी तुमने अगर बीज पर निर्णय लिया तो तुम इसे फेंक ही दोगे; कचरा-कूड़ा मालूम पड़ेगा।

बीज में, कंकड़-पत्थर में कोई ज्यादा फर्क नहीं है। कभी-कभी कंकड़-पत्थर ज्यादा चमकीले, रंगीन, खूबसूरत, कीमती होते हैं। लेकिन बीज और कीमती-से-कीमती कोहिनूर में भी एक फर्क है कि तुम कोहिनूर को बो दो, तो उसमें से कुछ पैदा न होगा। वह कीमती कितना ही हो, वह मुर्दा है। उसका मूल्य नासमझ कितना ही समझते हों, लेकिन जीवन उसमें नहीं है। वह लाश है। और बीज़ कुरूप भी दिखाई पड़ता हो, कोई उसकी कीमत भी न हो, लेकिन उसमें जीवन छिपा है। तुम उसे बो दो, उसमें से विराट वृक्ष पैदा होगा, और एक बीज से करोड़ों बीज लग जायेंगे। एक छोटा-सा बीज इस सारे विश्व को पैदा कर सकता है; क्योंकि एक बीज से करोड़ों बीज पैदा होते हैं। फिर करोड़ों बीज से, हर बीज से करोड़ बीज पैदा होते हैं। एक छोटे-से बीज में सारे विश्व का ब्रह्मांड समा सकता है।

सूत्र बीज है। उसके साथ जल्दी नहीं की जा सकती। उसको बोओगे हृदय में और अकुंरित होगा, फूल लगेंगे— तभी तुम जान पाओगे; तभी निर्णय लिया जा सकता है।

तीसरी बात— इसके पहले कि हम शुरू करें— धर्म महान क्रांति है। धर्म के नाम मे तुमने जो समझा हुआ है, उसका धर्म से न के बराबर संबंध है। इसलिए शिव के

सूत्र तुम्हें चौंकायेंगे भी। तुम भयभीत भी होओगे, डरोगे भी; क्योंकि तुम्हारे धर्म डगमगायेंगे। तुम्हारे मंदिर, तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारे गिरजे— अगर ये सूत्र तुमने समझे तो— गिर जायेंगे ! तुम उन्हें बचाने की कोशिश में मत लगना; क्योंकि वे बचे भी रहें, तो भी उनसे तुम्हें कुछ भी मिला नहीं। तुम उनमें जी ही रहे हो, और तुम मुर्दा हो। मंदिर काफी सजे हैं, लेकिन तुम्हारे जीवन में कोई भी खुशी की किरण नहीं है। मंदिर में काफी रोशनी है; उससे तुम्हारे जीवन का अंधकार नहीं मिटता। उससे भयभीत मत होना; क्योंकि ये सूत्र तुम्हें कठिनाई में तो डालेंगे ही। क्योंकि शिव कोई पुरोहित नहीं हैं। पुरोहित की भाषा तुम्हें हमेशा संतोषदायी मालूम पड़ती है; क्योंकि पुरोहित को तुम्हारा शोषण करना है। पुरोहित तुम्हें बदलने के लिए उत्सुक नहीं है। तुम जैसे हो ऐसे ही रहो, इसी में उसका लाभ है। तुम जैसे हो— रुग्ण, बीमार— ऐसे ही रहो, इसी में उसका व्यवसाय है।

मैंने सुना है : एक डाक्टर ने अपने लड़के को पढ़ाया। पढ़-लिखकर घर आया। पिता ने कभी छुट्टी भी न ली थी। तो उसने कहा कि अब तू मेरी कारबार को सम्हाल, और मैं तीन महीने विश्राम कर लूं। जीवनभर सिर्फ मैंने कमाया है और कभी विश्राम नहीं लिया। वह विश्व की यात्रा पर निकल गया। तीन महीने बाद लौटा, तो उसने अपने लड़के से पूछा कि सब ठीक चल रहा है ? तो उसके लड़के ने कहा कि बिलकुल ठीक चल रहा है। आप हैरान होंगे कि जिन मरीजों को आप जीवनभर में ठीक न कर पाये, उनको मैंने तीन महीने में ठीक कर दिया है। पिता ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, 'मूर्ख, वही हमारा व्यवसाय था। क्या मैं उनको ठीक नहीं कर सकता था ? तेरी पढ़ाई कहां से आती थी ? उन्हीं पर आधार था। और भी बच्चे पढ़-लिख लेते। तूने सब खराब कर दिया।'

पुरोहित, तुम जैसे हो— रुग्ण, बीमार— वह तुम्हें वैसा ही चाहता है। उस पर ही उसका व्यवसाय है। शिव कोई पुरोहित नहीं हैं। शिव तीर्थंकर हैं। शिव अवतार हैं। शिव क्रांतिद्रष्टा हैं, पैगंबर हैं। वे जो भी कहेंगे, वह आग है। अगर तुम जलने को तैयार हो, तो ही उनके पास आना; अगर तुम मिटने को तैयार हो, तो ही उनके निमंत्रण को स्वीकार करना। क्योंकि तुम मिटोगे तो ही नये का जन्म होगा। तुम्हारी राख पर ही नये जीवन की शुरुआत है। इन बातों को खयाल में रखकर एक-एक सूत्र को समझने की कोशिश करें।

पहला सूत्र है : चैतन्यमात्मा— चैतन्य आत्मा है।

चैतन्य हम सभी हैं, लेकिन आत्मा का हमें कोई पता नहीं चलता। अगर चैतन्य ही आत्मा है तो हम सभी को पता चल जाना चाहिए। हम सब चैतन्य हैं। लेकिन, चैतन्य आत्मा है, इसका क्या अर्थ होगा ?

पहला अर्थ : इस जगत में, सिर्फ चैतन्य ही तुम्हारा अपना है। आत्मा का अर्थ होता है : अपना; शेष सब पराया है। शेष कितना ही अपना लगे, पराया है। मित्र हों, प्रियजन हों, परिवार के लोग हों, धन हो, यश, पद-प्रतिष्ठा हो, बड़ा साम्राज्य हो— वह सब जिसे तुम कहते हो मेरा— वहां धोखा है। क्योंकि वह सभी मृत्यु तुमसे छीन लेगी। मृत्यु कसौटी है— कौन अपना है, कौन पराया है। मृत्यु जिससे तुम्हें अलग कर दे, वह पराया था। और मृत्यु तुम्हें जिससे अलग न कर पाये, वह अपना था।

आत्मा का अर्थ है : जो अपना है। लेकिन जैसे ही हम सोचते हैं अपना, वैसे ही दूसरा प्रवेश कर जाता है। अपने का मतलब ही होता है कोई दूसरा, जो अपना है। तुम्हें यह खयाल ही नहीं आता कि तुम्हारे अतिरिक्त, तुम्हारा अपना कोई भी नहीं है; हो भी नहीं सकता। और जितनी देर तुम भटके रहोगे इस धारा में कि कोई दूसरा अपना है, उतने दिन व्यर्थ गये; उतना जीवन अकारण बीता। उतना समय तुमने सपने देखे। उतने समय में तुम जाग सकते थे, मोक्ष तुम्हारा होता; तुमने कचरा इकट्ठा किया।

सिर्फ तुम ही तुम्हारे हो।

यह पहला सूत्र है : मेरे अतिरिक्त मेरा कोई भी नहीं है। यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है, बड़ा समाज-विरोधी है। क्योंकि समाज जीता इसी आधार पर है कि दूसरे अपने हैं; जाति के लोग अपने हैं; देश के लोग अपने हैं— मेरा देश, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा परिवार; मेरे का सारा खेल है। समाज जीता है 'मेरी' की धारणा पर। इसलिए धर्म समाज-विरोधी तत्व है। धर्म समाज से छुटकारा है, दूसरे से छुटकारा है। और धर्म कहता है कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई भी नहीं है।

ऊपर से देखें तो यह बड़ा स्वार्थी वचन मालूम पड़ेगा। क्योंकि यह तो यह बात हुई कि हम ही अपने हैं, तो तत्क्षण हमें लगता है कि यह तो स्वार्थ की बात है। यह स्वार्थ की बात नहीं है। अगर यह तुम्हें खयाल में आ जाये, तो ही तुम्हारे जीवन में परार्थ और परमार्थ पैदा होगा। क्योंकि जो अभी आत्मा के भाव से ही नहीं भरा है, उसके जीवन में कोई परार्थ और कोई परमार्थ नहीं हो सकता।

तुम कहते हो दूसरों को मेरा। लेकिन, 'मेरा' कहकर तुम करते क्या हो ? मेरा कहकर तुम उन्हें चूसते हो। 'मेरा' तुम्हारा शोषण का हिस्सा है, फैलाव है। जिसको भी

तुम 'मेरा' कहते हो, उसको तुम गुलाम बनाते हो। तुम उसे अपने परिग्रह में परिवर्तित कर देते हो। मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरा बेटा, मेरा पिता— तुम करते क्या हो ? इस मेरे के पीछे—इस 'मेरे' के परदे के पीछे— तुम्हारे संबंध का मूल आधार क्या है ? तुम चूसते हो, तुम शोषण करते हो, तुम दूसरे का उपयोग करते हो। इस दूसरे के उपयोग को तुम सोचते हो परार्थ, तो तुम भ्रांति में हो।

एक सम्राट बूढ़ा हुआ। उसके तीन बेटे थे और वह बड़ी चिंता में था कि किसको राज्य दें। तीनों ही योग्य और कुशल थे, तीनों ही समान गुणधर्मा थे। इसलिए बड़ी कठिनाई हुई। उसने एक दिन तीनों बेटों को बुलाया और कहा कि पिछले पूरे वर्ष में तुमने जो भी कृत्य महानतम किया हो— एक कृत्य जो पूरे वर्ष में महानतम हो— वह तुम मुझे कहो।

बड़े बेटे ने कहा कि गांव का जो सबसे बड़ा धनपति है, वह तीर्थ-यात्रा पर जा रहा था; उसने करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहरात बिना गिने, बिना किसी हिसाब-किताब के, बिना किसी दस्तखत लिये मेरे पास रख दिये, और कहा कि जब मैं लौट आऊंगा तीर्थ-यात्रा से, मुझे वापस लौटा देना। चाहता मैं तो पूरे भी पा जा सकता था;क्योंकि न कोई लिखा-पढ़ी थी, न कोई गवाह था। इतना भी मैं करता तो थोड़े-बहुत बहुमूल्य हीरे मैं बचा लेता तो कोई कठिनाई न थी। क्योंकि उस आदमी ने न तो गिने थे, और न कोई संख्या रखी थी। लेकिन मैंने सब जैसी-की-जैसी थैली वापस लौटा दी।

पिता ने कहा, 'तुमने भला किया। लेकिन मैं तुमसे पूछता हूं कि अगर तुमने कुछ रख लिये होते, तो तुम्हें पश्चात्ताप, ग्लानि, अपराध का भाव पकड़ता या नहीं ?' उस बेटे ने कहा, 'निश्चित पकड़ता।' तो बाप ने कहा, 'उसमें परोपकार कुछ भी न हुआ। तुम सिर्फ अपने पश्चात्ताप, अपनी पीड़ा से बचने के लिए ही यह किये हो। इसमें परोपकार क्या हुआ ? हीरे बचाते तो ग्लानि मन को पीड़ा देती, कांटे की तरह चुभती। उस कांटे से बचने के लिए तुमने हीरे वापस किये। काम तुमने अच्छा किया, ठीक है; लेकिन परोपकार कुछ भी न हुआ। उपकार तुमने अपना ही किया है।'

दूसरा बेटा थोड़ी चिंता में पड़ा। उसने कहा कि मैं राह के किनारे से गुजरता था, और झील में सांझ के वक्त, जब वहां कोई भी न था, एक आदमी डूबने लगा। चाहता तो मैं अपने रास्ते चला जाता, सुना-अनसुना कर देता; लेकिन मैंने तत्क्षण छलांग मारी। अपने जीवन को खतरे में डाला और उस आदमी को बाहर निकाला।

बाप ने कहा कि तुमने ठीक किया; लेकिन, अगर तुम चले जाते और उसको न

निकालते तो क्या उस आदमी की मृत्यु सदा तुम्हारा पीछा न करती ? तुम अनसुनी कर देते ऊपर से, लेकिन भीतर तो तुम सुन चुके थे उसकी चीत्कार— आवाज कि बचाओ ! क्या सदा-सदा के लिए उसका प्रेत तुम्हारा पीछा न करता ? उसी भय से तुमने छलांग लगाई, अपनी जान को खतरे में डाला; लेकिन परोपकार तुमने कुछ किया हो, इस भ्रांति में पड़ने का कोई कारण नहीं है।

तीसरे बेटे ने कहा कि मैं गुजरता था जंगल से। और एक पहाड़ की कगार पर मैंने एक आदमी को सोया हुआ देखा, जो कि नींद में अगर एक भी करवट ले, तो सदा के लिए समाप्त हो जायेगा; क्योंकि दूसरी तरफ महान खड्ड था। मैं उस आदमी के पास पहुंचा और जब मैंने देखा कि वह कौन है, तो वह मेरा जानी दुश्मन था। मैं चुपचाप अपने रास्ते से जा सकता था। या, अगर मैं अपने घोड़े पर सवार, उसके पास से भी गुजरता, तो मेरे बिना कुछ किये, शायद सिर्फ मेरे गुजरने के कारण, वह करवट लेता और खड्डे में गिर जाता। लेकिन मैं आहिस्ते से जमीन पर सरकता हुआ उसके पास पहुंचा कि कहीं मेरी आहट से वह गिर न जाए। और यह भी मैं जानता था कि वह आदमी बुरा है। मेरे बचाने पर भी वह मुझे गालियां ही देगा। उसे मैंने हिलाया, आहिस्ते से जगाया। और वह आदमी मेरे खिलाफ गांव में बोलता फिर रहा है। क्योंकि वह आदमी कहता है, 'मैं मरने ही वहां गया था। इस आदमी ने वहां भी मेरा पीछा किया। यह जीने तो देता ही नहीं, इसने मरने भी न दिया।'

पिता ने कहा, 'तुम दो से बेहतर हो; लेकिन परोपकार यह भी नहीं है। क्यों ? क्योंकि तुम अहंकार से फूले नहीं समा रहे हो कि तुमने कुछ बड़ा कार्य कर दिया। बोलते हो तो तुम्हारी आंखों की चमक और हो जाती है। कहते हो तो तुम्हारा सीना फूल जाता है। और जिस कृत्य से अहंकार निर्मित होता हो, वह परोपकार न रहा। बड़े सूक्ष्म मार्ग से तुमने अपने अहंकार को उससे भर लिया। तुम सोच रहे हो कि तुम बड़े धार्मिक हो, परोपकारी हो; तुम इन दो से बेहतर हो। लेकिन, मुझे राज्य के मालिक के लिए किसी चौथे की ही तलाश करनी पड़ेगी।'

जब तुम परोपकार करते हो, तब तुम कर नहीं सकते; क्योंकि जिसे अपना ही पता नहीं, वह परोपकार करेगा कैसे ? तुम चाहे सोचते हो कि तुम कर रहे हो— गरीब की सेवा, अस्पताल में बीमार के पैर दबा रहे हो— लेकिन, अगर तुम गौर से खोजोगे, तो तुम कहीं-न-कहीं अपने अहंकार को ही भरता हुआ पाओगे। और, अगर तुम्हारा अहंकार ही सेवा से भरता है, तो सेवा भी शोषण है। आत्मज्ञान के पहले कोई व्यक्ति

परोपकारी नहीं हो सकता; क्योंकि स्वयं को जाने बिना इतनी बड़ी क्रांति हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे झगड़ रही थी और कह रही थी कि यह मामला क्या है, एक दफा साफ हो जाना चाहिए। तुम मेरे सभी रिश्तेदारों को नफरत और घृणा क्यों करते हो? नसरुद्दीन ने कहा, 'यह बात गलत है; यह बात तथ्यगत भी नहीं है। और इसका प्रमाण भी है मेरे पास। और प्रमाण यह है कि मैं तुम्हारी सास को अपनी सास से ज्यादा चाहता हूं।'

अहंकार ऐसे रास्ते खोजता है। ऊपर से दिखता है कि तुम परोपकार कर रहे हो; लेकिन, भीतर तुम ही खड़े होते हो। और जितनी सूक्ष्म हो जाती है यात्रा, उतनी ही पकड़ के बाहर हो जाती है। दूसरे तो पकड़ ही नहीं पाते; तुम भी नहीं पकड़ पाते हो। दूसरे तो धोखे में पड़ते ही हैं; तुम भी अपने दिये, धोखे में, भूल जाते हो, भटक जाते हो। हम सभी ने अपनी-अपनी भूल-भुलैयां बना ली हैं। उसमें हमने दूसरों को धोखा देने के लिए ही शुरू किया था सारा उपाय, आयोजन यह हमने कभी सोचा न था कि अपनी बनाई भूल-भूलैयां में हम खुद ही खो जायेंगे। लेकिन हम खो गये हैं।

पहली बात स्मरण रखो : तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा कोई भी नहीं है। जैसे ही यह स्मरण सघन होता है कि चैतन्य ही आत्मा है, चैतन्य ही मैं हूं और सब 'पर' है, पराया है, विजातीय है—वैसे ही तुम्हारे जीवन में क्रांति की पहली किरण प्रविष्ट हो जाती है; वैसे ही तुम्हारे और समाज के बीच एक दरार पड़ जाती है; वैसे ही तुम्हारे और तुम्हारे संबंधों के बीच एक दरार पड़ जाती है। लेकिन आदमी अपनी तरफ देखना ही नहीं चाहता। देखना कठिन भी है; क्योंकि, देखने के पहले जिस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, वह बहुत संघातक है।

एक मारवाड़ी व्यापारी एक फिल्म अभिनेत्री के प्रेम में पड़ गया। वैसे बात अनहोनी थी—मारवाड़ी और व्यापारी ! वह प्रेम से सदा दूर ही रहता है। लेकिन अनहोनी भी घटती है। प्रेम में तो पड़ गया; लेकिन व्यापारी का संदेहभरा चित्त ! तो उसने एक जासूस नियुक्त कर दिया अभिनेत्री के पीछे कि तू पता लगा, इसका चरित्र तो ठीक है न। इसके पहले कि मैं प्रस्ताव करूं विवाह का, सब बात पक्की कागज पर साफ हो जानी चाहिए।

जासूस ने बड़ी खोजबीन की। सात दिन बाद उसने रिपोर्ट भी भेज दी। रिपोर्ट आयी कि इस स्त्री का चरित्र एकदम निर्दोष, निष्कलंक है। ऐसी कोई बात उसके संबंध में

नहीं सुनी गई, नहीं जानी गई, जिससे संदेह पैदा हो; सिर्फ एक बात को छोड़कर—पिछले कुछ दिनों से एक संदिग्ध मारवाड़ी के साथ ही देखी जाती है। वह संदिग्ध मारवाड़ी वे स्वयं थे।

आंख दूसरे को देखती है। हाथ दूसरे को छूते हैं। मन दूसरे की सोचता है। और तुम सदा अंधेरे में खड़े रह जाते हो। तुम्हारी हालत वही है जो दीये तले अंधेरे की होती है। दीये की रोशनी सब पर पड़ती है, सिर्फ तुम्हें छोड़ देती है। इसलिए तुम भटकते हो उस रोशनी में सब तरफ; सब दिशाओं में यात्रा करते हो, और एक अपरिचित रह जाता है—वही तुम हो।

यह पहला सूत्र है : चैतन्य आत्मा। इस सूत्र को एक गहरे बीज की तरह हृदय में उतर जाने दो। व्यर्थ है सारे जगत की यात्रा, अगर तुम अपने से अपरिचित रह गये। अगर स्वयं को न जान पाये, और सब भी जान लिया, तो वह सारा ज्ञान भी इकट्ठे जोड़ में अज्ञान सिद्ध होगा। अगर अपने को न देख पाये, और सारा जगत देख डाला, चांद-तारे छान डाले, तो भी तुम अन्य ही रहोगे। क्योंकि आंख तो उसी को मिलती है, जो स्वयं को देख लेता है। ज्ञान तो उसी को मिलता है, जो स्वयं से परिचित हो जाता है। जो चैतन्य के स्वप्रकाश में नहा लेता है, वही पवित्र है। और कोई तीर्थ नहीं है; चैतन्य तीर्थ है। चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। उससे तुम क्षणभर को भी पार नहीं गये हो। लेकिन दीये तले अंधेरा है। तुम उससे दूर जा भी नहीं सकते, चाहो तो भी। लेकिन भ्रम पैदा हो सकता है कि तुम बहुत दूर चले गये हो। तुम सपना देख सकते हो संसार में। लेकिन, सपना सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो सिर्फ एक बात है, वह है तुम्हारा चैतन्य स्वभाव।

चैतन्य आत्मा है। तो, पहली तो बात कि मेरा सिवाय चैतन्य के और कोई भी नहीं है। यह भाव तुममें सघन हो जाए, तो संन्यास का जन्म हुआ। क्योंकि मेरे अतिरिक्त भी मेरा कोई हो सकता है, यही भाव संसार है।

इसलिए पहले सूत्र में बड़ी क्रांति है। पहली चिनगारी है—शिव फेंकते हैं तुम्हारी तरफ—और वह यह है कि तुम जान लो कि तुम ही बस तुम्हारे हो, बाकी कोई तुम्हारा नहीं है। इससे बड़ा विषाद मन को पकड़ेगा; क्योंकि तुमने दूसरों के साथ बड़े संबंध बना रखे हैं, बड़े सपने संजो रखे हैं। दूसरों के साथ तुम्हारी बड़ी आशा जुड़ी हैं।

मां देख रही है कि बेटा बड़ा होगा; बड़ी आशाएं जुड़ी हैं ! बाप देख रहा है कि बेटा बड़ा होगा; बड़ी आशाएं जुड़ी हैं। और इन सारी आशाओं में तुम अपने को खो रहे हो।

यही तुम्हारे पिता भी इन्हीं आशाओं को कर-करके समाप्त हुए तुम्हारे लिये। तुमसे क्या उन्हें मिला ? यही आशाएं कर-करके तुम समाप्त हो जाओगे; तुम्हारे बेटे से तुम्हें कुछ मिलेगा नहीं। तुम्हारा बेटा भी यही मूढ़ता जारी रखेगा। वह अपने बेटे से आशाएं करेगा।

नहीं, अपनी तरफ देखो—न तो पीछे, न आगे। कोई तुम्हारा नहीं है। कोई बेटा तुम्हें नहीं भर सकेगा। कोई संबंध तुम्हारी आत्मा नहीं बन सकता। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा कोई मित्र नहीं है। लेकिन तब बड़ा डर लगता है; क्योंकि लगता है कि तुम अकेले हो गये। और आदमी इतना भयभीत है कि गली से गुजरता है अकेले में, तो भी जोर से गीत गाने लगता है। अपनी हीं आवाज सुन के लगता है कि अकेला नहीं है। यह तुम अपनी ही आवाज सुन रहे हो। बाप जब बेटे में अपने सपने रचा रहा है, तो बेटे की कोई सहमति नहीं है। यह बाप खुद ही अकेले में सीटी बजा रहा है। इसलिए, दुखी होगा कल; क्योंकि उसने जिंदगी भर सपने रचाये और यह सोचता है कि बेटा भी यही सपने देख रहा है। यह गलती में है। बेटा अपने सपने देखेगा। तुम अपने सपने देख रहे हो। तुम्हारे बाप ने अपने सपने देखे थे। ये कहीं मिलते नहीं।

हर बाप दुखी मरता है। क्या कारण होगा ? क्योंकि जो-जो स्वप्न वह बांधता है, वे सभी सपने बिखर जाते हैं। हर आदमी अपने सपने देखने को यहां है, तुम्हारे सपने देखने को नहीं। और तुम्हें अगर चाहिए कि एक आप्त-स्थिति उपलब्ध हो जाये—एक तृप्ति मिले—तो तुम सपने किसी और के साथ मत बांधना; अन्यथा तुम भटकोगे।

संसार का इतना ही अर्थ है कि तुमने अपने सपनों कि नाव दूसरों के साथ बांध रखी है। संन्यास का अर्थ है कि तुम जाग गये। और तुमने एक बात स्वीकार कर ली—कितनी ही कष्टकर हो, कितनी ही दुखपूर्ण मालूम पड़े प्रथम, और कितनी ही संघातक पीड़ा अनुभव हो—कि तुम अकेले हो। सब संग-साथ झूठा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम भाग जाओ हिमालय। क्योंकि जो अभी हिमालय की तरफ भाग रहा है, उसे सभी संग-साथ सार्थक हैं, झूठा नहीं हुआ। क्योंकि जो चीज झूठ हो गई, उससे भागने में भी कोई सार्थकता नहीं है। कोई भी सुबह जागकर भागता तो नहीं कि सपना झूठा है, भागूं इस घर से। सपना झूठा हो गया, बात खत्म हो गई। उसमें भागना क्या है ! लेकिन एक आदमी है जो भाग रहा हैं पत्नी से, बच्चों से। इसका भागना बताता है—इसने सुन लिया होगा कि सपना झूठा है, लेकिन अभी इसे खुद पता नहीं चला। कल तक यह पत्नी की तरफ भागता था, अब पत्नी की तरफ पीठ करके भागता

है; लेकिन दोनों ही अर्थों में पत्नी सार्थक थी।

एक जैन संत हुए—गणेशवर्णी। वर्षों पहले उन्होंने पत्नी त्याग दी। वे साधु पुरुष थे। कोई बीस वर्ष त्याग के बाद, काशी में थे, तब खबर आई कि पत्नी मर गई। उनके मुंह से जो वचन निकला, वह याद रख लेने जैसा है। उन्होंने कहा, 'चलो झंझट मिटी।' उनके भक्तों ने इस वचन का अर्थ लिया कि बड़ी वीतरागता है। थोड़ा सोचो, तो साफ हो जायेगा कि वीतरागता बिलकुल नहीं है। क्योंकि जिस पत्नी को बीस साल पहले छोड़ दिया, उसकी झंझट अभी कायम थी, तो ही मिट सकती है। गणित बिलकुल सीधा और साफ है। यह पत्नी जो बीस साल पहले छोड़ दी, किसी न किसी तरह, छाया की तरह पीछे चल रही होगी। वह मन में कहीं सवार होगी। उसका उपद्रव कायम था। बीस साल भी इसके उपद्रव को मिटा नहीं पाये थे, छोड़ने के बाद। यह मन सदा सोचता रहा होगा—पक्ष में, विपक्ष में। पत्नी के मरने पर ये वचन कि 'चलो झंझट मिटी', पत्नी के संबंध में कुछ भी नहीं बताते, सिर्फ पति के संबंध में बताते हैं। यह आदमी भाग तो गया छोड़कर, लेकिन छोड़ न पाया।

और गणेशवर्णी साधु पुरुष थे। इसलिए थोड़ा सोच लेना—साधु पुरुष भी बड़ी भ्रांति में रह सकते हैं। उनके चरित्र में, आचरण में कोई भूल-चूक न थी। वे मर्यादा के पुरुष थे। ठीक-ठीक नियम से चलते थे। वहां कोई जरा भी दरार नहीं पा सकता, जरा त्रुटि नहीं पा सकता। सब आचरण ठीक था, साधुता पूरी थी। फिर भी भीतर कोई बात चूक गई। हिमालय पहुंच गये, झंझट साथ चली गई।

फिर दूसरी बात भी समझ लेने जैसी है, और वह यह कि अगर पत्नी के मरने पर, पहला खयाल ही यह आया कि झंझट मिटी, तो कहीं जाने-अनजाने, अचेतन में, पत्नी की मृत्यु की आकांक्षा भी छिपी रही होगी। वह जरा गहरा है। किसी तल पर पत्नी मिट जाये—न हो, समाप्त हो जाये—यह तो हिंसा हो गई। लेकिन एक-एक वचन भी अकारण नहीं आता, आसमान से नहीं आता। एक-एक वचन भी भीतर से आता है। और, ऐसे क्षणों में, जब कि पत्नी मर गई है, इसकी खबर आयी हो, तुम ठीक-ठीक, अपने रोजमर्रा के व्यवसायी होश में नहीं होते। तब तुमसे जो बात निकलती है, वह ज्यादा सही होती है। घंटेभर बाद तुम्हें मौका मिल जायेगा, तुम खुद ही सोच-समझकर लीप-पोता कर लोगे। तुम फिर जो कहोगे, वह बात झूठी हो जायेगी। लेकिन तत्क्षण उस क्षण में वर्णी चूक गये। वह जो बीस साल उन्होंने अपने चारों तरफ साधुता की व्यवस्था कर रखी थी, उस क्षण में भूल गये। जब वर्णी को ऐसा घट सकता है, तो तुम्हें

तो सहज ही घट सकता है।

भागने से कुछ भी न होगा। भागकर कोई भी कभी भाग नहीं पाया। लेकिन भक्त इसको न देख पायेंगे। उन्होंने तो वर्णी की कथा में इसको बड़े बहुमूल्य वचन की तरह संगृहीत किया है, यह सोचकर कि देखो आदमी कैसा वीतराग है ! तुम्हें पता भी नहीं हो सकता कि वीतरागता क्या है। तुम राग में जीते हो, तुम्हें विराग समझ में आता है। तुमसे जो विपरीत है, वह समझ में आता है। तुम जानते हो कि तुम पत्नी को छोड़कर नहीं जा सकते, और यह आदमी छोड़कर चला गया; यह आदमी तुमसे बड़ा है। यह तुमसे विपरीत है, लेकिन तुमसे भिन्न नहीं है। तुम पैर के बल खड़े हो, यह आदमी सिर के बल खड़ा है। लेकिन तुम्हारे मन में और उसके मन में रत्तीभर भी फर्क नहीं है। खोज कर देखो ! तुम सभी सोचते हो कि पत्नी झंझट है। तुम एकाध पति ऐसा पा सकते हो, जो कहे: पत्नी झंझट नहीं है ? पत्नी के सामने मत पूछना; एकांत में, अकेले में।

मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे कहा है कि मैं भी कभी सुखी था। लेकिन यह भी मुझे पता ही तब चला, जब मैंने विवाह कर लिया, और तब फिर बहुत देर हो चुकी थी। मैं भी कभी सुखी था, यह पता मुझे तब चला, जब मैंने विवाह कर लिया। लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी; सुख हाथ से जा चुका था।

पति को गहराई में पूछो, तो ऐसा पति खोजना कठिन है, जिसने कई बार पत्नी की हत्या करने का विचार न किया हो, सपने न देखें हो कि मार डाला पत्नी को। सुबह उठकर वह भी कहेगा, कैसा बेहूदा सपना है। लेकिन अचेतन आकांक्षा है। जिससे झंझट पैदा होती है, उसे मिटा देने का मन—सीधा तर्क है। लेकिन झंझट दूसरे से कभी पैदा होती ही नहीं।

पत्नी में अगर कोई उपद्रव होता, तो कौन तुम्हें रोकता था ? तुम सब भाग गये होते हिमालय। उपद्रव पत्नी में नहीं है। क्योंकि तुम हिमालय जाकर फिर पत्नी खोज लोगे। उपद्रव तुम्हारे भीतर है। तुम अकेले नहीं रह सकते। तुम्हें कोई दूसरा चाहिए। अकेले में तुम डरते हो। कोई दूसरा, तब तुम निश्चिंत मालूम पड़ते हो; क्यों ? दूसरे की मौजूदगी से आश्वासन मिलता है—दुख में, सुख में, कोई साथी है। जीवन में, मृत्यु में, कोई साथी है। लेकिन अकेलापन स्वभाव है। और जिस व्यक्ति ने यह अनुभव कर लिया कि आत्मा ही बस मेरी है, उसने अपने अकेलेपन को अनुभव कर लिया।

भागने की कोई भी जरूरत नहीं है, तो झंझट पीछे चली जायेगी। तुम जहां हो, वहीं

रहना; रत्तीभर भी बाहर कोई फर्क करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन भीतर तुम अकेले हो जाना। भीतर तुम कैवल्य को अनुभव करना कि मैं अकेला हूं; कोई संगी-साथी नहीं है। और यह तुम दोहराना मत, क्योंकि दोहराने की कोई जरूरत नहीं कि रोज सुबह बैठकर तुम दोहराओ कि मैं अकेला हूं, कोई संगी-साथी नहीं है। इससे कुछ भी न होगा। यह दोहराना तो सिर्फ यही बताएगा कि तुम्हें अभी खयाल नहीं हुआ। इसे समझना।

यह तथ्य है कि तुम अकेले हो। समझने में अड़चन है— वही तपश्चर्या है। तप का अर्थ नहीं है कि तुम धूप में खड़े हो जाओ। आदमी को छोड़कर सभी पशु-पक्षी धूप में खड़े हैं। उनमें से कोई भी मोक्ष नहीं चला जा रहा है। और तप का अर्थ यह नहीं है कि तुम भूखे खड़े हो जाओ, अनशन कर लो, उपवास कर लो; क्योंकि आधी दुनिया वैसे ही भूखी मर रही है। कोई उपवास करके मोक्ष नहीं पहुंच जाता है। शरीर को गला दो, जला दो— उससे कुछ हल नहीं है। वह सिर्फ आत्म-हिंसा है और महानतम पाप है। और सिर्फ मूढ़ उस पाप में उतरते हैं। जिन्हें थोड़ा भी बोध है, वे ऐसी नासमझियां न करेंगे।

दूसरे को भूखा मारना अगर गलत है तो खुद को भूखा मारना सही कैसे हो सकता है? दूसरे को सताना अगर हिंसा है, तो खुद को सताना अहिंसा कैसे हो सकती है? सताने में हिंसा है। किसको तुम सताते हो इससे क्या फर्क पड़ता है! जो हिम्मतवर हैं वे दूसरे को सताते हैं; जो कमजोर हैं वे खुद को सताते हैं। क्योंकि दूसरे को सताने में एक खतरा है, दूसरा बदला लेगा। खुद को सताने में वह खतरा भी नहीं है। कौन बदला लेगा? कमजोर अपने को सताते हैं।

तुमने कभी खयाल किया है— अगर पुरुष नाराज हो जाए तो वह पत्नी को पीटता है, और अगर पत्नी नाराज हो तो वह खुद को पीटती है। यह जो पत्नी है, यह साधुओं का प्रतीक है। कमजोर अपने को पीट लेता है। क्या करे? ताकतवर दूसरे को पीटता है; क्योंकि उसमें खतरा तो है ही कि दूसरा क्या करेगा, कौन जाने! कमजोर आत्म-हिंसक हो जाता है, और ताकतवर पर-हिंसक होता है। और धार्मिक वह है जो अहिंसक है— न वह दूसरे को सताता है, न खुद को सताता है। सताने की बात व्यर्थ है।

तपश्चर्या का अर्थ है कि तुमने यह सत्य स्वीकार कर लिया कि तुम अकेले हो, कोई उपाय नहीं है संगी-साथी का। तुम कितना ही चाहो— कितना ही आंखें बंद करो,

सपने देखो— तुम अकेले ही रहोगे। जन्मों-जन्मों से तुमने घर बसाये, परिवार बसाये, मिटाये; लेकिन तुम अकेले ही रहे हो। तुम्हारे अकेलेपन में रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता। जिसने यह जान लिया— स्वीकार कर लिया— कि मैं अकेला हूं, उसके लिए इंगित है इस सूत्र में : 'चैतन्य आत्मा है।' वही तुम्हारा है और कोई तुम्हारा नहीं है।

और दूसरी बात जो इस सूत्र में है, वह है : चैतन्य। आत्मा कोई सिद्धांत नहीं है कि तुम शास्त्र में पढ़ो और मान लो। आत्मा कोई, जैसे गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत है, ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है। आत्मा एक अनुभव है, सिद्धांत नहीं। और अनुभव है चैतन्य की तीव्रता का। इसलिए तुम जितने चैतन्य होते जाओगे, उतना ही तुम्हें आत्मा का पता चलेगा। तुम जितने बेहोश होते चले जाओगे, उतना ही तुम्हें अपना पता नहीं चलेगा। और तुम करीब-करीब बेहोश हो।

जो आत्मा को जानना चाहता है, उसे किसी दर्शन शास्त्र की जरूरत नहीं है; उसे चैतन्य को जगाने की प्रक्रिया चाहिए। उसे विधि चाहिए, जिससे वह ज्यादा चेतन हो जाये। जैसे कि आग को तुम उकसाते हो; राख जम जाती है, तुम उकसा देते हो— राख झड़ जाती है, अंगारे झलकने लगते हैं। ऐसी तुम्हें कोई प्रक्रिया चाहिए, जिससे राख तुम्हारी झड़े, और अंगार चमके; क्योंकि उसी चमक में तुम पहचानोगे कि तुम चैतन्य हो। और जितने तुम चैतन्य हो, उतने ही तुम आत्मवान हो। जिस दिन तुम पाओगे कि मैं परम चैतन्य हूं, उस दिन तुम परमात्मा हो। तुम्हारी चेतना की मात्रा ही तुम्हारी आत्मा की मात्रा होगी। लेकिन अभी तुम करीब-करीब बेहोश हो। अभी करीब-करीब तुम जैसे शराब पिये हो। अभी तुम चल रहे हो, उठ रहे हो, काम कर रहे हो; लेकिन जैसे नींद में। होश तुम्हें नहीं है।

कभी तुमने खयाल किया किताब पढ़ते वक्त, तुम पूरा पेज पढ़ जाते हो, तब तुम्हें खयाल आता है— अरे ! मैं पूरा पेज पढ़ भी गया, और एक शब्द याद नहीं ! तुमने कैसे पढ़ा होगा पूरा पेज ? तुम पढ़ सकते हो सोये-सोये। मन कहीं और रहा होगा। तुम पढ़ गये, तब तुम्हें होश आता है— पता चलता है कि यह पूरा पेज व्यर्थ गया। तुम कई बार रास्ते से चलते हो, तुम पूरा रास्ता चल जाते हो, तब तुम्हें खयाल आता है कि तुम चल रहे हो। तुम काम करते हो, और तुम्हें पता नहीं चलता कि तुम कर रहे हो।

तुम बेहोशी में जी रहे हो और चैतन्य आत्मा है। और तुम पूछते हो, क्या आत्मा है। तुम चाहते हो कोई प्रमाण दे। तुम चाहते हो कोई सिद्ध करे, कोई तर्क से तुम्हें समझा

दे तो तुम भी मान लो, नहीं तो तुम नास्तिक हो जाओगे। नास्तिकता बेहोशी का सहज परिणाम है; आस्तिकता होश का फल है। जितना तुम्हारा होश बढ़ेगा, तो जरूरत नहीं है कि तुम मानो कि आत्मा है। क्योंकि कई नासमझ मान रहे हैं, उससे कुछ हल नहीं होता। इस मुल्क में तो सभी मानते हैं कि आत्मा है; लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है ? तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति इससे आती नहीं। शायद तुम इसलिए मान लेते हो, क्योंकि हजारों साल से दोहराया जा रहा है। सुनते-सुनते तुम्हारे कान पक गये हैं। सुनते-सुनते तुम भूल ही गये हो कि इस संबंध में सोचना भी है। सुनते-सुनते, पुनरुक्ति से आदमी सम्मोहित हो जाता है। एक ही बात बार-बार दोहरायी चली जाए, तो तुम भूल जाते हो कि वह संदिग्ध है, संदेह किया जा सकता है, विचार किया जा सकता है।

और, फिर आत्मा है— इससे तुम्हें बड़ा संतोष भी मिलता है। शरीर मरेगा, वह तुम्हें पता है; आत्मा नहीं मरेगी, इससे बड़ी हिम्मत बढ़ती है। और आत्मा कभी नहीं मरेगी— अग्नि उसे जलायेगी नहीं, शस्त्र उसे छेदेंगे नहीं, मृत्यु उसका कुछ बिगाड़ न सकेगी, इससे तुम्हें बड़ी सांत्वना मिलती है। पर सांत्वना सत्य नहीं है। आत्मा को कोई न तो स्वीकार कर सकता है सिद्धांत की तरह, और न पुनरुक्ति की तरह कोई सम्मोहित हो सकता है; आत्मा को तो केवल वे ही लोग जान पाते हैं, जो लोग चैतन्य को बढ़ाते हैं।

इस तरह जीयो कि तुम पर राख इकट्ठी न हो। इस तरह जीयो कि तुम्हारे भीतर का अंगारा जलता रहे, प्रकाशित हो। इस तरह जीयो कि प्रतिक्षण तुम होश में रहो, बेहोश नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन को बच्चा पैदा हुआ। पहला ही लड़का था। नसरुद्दीन बड़ा खुश हुआ। अपने एक खास मित्र को बुलाया। खुशी मनाने दोनों शराब घर में बैठे। क्योंकि तुम एक ही खुशी जानते हो— बेहोशी।

यह बड़े मजे की बात है। शिव, बुद्ध, महावीर— वे सब चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि दुनिया में एक ही आनंद है— वह है होश। और तुम एक ही सुख जानते हो— वह है बेहोशी। या तो तुम ठीक हो या वे ठीक हैं; दोनों ठीक नहीं हो सकते।

मुल्ला नसरुद्दीन सीधा शराब घर गया, बजाय अस्पताल जाकर पहले बेटे को देखने के। उसने कहा कि पहले जरा आनंद कर लें। कितने दिनों का सपना पूरा हुआ। डटकर दोनों पी गये। जब दोनों पीकर पहुंचे अस्पताल, और कांच की खिड़की में से बेटे को देखा तो मुल्ला रोने लगा। उसने अपने मित्र से कहा, 'पहली तो बात, मेरे जैसा

मालूम नहीं होता।' अपना उन्हें पता नहीं है अभी। अभी खुद की शकल भी वह पहचान न सकेंगे। लेकिन मेरे जैसा मालूम नहीं होता ! 'दूसरी बात, बड़ा छोटा दिखायी पड़ता है। इतने छोटे बच्चे को लेकर करेंगे भी क्या ! यह बचेगा ?' मित्र ने कहा, 'मत घबड़ाओ। जब मैं पैदा हुआ था, तो मैं भी तीन ही पौंड का था।' नसरुद्दीन ने कहा कि फिर तुम बचे ? मित्र सोचने लगा, क्योंकि वह भी बेहोशी में था। उसने कहा, 'पक्का नहीं कह सकता।'

आदमी बेहोशी में है। उसके जीवन का सारा परिप्रेक्ष्य— उसकी सारी दृष्टि— उसकी बेहोशी से भर जाती है; सब धुआं-धुआं हो जाता है। तुम कुछ भी ठीक से नहीं देख पाते। और तुम एक ही सुख जानते हो कि जब तुम अपने को भूल जाते हो— चाहे सिनेमा हो, चाहे संगीत, चाहे सेक्स हो। जहां भी तुम अपने को भूल जाते हो, वहां तुम कहते हो, बड़ा सुख आया। भूलने को तुम सुख कहते हो, विस्मरण को ! कारण है। क्योंकि जब भी तुम होश से भरते हो, तुम सिवाय दुख के अपने जीवन में कुछ भी नहीं पाते। इसीलिए, जब भी तुम देखते हो जीवन को, जरा ही सजग होकर, तुम पाते हो— दुख, दुख; कुरूपता चारों तरफ।

एक मेरे मित्र हैं। अविवाहित ही रह गये हैं। उनसे मैंने पूछा कि क्या हुआ, कैसे चूक गये ? तो उन्होंने कहा कि बड़ी अड़चन आई। जिस स्त्री को मैं प्रेम करता था, जब मैं शराब पी लेता, तब वह मुझे सुंदर मालूम पड़ती थी। तब मैं शादी करने को राजी, लेकिन तब वह राजी नहीं। और जब मैं होश में होता, तब मैं राजी नहीं, तब वह राजी होती थी। इसलिए चूक गये, कोई उपाय न हुआ, मेल न हो सका।

तुम जब भी आंख खोलकर देखोगे, सब तरफ कुरूपता और दुख पाओगे। जब तुम बेहोश होते हो, तब सब ठीक लगता है।

इसलिए तुम्हें तकलीफ मालूम पड़ती है : चैतन्य आत्मा !— असंभव। इसलिए दुख से गुजरना होगा। उसको ही तपश्चर्या कहा है। जब कोई व्यक्ति जागना शुरू करता है, तो पहले उसे दुख में से ही गुजरना होगा। क्योंकि तुमने जन्मों-जन्मों तक दुख अपने चारों तरफ निर्मित किये हैं। कौन उनमें से गुजरेगा, तुम अगर न गुजरे तो ? इसको हमने कर्म कहा है।

कर्म का कुल इतना ही अर्थ है कि हमने जन्मों-जन्मों तक चारों तरफ दुख निर्मित किये हैं। जाने-अनजाने हमने दुख की फसल बोयी है, काटेगा कौन ? तो जब भी तुम होश में आते हो, तुम्हें फसल दिखायी पड़ती है— बड़ी लंबी। इस खेत से तुम्हें

गुजरना पड़ेगा। डरके मारे तुम वहीं बैठ जाते हो। फिर आंख बंद करके शराब पी लेते हो कि यह बहुत झंझट का काम है। लेकिन जितनी तुम शराब पीते हो, उतनी यह फसल बढ़ती जाती है। हर जन्म तुम्हारे कर्म की शृंखला में कुछ और जोड़ जाता है, घटाता नहीं। तुम और भी गर्त में उतर जाते हो। नरक और करीब आ जाता है। अगर तुम होश से भरोगे तो पहली तो घटना यह घटने ही वाली है कि तुम्हारे जीवन में चारों तरफ दुख दिखायी पड़ेगा, नरक। क्योंकि तुमने वह निर्मित किया है। और अगर तुमने हिम्मत रखी, साहस रखा, और तुम उस दुख से गुजर गये, तो जिस दुख से तुम सचेतन रूप से गुजर जाओगे, वह फसल कट गई। उन दुखों से तुम्हें न गुजरना पड़ेगा फिर से। और अगर एक बार तुम इस सारी दुख की शृंखला से गुजर जाओ— कर्म की शृंखला से— क्योंकि वे तुम्हारी आत्मा की चारों तरफ बंधी हुई जंजीरें हैं, अगर तुम उन सबसे गुजर जाओ, और होश न खोओ और हिम्मत जारी रखो कि कोई फिक्र नहीं है, जितना दुख मैंने पैदा किया है, मैं गुजरूंगा। मैं अंत तक जाऊंगा। मैं उस प्रथम घड़ी तक जाना चाहता हूं, जब मैं निर्दोष था, और दुख की यात्रा शुरू न हुई थी। जब मेरी आत्मा परम पवित्र थी, और मैंने कुछ भी संग्रह नहीं किया था दुख का। मैं उस समय तक प्रवेश करूंगा ही— चाहे कुछ भी परिणाम हो; कितना ही दुख, कितनी ही पीड़ा... ! अगर तुमने इतना साहस रखा तो आज नहीं कल, दुख से पार होकर तुम उस जगह पहुंच जाओगे, जहां शिव का सूत्र तुम्हें समझ में आयेगा कि चैतन्य आत्मा है। और एक बार तुम अपने भीतर के चैतन्य में प्रतिष्ठित हो जाओ, फिर तुमसे कोई दुख पैदा नहीं होता; क्योंकि बेहोश आदमी ही अपने चारों तरफ दुख पैदा करता है।

तुमने देखा है शराबी को चलते हुए रास्ते पर— वह कैसा डगमगता है ! ऐसी तुम्हारी जिंदगी है ! कहीं पैर रखते हो, कहीं पड़ता है। कहीं जाना चाहते हो, कहीं पहुंच जाते हो। कुछ करना चाहा था, कुछ और ही हो जाता है। कुछ कहने निकले थे, कुछ और ही कहकर घर लौट आते हो। इसे तुम रोज देख रहे हो। फिर भी तुम समझ नहीं पाते कि यह क्यों हो रहा है। तुम गये थे किसी से क्षमा मांगने, और झगड़ा करके वापस आ गये। होश में हो तुम ? तुम बात प्रेम की कर रहे थे, दुश्मनी हो गई !

एक आदमी शराब पीये, आकाश की तरफ देंखता हुआ चला जा रहा था। एक कार उसके पास से निकली; बामुश्किल ड्राइवर बचा पाया। गाड़ी रोककर ड्राइवर ने कहा, 'महानुभाव। अगर आप नहीं देखते वहां, जहां आप जा रहे हैं, तो फिर आप वहीं चले जायेंगे, जहां आप देख रहे हैं।' और हम सब...... । हमें कुछ पता भी नहीं कि

हम कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे है, कहां देख रहे हैं, क्यों देख रहे हैं। बस चले जा रहे हैं; क्योंकि एक बेचैनी है भीतर, जो बैठने भी नहीं देती; एक शक्ति है भीतर जो चलाये चली जाती है। फिर हम जो भी करते हैं, उस सब के उलटे परिणाम आते हैं।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि हमने बदी तो कभी की नहीं; नेकी ही की और फल बदी मिल रहा है। ऐसा हो नहीं सकता कि तुम नेकी करो और फल में बदी मिले। ऐसा हो नहीं सकता कि तुम आम के बीज बोओ और नीम के फल लगें। ऐसा हो नहीं सकता। इतना ही हो सकता है कि तुमने ऐसे बेहोशी में बोये होंगे, बोये तुमने नीम के ही बीज; तुम होश में न थे। क्योंकि वृक्ष थोड़े ही झूठ बोलेगा। तुम ही कहीं बोते वक्त भूल में पड़े होओगे। तुम जब नेकी भी करते हो, तब भी नेकी करने का तुम्हारा मन नहीं होता।

तुम सच भी बोलते हो, तो तुम दूसरे को चोट पहुंचाने के लिए सच बोलते हो। तुम सच बोलते हो दूसरे के अपमान के लिए। तुम सच बोलते हो, जैसे तुम सच का उपयोग एक घातक हथियार की तरह कर रहे हो। तुम्हारे सत्य कड़वे होते हैं; सत्य के कड़वे होने की भी जरूरत नहीं है। लेकिन मजा तुम्हें इस कड़वेपन में है, सत्य में तुम्हें मजा भी नहीं। तुम्हारा झूठ सदा मीठा होता है। तुम्हारा सत्य सदा कड़वा होता है। बात क्या है ? क्या कड़वापन सत्य का स्वभाव है ? क्या मिठास झूठ का हिस्सा है ? नहीं, झूठ को तुम चलाना चाहते हो, तुम उसे मीठा बनाते हो; क्योंकि अगर वह मीठा न होगा तो चलेगा नहीं। एक तो झूठ, चलाना मुश्किल; मिठास के सहारे ही चलेगा। जैसे कड़वी दवा की गोली पर हम मीठी पर्त चढ़ा देते हैं, बच्चा मीठी गोली समझ कर खा लेता है। और जब तक कड़वेपन का पता चलता है, तब तक गोली भीतर जा चुकी है।

तुम झूठ को मीठा बनाते हो, क्योंकि तुम झूठ चलाना चाहते हो। तुम सत्य को कड़वा बनाते हो; क्योंकि सत्य से तुम केवल चोट करना चाहते हो, उसको चलाना नहीं चाहते। तुम सत्य बोलते ही तब हो कि जब तुम सत्य का इस तरह उपयोग कर सको कि वह झूठ से बदतर साबित हो, तभी तुम बोलते हो।

तुम बेहोश हो। तुम्हारे कृत्यों का तुम्हें कुछ पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। इसे थोड़ा होशपूर्वक देखना शुरू करो। जो तुम बोलना चाहते हो, वही बोले या तुम कुछ और बोल गये ? क्या तुमने यही सोचा था बोलने के लिए, जो तुम बोले ?

मार्क ट्वेन लौटता था एक रात। घर आया उसकी पत्नी ने पूछा, 'कैसा रहा व्याख्यान ?' वह व्याख्यान देने गया था। उसने कहा, 'कौन सा व्याख्यान ? जो मैंने

तैयार किया था वह ? या जो मैंने वहां दिया, वह ? या जो मैं चाहता था कि देता, वह ? कौन सा व्याख्यान ?' एक तो आदमी तैयार करता है, और एक आदमी फिर जो देता है— उस में बड़ा फर्क है। और फिर एक, घर लौटते वक्त जो सोचता है कि दिया होता, ये तीनों अलग-अलग हैं।

होश में हो ? सब निशाने तुम्हारे चूक जाते हैं। तुम्हारी जिंदगी में कभी भी कोई निशाना लगा ? आंख बंद करके भी आदमी तीर चलाता रहे, तो कभी-न-कभी निशाना लगेगा।

मैंने सुना है कि अगर बंद घड़ी भी दीवाल पर टंगी रहे तो चौबीस घंटे में दो बार सही समय बतायेगी। तुम्हारी जिंदगी में ऐसा भी नहीं आया कि दो बार भी तुमने सही समय बताया हो। तुम बंद घड़ी से भी गये-बीते हो ? अंधेरे में भी आदमी तीर चलाता रहे, तो कभी न कभी निशाना तो लग जायेगा। तुम तो खुली आंख से, होश में, प्रकाश में तीर चलाते हो; कभी निशाने पर नहीं लगता। क्या बात होगी ?

मुल्ला नसरुद्दीन को बड़ा शौक था हिरण की शिकार करने का। तीसरी बार जब वह शिकार करने जंगल पहुंचा, और जंगल के विश्रामगृह में उसने अपना सामान रखा, और तैयारी की, और जब सूटकेस खोला, तो उसमें एक बड़ी फोटो रखी थी। और पत्नी ने उस फोटो के नीचे लिखा था : 'मुल्ला ! हिरण इस तरह का होता है।' उन्हें शिकार का शौक था, लेकिन हिरण का पता नहीं था। तुम कुछ भी मार-मूर कर घर आ जाओगे। हिरण का ठीक से फोटो देख लेना।

तुम सब जगह चूक गये हो— वही तुम्हारे जीवन का दुख है। और चूकने का कुल कारण है कि तुम होश में नहीं हो। इसलिए जो भी करो, होशपूर्वक करो। उठो तो भी होशपूर्वक, चलो तो भी होशपूर्वक।

महावीर ने कहा है : विवेक से चलो, विवेक से बैठो, विवेक से भोजन करो, विवेक से बोलो, विवेक से सोओ तक। महावीर से कोई पूछता है कि साधु कौन, तो महावीर ने कहा : जो अमूर्च्छित है। और असाधु कौन ? तो महावीर ने कहा : जो मूर्च्छित है। जो सोया-सोया जी रहा है, वह असाधु है। जो जागा-जागा जी रहा है, वह साधु है।

यही शिव कह रहे हैं : चैतन्य आत्मा— चैतन्य को बढ़ाओ; धीरे-धीरे आत्मा की झलक तुम्हारे जीवन में आनी निश्चित है।

दूसरा सूत्र है : ज्ञानम् बंधः। ज्ञान बंध है। बड़ी हैरानी का सूत्र है। ज्ञान के बहुत अर्थ हैं। एक तो, जब तक तुम इस ज्ञान से भरे हो कि मैं हूं, तब तक तुम अज्ञान में

रहोगे; क्योंकि 'मैं' अज्ञान है [illegible] है। जिस दिन तुम आत्मा से भरोगे, उस दिन 'हूं-पन' तो रहेगा, 'मैं-पन' नहीं रहेगा। 'मैं हूं' इसमें से 'मैं' तो कट जायेगा, सिर्फ 'हूं' रहेगा।

इसे थोड़ा प्रयोग करके देखो। कभी किसी वृक्ष के नीचे शांत बैठकर खोजो कि तुम्हारे भीतर 'मैं' कहां है ? तुम कहीं भी न पाओगे। 'हूं' तो तुम सब जगह पाओगे। 'मैं' तुम कहीं भी न पाओगे। सब जगह तुम्हें अस्तित्व मिलेगा, लेकिन अस्तित्व के साथ अहंकार तुम्हें कहीं न मिलेगा। अहंकार तुम्हारी निर्मिति है। वह तुम्हारा बनाया हुआ है। वह झूठा है, वह असत्य है। उससे ज्यादा अप्रामाणिक और कुछ भी नहीं है। वह कामचलाऊ है। उसकी संसार में जरूरत है; लेकिन सत्य में उसका कहीं भी कोई स्थान नहीं है।

तो एक तो 'मैं हूं'— यह ज्ञान बंध का कारण है। मेरा बोध, 'हूं-पन' का बोध नहीं, 'हूं-पन' का बोध तो शुद्ध है, उसमें कोई सीमा नहीं है। जब तुम कहते हो 'हूं', तो तुम्हारे 'हूं' में और वृक्ष के 'हूं' में कोई फर्क होगा ? तुम्हारे 'हूं' में और मेरे 'हूं' में कोई फर्क होगा ? जब तुम सिर्फ 'हो', तो नदियां, पहाड़, वृक्ष, सभी एक हो गया। जैसे ही मैंने कहा 'मैं', वैसे ही मैं अलग हुआ। जैसे ही मैंने कहा 'मैं', वैसे ही तुम टूट गये, पर हो गये, अस्तित्व से मैं पृथक हो गया।

'हूं-पन' ब्रह्म है और 'मैं' मनुष्य की अज्ञान-दशा है। जब तुम जानते हो कि सिर्फ 'हूं', तब तुम्हारे भीतर केंद्र नहीं होता। तब सारा अस्तित्व एक हो जाता है। तब तुम उस लहर की तरह हो, जो सागर में खो गई। अभी तुम उस लहर की तरह हो जो जम कर बर्फ हो गई है; सागर से टूट गई है।

'ज्ञानं बंधः। पहला तो, ज्ञान बंध है— इस बात का ज्ञान कि मैं हूं। दूसरा, ज्ञान बंध है— वह सब ज्ञान जो तुम बाहर से इकट्ठा कर लिये हो, जो तुमने शास्त्रों से चुराया है, जो तुमने सदगुरुओं से उधार लिया है, जो तुम्हारी स्मृति है— वह सब बंधन है। उससे तुम्हें मुक्ति न मिलेगी। इसलिए तुम पंडित से ज्यादा बंधा हुआ आदमी न पाओगे।

मेरे पास सब तरह के लोग आते हैं— सब तरह के मरीज। उसमें पंडित से ज्यादा कैंसरग्रस्त कोई भी नहीं है। उसका इलाज नहीं है। वह लाइलाज है। उसकी तकलीफ यह है कि वह जानता है। इसलिए, न वह सुन सकता है, न समझ सकता है। तुम उससे कुछ बोलो, इसके पहले कि तुम बोलो, उसने उसका अर्थ कर लिया है; इसके

पहले कि वह तुम्हें सुने, उसने व्याख्या निकाल ली है। शब्दों से भरा हुआ चित्त, जानने में असमर्थ हो जाता है। वह इतना ज्यादा जानता है, बिना कुछ जाने; क्योंकि सब जाना हुआ उधार है।

शास्त्र से अगर ज्ञान मिलता होता, तो सभी के पास शास्त्र हैं, ज्ञान सभी को मिल गया होता। ज्ञान तो तब मिलता है, जब कोई निःशब्द हो जाता है; जब वह सभी शास्त्रों को विसर्जित कर देता है; जब वह उस सब ज्ञान को, जो दूसरों से मिला है, वापिस लौटा देता है जगत को; जब वह उसे खोजता है, जो मेरा मूल अस्तित्व है, जो मुझे दूसरों से नहीं मिला।

इसे थोड़ा समझें। तुम्हारा शरीर तुम्हें तुम्हारे मां और पिता से मिला है। तुम्हारे शरीर में तुम्हारा कुछ भी नहीं है। आधा तुम्हारी मां का दान है, आधा तुम्हारे पिता का दान है। फिर तुम्हारा शरीर तुम्हें भोजन से मिला है—वह जो रोज तुम भोजन कर रहे हो; पांच तत्वों से मिला है—वायु है, अग्नि है, पांचों तत्व हैं, उनसे मिला है। इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम्हारी चेतना, तुम्हें पांचों तत्वों में से किसी से भी नहीं मिली। तुम्हारी चेतना तुम्हें मां और पिता से भी नहीं मिली।

तुम जो-जो जानते हो वह तुमने स्कूल, विश्वविद्यालय से सीखा है, शास्त्रों से सुना है, गुरुओं से पाया है। वह तुम्हारे शरीर का हिस्सा है, तुम्हारी आत्मा का नहीं। तुम्हारी आत्मा तो वही है जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिली है। जब तक तुम उस शुद्ध तत्व को न खोज लोगे, जो निपट तुम्हारा है, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला है—न मां ने दिया, न पिता ने दिया, न समाज ने, न गुरु ने, न शास्त्र ने—वही तुम्हारा स्वभाव है।

ज्ञान बंध है—क्योंकि, वह तुम्हें इस स्वभाव तक न पहुंचने देगा। ज्ञान ने ही तुम्हें बांटा है। तुम कहते हो कि मैं हिंदू हूं। तुमने कभी सोचा है कि तुम हिंदू क्यों हो ? तुम कहते हो कि मैं मुसलमान हूं। तुमने कभी विचारा कि तुम मुसलमान क्यों हो ? हिंदू और मुसलमान में फर्क क्या है ? क्या उनका खून निकालकर कोई डाक्टर परीक्षा करके बता सकता है कि यह हिंदू का खून है, यह मुसलमान का खून है ? क्या उनकी हड्डियां काटकर कोई बता सकता है कि हड्डी मुसलमान से आती है कि हिंदू से आती है ? कोई उपाय नहीं है। शरीर की जांच से कुछ भी पता न चलेगा; क्योंकि, दोनों के शरीर पांच तत्त्वों से बनते हैं। लेकिन अगर उनकी खोपड़ी की जांच करो तो पता चल जायेगा कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है; क्योंकि दोनों के शास्त्र अलग, दोनों के सिद्धांत अलग, दोनों के शब्द अलग। शब्दों का भेद है तुम्हारे बीच। तुम हिंदू हो;

क्योंकि तुम्हें एक तरह का ज्ञान मिला, जिसका ज्ञान हिंदू है। दूसरा जैन है; क्योंकि उसे दूसरी तरह का ज्ञान मिला, जिसका ज्ञान जैन है। तुम्हारे बीच जितने फासले हैं—दीवालें हैं—वे ज्ञान की दिवालें हैं, और सब ज्ञान उधार है।

तुम एक मुसलमान बच्चे को हिंदू के घर में रख दो, वह हिंदू की तरह बड़ा होगा। वह ब्राह्मण की तरह जनेऊ धारण करेगा। वह उपनिषद और वेद के वचन उद्धृत करेगा। और तुम एक हिंदू के बच्चे को मुसलमान के घर रख दो, वह कुरान की आयत दोहरायेगा।

ज्ञान तुम्हें बांटता है; क्योंकि ज्ञान तुम्हारे चारों तरफ एक दीवार खींच देता है। और ज्ञान तुम्हें लड़ाता है, और ज्ञान तुम्हारे जीवन में वैमनस्य और शत्रुता पैदा करता है। थोड़ी देर को सोचो कि तुम्हें कुछ भी न सिखाया जाये कि तुम हिंदू हो, या मुसलमान, या जैन, या पारसी, तो तुम क्या करोगे ? तुम बड़े होओगे एक मनुष्य की भांति; तुम्हारे बीच कोई दीवार न होगी।

दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं—तीन सौ कारागृह हैं। और हर आदमी के पैदा होते, उसे एक कारागृह से दूसरे कारागृह में डाल दिया जाता है। और पंडित, पुरोहित बड़ी चेष्टा करते हैं कि बच्चे पर जल्दी-से-जल्दी कब्जा हो जाए। उसको वे धर्म-शिक्षा कहते हैं। उससे ज्यादा अधर्म और कुछ भी नहीं है। वह उसको धर्म-शिक्षा कहते हैं। सात साल के पहले बच्चों को पकड़ते हैं; क्योंकि सात साल का बच्चा अगर बड़ा हो गया, तो फिर पकड़ना रोज-रोज मुश्किल हो जायेगा। और बच्चे को अगर थोड़ा भी बोध आ गया, तो फिर वह सवाल उठाने लगेगा। और सवालों का जवाब पंडितों के पास बिलकुल नहीं है। पंडित सिर्फ मूढ़ों को तृप्त कर पाते हैं। जितनी कम बुद्धि का आदमी हो, पंडित से उतनी जल्दी तृप्त हो जाता है। वह एक प्रश्न पूछता है, उत्तर मिल जाता है। तुम जाते हो, पंडित से पूछते हो, संसार को किसने बनाया ? वह कहता है, भगवान ने। तुम प्रसन्न घर लौट आते हो, बिना पूछे कि भगवान को किसने बनाया। अगर तुम दूसरा प्रश्न पूछते, पंडित नाराज हो जाता; क्योंकि, उसका उसे भी पता नहीं है। किताब में वह लिखा नहीं है। और फिर झंझट की बात है : परमात्मा को किसने बनाया ! फिर तुम पूछते ही चले जाओगे; वह कोई भी जवाब दे, तुम पूछोगे, उसको किसने बनाया।

अगर गौर से देखो तो तुम्हारे पहले सवाल का जवाब दिया नहीं गया है। पंडित ने तुम्हें सिर्फ संतुष्ट कर दिया; क्योंकि तुम बहुत बुद्धिमान नहीं हो। और बच्चे अबोध हैं।

उनका अभी तर्क नहीं जगा, विचार नहीं जगा; अभी वे प्रश्न नहीं पूछ सकते। अभी तुम जो भी कचरा उनके दिमाग में डाल दो, वे उसे स्वीकार कर लेंगे। बच्चे सभी कुछ स्वीकार कर लेते हैं; क्योंकि वे सोचते हैं, जो भी दिया जा रहा है, वह सभी ठीक है। बच्चा ज्यादा सवाल नहीं उठा सकता। सवाल उठाने के लिए थोड़ी प्रौढ़ता चाहिए! इसलिए सभी धर्म बच्चों की गर्दन पकड़ लेते हैं और फांसी लगा देते हैं।

फांसी बड़ी सुंदर है! किसी के गले में बाइबल लटकी है, किसी के गले में समयसार लटका है; किसी के गले में कुरान लटकी है, किसी के गले में गीता लटकी है। ये इतने प्रीतिकर बंधन हैं कि इनको छोड़ने की हिम्मत फिर जुटानी बहुत मुश्किल है। और जब भी तुम इन्हें छोड़ना चाहोगे, एक खतरा सामने आ जायेगा। क्योंकि, इन्हें छोड़ा तो तुम अज्ञानी! क्योंकि, जैसे तुम उन्हें छोड़ोगे, तुम पाओगे, मैं तो कुछ जानता नहीं, बस यह किताब सारी संपदा है। इसको सम्हालो; अपने अज्ञान को छिपाने का यही तो एक उपाय है। लेकिन अज्ञान छिपने से अगर मिटता होता, तो बड़ी आसान बात हो गई होती। अज्ञान छिपने से बढ़ता है। जैसे कोई अपने घाव को छिपा ले। उससे कुछ मिटेगा नहीं। घाव और भीतर ही भीतर बढ़ेगा; मवाद पूरे शरीर में फैल जायेगी।

शिव कहते है : ज्ञान बंध है—ज्ञान सीखा हुआ, ज्ञान उधार, ज्ञान दूसरे से लिया हुआ—बंधन का कारण है। तुम उस सबको छोड़ देना, जो दूसरे से मिला है। तुम उसकी तलाश करना, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला। तुम उसकी खोज में निकलना, उस चेहरे की खोज में जो कि तुम्हारा है। तुम्हारे भीतर छिपा हुआ एक झरना है चैतन्य का, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला। जो तुम्हारा स्वभाव है, जो तुम्हारी निज-संपदा है, निजत्व है—वही तुम्हारी आत्मा है।

तीसरा सूत्र है : योनिवर्ग और कलाशरीरम। योनि से अर्थ है : प्रकृति। इसलिए हम स्त्री को प्रकृति कहते हैं। स्त्री शरीर देती है; वह प्रकृति की प्रतीक है। और कला का अर्थ है : कर्त्ता का भाव। एक ही कला है—वह कला है, संसार में उतरने की कला और वह है—कर्त्ता का भाव। इन दो चीजों से मिलकर तुम्हारा शरीर निर्मित होता है—तुम्हारा कर्त्ता का भाव, तुम्हारा अहंकार, और प्रकृति से मिला हुआ शरीर। अगर तुम्हारे भीतर कर्त्ता का भाव है, तो तुम्हें योग्य-शरीर प्रकृति देती चली जायेगी। इसी तरह तुम बार-बार जन्मे हो। कभी तुम पशु थे, कभी पक्षी थे, कभी वृक्ष थे, कभी मनुष्य; तुमने जो चाहा है, वह तुम्हें मिला है, तुमने जो आकांक्षा की है, तुमने जो कर्तृत्व

की वासना की है, वही घट गया है। तुम्हारे कर्तृत्व की वासना घटना बन जाती है। विचार वस्तुएं बन जाते हैं। इसलिए सोच-विचार से वासना करना; क्योंकि सभी वासनाएं पूरी हो जाती हैं—देर अबेर।

अगर तुम बहुत बार देखते हो आकाश में पक्षी को और सोचते हो कि कैसी स्वतंत्रता है पक्षी को ! काश हम पक्षी होते ! देर न लगेगी, जल्दी ही तुम पक्षी हो जाओगे। तुम अगर देखते हो एक कुत्ते को, संभोग करते हुए और तुम सोचते हो—कैसी स्वतंत्रता, कैसा सुख ! जल्दी ही तुम कुत्ते हो जाओगे। तुम जो भी वासना अपने भीतर संगृहीत करते हो, वह बीज बन जाती है।

प्रकृति तो केवल शरीर देती है; कलाकार तो तुम्हीं हो, स्वयं को निर्माण करने वाले। अपने शरीर को तुमने ही बनाया है—यह कला का अर्थ है। कोई तुम्हें शरीर नहीं दे रहा है; तुम्हारी वासना ही निर्मित करती है।

तुमने कभी खयाल किया ? रात तुम सोते हो, तो आखिरी जो विचार होता है सोते समय, वही सुबह उठते वक्त पहला विचार होगा। और रातभर तुम सोये रहे। वह बीज की तरह विचार भीतर पड़ा रहा। जो अंतिम था, वह सुबह प्रथम हो गया। तुम मरोगे इस शरीर से, आखिरी मरते क्षण में, तुम्हारे सारे जीवन की वासना संगृहीत होकर बीज बन जायेगी। वही बीज नया गर्भ बन जायेगा। जहां से तुम मिटे, वहीं से तुम फिर शुरू हो जाओगे।

तुम जो भी हो, वह तुम्हारा ही कृत्य है। किसी दूसरे को दोष मत देना। यहां कोई दूसरा है भी नहीं, जिसको दोष दिया जा सके। यह तुम्हारे ही कर्मों का संचित फल है। तुम जो भी हो—सुंदर-कुरूप, दुखी-सुखी, स्त्री-पुरुष—तुम जो भी हो, यह तुम्हारे ही कृत्यों का फल है। तुम ही हो कलाकार, अपने जीवन के। मत कहना कि भाग्य ने बनाया है; क्योंकि वह धोखा है। इस भांति तुम जिम्मेवारी किसी और पर डाल रहे हो। मत कहना कि परमात्मा ने भेजा है। तुम परमात्मा पर जिम्मेवारी मत डालना; क्योंकि वह तरकीब है, खुद के दायित्व से बचने की। इस कारागृह में तुम अपने ही कारण हो। जो व्यक्ति इस बात को ठीक से समझ लेता है कि अपने ही कारण मैं यहां हूं, उसके जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।

शिव कह रहे हैं: योनिवर्ग और कला शरीर है। प्रकृति तो सिर्फ योनि है। वह तो सिर्फ गर्भ है। तुम्हारा अहंकार उस योनि में बीज बनता है। तुम्हारे कर्तृत्व का भाव, कि मैं यह करूं, मैं यह पाऊं, मैं यह हो जाऊं—उसमें बीज बनता है। और जहां भी तुम्हारे

कर्तृत्व का कला और प्रकृति की योनि का मिलन होता है, शरीर निर्मित हो जाता है।

इसलिए बुद्ध-पुरुष कहते हैं : सभी वासनाओं को छोड़ दो, तभी तुम मुक्त हो सकोगे। तुमने अगर स्वर्ग की वासना की तो तुम देवता हो जाओगे, लेकिन वह भी मुक्ति न होगी। क्योंकि वासनाओं से कभी भी अशरीर की स्थिति पैदा नहीं होती; सभी वासनाओं से शरीर-निर्मित होती है। जब तक तुम निर्वासना को उपलब्ध नहीं होते; जब तक तृष्णा तुमने पूरी ही नहीं छोड़ दी, तब तक तुम नये शरीरों में भटकते रहोगे। और शरीर के ढंग अलग हों, शरीर की मौलिक स्थिति एक ही जैसी है। शरीर के दुख समान है; चाहे पक्षी का शरीर हो, चांहे आदमी का शरीर हो। दुखों में कोई भेद नहीं है। क्योंकि मौलिक दुख है—आत्मा का शरीर में बंध जाना। मौलिक दुख है—कारागृह में प्रविष्ट हो जाना। फिर कारागृह की दीवालें वर्तुलाकार हैं कि त्रिकोण हैं, कि चौकोण हैं उससे कोई हल नहीं होता, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता; तुम भला सोचते हो कि फर्क पड़ता है।

एक मेरे मित्र हैं। ड्राइंग के शिक्षक हैं। उन्हें जेल हो गई। लौटे तीन साल बाद, तो मैंने उनसे पूछा, कैसे रहे दिन, कैसे कटे दिन ? उन्होंने कहा, और तो सब ठीक था, लेकिन मेरे कोठरी के कोने नब्बे कोण के नहीं थे। वे ड्राइंग के शिक्षक हैं। उनकी बुद्धि!....वे नब्बे कोण के नहीं थे—कोठरी के कोने। उनकी असली तकलीफ तीन साल यही रही। क्योंकि उसी कोठरी में रहना और बार-बार देखना वह कोना, वह नब्बे कोण का नहीं है। जो बात उन्होंने मुझसे कही वह यह कि और तो सब ठीक था, बाकी कुछ अड़चन न थी; लेकिन कोने ठीक नब्बे के नहीं थे।

कोने नब्बे के हों कि नब्बे के न हों, उससे क्या बुनियादी फर्क पड़ेगा ? कारागृह, कारागृह है। पक्षी का शरीर कि आदमी का, बहुत फर्क नहीं पड़ता। बंद तुम हो गये, वही दुख है। बंध गये तुम, वही दुख है। वासना बांधती है। वासना है रज्जु, जिससे हम बंधते है। और ध्यान रखना, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है।

उद्यमो भैरवः। चौथा सूत्र है : उद्यम ही भैरव है। उद्यम उस आध्यात्मिक प्रयास को कहते हैं, जिससे तुम इस कारागृह के बाहर होने की चेष्टा करते हो। वही भैरव है। भैरव शब्द पारिभाषिक है। 'भ' का अर्थ है : 'भरण', 'र' का अर्थ है : रवण, 'व' का अर्थ है : वमन। भरण का अर्थ है : भारण, रवण का अर्थ है : संहार, और वमन का अर्थ है : फैलाना। भैरव का अर्थ है : ब्रह्म—जो धारण किये है, जो सम्हाले है, जिसमें हम पैदा होंगे, और जिसमें हम मिटेंगे; जो विस्तार है और जो ही संकोच बनेगा; जो

सृष्टि का उद्भव है, और जिसमें प्रलय होगा। मूल अस्तित्व का नाम भैरव है।

शिव कहते हैं : उद्यम ही भैरव है। और जिस दिन भी तुमने आध्यात्मिक जीवन की चेष्टा शुरू की, तुम भैरव होने लगे; तुम परमात्मा के साथ एक होने लगे। तुम्हारी चेष्टा की पहली किरण और तुमने सूरज की तरफ यात्रा शुरू कर दी। पहला खयाल तुम्हारे भीतर मुक्त होने का, और ज्यादा दूर नहीं है मंजिल; क्योंकि पहला कदम करीब-करीब आधी यात्रा है।

उद्यम भैरव है। पाओगे, देर लगेगी। मंजिल पहुंचने में समय लगेगा। लेकिन तुमने चेष्टा शुरू की और तुम्हारे भीतर बीज आरोपित हो गया कि मैं उठूं इस कारागृह से बाहर; मैं जाऊं, शरीर से मुक्त होऊं; मैं हटूं वासना से; मैं अब और बीज न बोऊं, इस संसार को बढ़ाने के; मैं और जन्मों की आकांक्षा न करूं। तुम्हारे भीतर जैसे ही यह भाव सघन होना शुरू हुआ कि अब मैं मूर्च्छा को तोड़ूं, और चैतन्य बनूं, वैसे ही तुम भैरव होने लगे; वैसे ही, तुम ब्रह्म के साथ एक होने लगे। क्योंकि वस्तुतः तो तुम एक हो ही, सिर्फ तुम्हें यह स्मरण आ जाए। मूलतः तो तुम एक हो ही। तुम उसी सागर के झरने हो, तुम उसी सूरज की किरण हो, तुम उसी महा आकाश के एक छोटे से खंड हो। पर तुम्हें यह स्मरण आना शुरू हो जाये और दीवालें विसर्जित होने लगें, तो तुम इस महा आकाश के साथ एक हो जाओगे।

उद्यम भैरव है। बड़ी सघन चेष्टा करना जरूरी है। क्योंकि नींद गहरी है; तोड़ोगे सतत, तो ही टूट पायेगी। आलस्य करोगे, संभव नहीं होगा। आज तोड़ोगे, कल फिर बना लोगे तो फिर भटकते रहोगे। एक हाथ से तोड़ोगे, दूसरे से बनाते जाओगे, तो श्रम व्यर्थ होगा। उद्यम का अर्थ है—तुम्हारी पूरी चेष्टा संलग्न हो जाये।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं—हम करते हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा। अब मैं उनकी शकल देखता हूं। वे करते हैं ही नहीं, या ऐसा मरे-मरे करते हैं, जैसे मक्खियां उड़ा रहे हो। उनके करने में कोई प्राण नहीं हैं, इसलिए नहीं होता। लेकिन वे आते ऐसे हैं जैसे कि परमात्मा पर बड़ी कृपा कर रहे हैं कि करते हैं और नहीं हो रहा है। तो, शिकायत लेकर आये हैं कि कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है, कहीं कुछ अन्याय हो रहा है कि दूसरों को हो रहा है, हमें नहीं हो रहा है।

इस जगत में अन्याय होता ही नहीं। इस जगत में जो भी होता है, न्याय है। क्योंकि यहां कोई आदमी नहीं बैठा है, न्याय-अन्याय करने को। जगत में तो नियम हैं, उन्हीं नियमों का नाम धर्म है। तुम अगर इरछे-तिरछे चले, गिरोगे, टांग टूट जायेगी; तो तुम

जाकर अदालत में यह नहीं कहोगे कि गुरुत्वाकर्षण के कानून पर एक मुकदमा चलाता हूं। तो अदालत कहेगी तुम तिरछे मत चलते। गुरुत्वाकर्षण न तुम्हें गिराने को उत्सुक है, न तुम्हें सम्हालने में उत्सुक है। तुम जब सीधे-सीधे चलते हो, वही तुम्हें संभालता है। जब तुम तिरछे चलते हो, वही तुम्हें गिराता है। न गिरने-गिराने की उसकी कोई आकांक्षा है, न सम्हालने की। तटस्थ है जगत का नियम। उस तटस्थ नियम का नाम धर्म है। उसको हिंदुओं ने ऋत कहा है। वह परम नियम है। वह तुम्हारी तरह पक्षपात नहीं करता कि किसी को गिरा दे, किसी को उठा दे। तुम जैसे ही ठीक चलने लगते हो, वह तुम्हें संभालता है। तुम गिरना चाहते हो, वह तुम्हें गिराता है। वह हर हालत में उपलब्ध है। तुम जैसा भी उसका उपयोग करना चाहते हो, वह तुम्हें खुला है। उसके द्वार बंद नहीं है। तुम सिर ठोकना चाहते हो दरवाजे से, सिर ठोक लो। तुम दरवाजा खोलकर भीतर जाना चाहते हो, भीतर चले जाओ। वह तटस्थ है।

उद्यम भैरव है। महान श्रम चाहिए। उद्यम का अर्थ है : प्रगाढ़ श्रम। तुम्हारी समग्रता लग जाये श्रम में, उसका नाम उद्यम है। और, तब देर न लगेगी तुम्हारे भैरव हो जाने में।

शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है—पांचवां सूत्र है। और अगर तुमने ठीक उद्यम किया, अगर तुमने अपनी संपूर्ण ऊर्जा को संलग्न कर दिया चेष्टा में—सत्य की खोज, परमात्मा की खोज या आत्मा की खोज में, तो तुम्हारे भीतर जो शक्ति का चक्र है, वह पूर्ण हो जाता है। अभी तुम्हारे भीतर शक्ति का चक्र पूर्ण नहीं है, कटा-बटा है।

वैज्ञानिक कहते हैं : बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी अपनी पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा प्रतिभा का उपयोग नहीं करता, पच्चासी प्रतिशत प्रतिभा ऐसे ही सड़ जाती है। यह तो बुद्धिमान आदमी की बात है; बुद्धू का क्या हिसाब ! वह तो शायद करता ही नहीं। हम अपने शरीर की भी ऊर्जा का पूरा उपयोग नहीं करते—पांच प्रतिशत ज्यादा से ज्यादा। तो अगर हम मंदे-मंदे जीते हैं, अगर हमारा दीया टिमटिमाता-टिमटिमता लगता है, तो कसूर किसका है ? तुम जीते ही नहीं पूरी तरह। जैसे तुम जीने से भी भयभीत हो कि लपट कहीं जोर से न आ जाए। तुम डरे-डरे हो, तुम कंपते-कंपते जीते हो, तो फिर शक्ति का जो चक्र है तुम्हारे भीतर, वह पूरा नहीं हो पाता। तो तुम्हारी गाड़ी ऐसे चलती है, जैसे कभी कार को तुमने देखा हो—पेट्रोल कभी आता, कभी नहीं आता; कभी कचरा आता तो कार ऐसे चलती है जैसे वह हिचकी खा रही हो। बस ऐसा

तुम्हारा जीवन है। हिचकी खाते तुम चलते हो। जरा-जरा-सी शक्ति के खंड-खंड आते हैं; अखंड शक्ति नहीं हो पाती। जिस चीज में भी तुम अपनी पूरी शक्ति लगा दोगे, वह कोई भी हो चीज—अगर तुम चित्र बनाते हो, और चित्रकार हो, और तुमने अपनी पूरी शक्ति को चित्र बनाने में लगा दिया, पूरी कि रत्तीभर बाकी न बची तो तुम वहीं से मुक्त हो जाओगे; क्योंकि, वही उद्यम है। पूर्ण होते ही भैरव हो जाता है।

अगर तुम एक मूर्तिकार हो; तुमने सब कुछ मूर्ति में समाहित कर दिया कि मूर्ति बनाते समय तुम न बचे, बस मूर्ति ही बची, तो शक्ति का चक्र पूरा हो जाता है। जब तुम पूरी शक्ति को निमज्जित करते हो, किसी भी कृत्य में, वही ध्यान हो जाता है; तब भैरव निकट है, मंदिर पास आ गया।

पांचवा सूत्र है : शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है। और जब भी तुम्हारी शक्ति का चक्र पूरा होता है—टोटल, समग्र; अंश-अंश नहीं, पूर्ण; उसी क्षण तुम्हारे लिए विश्व समाप्त हो गया। तुम्हारे लिए फिर कोई संसार नहीं। तुम परमात्मा हो गये। तुम भैरव हो गये। तुम मुक्त हो गये। फिर तुम्हारे लिए न कोई बंधन है, न कोई शरीर है, न कोई संसार है।

पूर्ण शक्ति का प्रयोग, स्मरण रखना। इस समाधि साधना शिविर में अगर तुमने पूरी शक्ति को लगाया—ऐसे ही ऊपर-ऊपर नहीं ध्यान किये, पूरी शक्ति लगा दी—तो तुम अनुभव करोगे कि जिस क्षण शक्ति पूरी लग जायेगी, उसी क्षण; फिर क्षणभर की देर नहीं लगती—अचानक संसार खो जाता है, परमात्मा सामने आ जाता है। तुम्हारी शक्ति का पूरा लग जाना ही तुम्हारे जीवन की क्रांति हो जाती है। फिर संसार की तरफ पीठ, परमात्मा की तरफ मुंह हो जाता है। उसकी तुम्हें एक झलक भी मिल जाए तो फिर तुम वही न हो सकोगे, जो तुम पहले थे। उसकी एक झलक काफी है। फिर तुम्हारा जीवन उसी यात्रा में संलग्न हो जायेगा।

तो ध्यान रखना, यहां पूरा अपने को डुबाना, तो ही कुछ हो सकेगा। अगर तुमने थोड़ा भी अपने को बचाया तो तुम्हारा श्रम व्यर्थ है। जब तक श्रम उद्यम न बन जाए—पूर्ण, टोटल एफर्ट न बन जाए—तब तक भैरव की उपलब्धि नहीं होगी।

आज इतना ही।

जीवन-जागृति के साधना-सूत्र

दूसरा प्रवचन

दिनांक 12 सितंबर, 1974,
प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

जाग्रतस्वप्नसुषुप्तभेदे तुर्याभोग संवित ।
ज्ञानं जाग्रत ।
स्वप्नोविकल्पाः ।
अविवेको मायासौषुप्तम् ।
त्रितयभोक्ता वीरेशः ।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति— इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने से तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है।
ज्ञान का बना रहना ही जाग्रत अवस्था है।
विकल्प ही स्वप्न हैं।
अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव मायामय सुषुप्ति है।
तीनों का भोक्ता वीरेश कहलाता है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति— इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने से तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है। तुर्या है— चौथी अवस्था। तुर्यावस्था का अर्थ है— परम ज्ञान। तुर्यावस्था का अर्थ है कि किसी प्रकार का अंधकार भीतर न रह जाये, सभी ज्योतिर्मय हो उठे; जरा-सा कोना भी अंतस का अंधकारपूर्ण न हो; कुछ भी न बचे भीतर, जिसके प्रति हम जाग्रत नहीं हो गये; बाहर और भीतर, सब ओर जागृति का प्रकाश फैल जाये।

अभी जहां हम हैं, वहां या तो हम जाग्रत होते हैं या हम स्वप्न में होते हैं या हम सुषुप्ति में होते हैं। चौथे का हमें कुछ भी पता नहीं है। जब हम जाग्रत होते हैं तो बाहर का जगत तो दिखाई पड़ता है, हम खुद अंधेरे में होते हैं; वस्तुएं तो दिखाई पड़ती हैं, लेकिन स्वयं का कोई बोध नहीं होता; संसार तो दिखाई पड़ता है, लेकिन आत्मा की कोई प्रतीति नहीं होती। यह आधी जाग्रत अवस्था है।

जिसको हम जागरण कहते हैं— सुबह नींद से उठकर— वह अधूरा जागरण है। और अधूरा भी कीमती नहीं है; क्योंकि व्यर्थ तो दिखाई पड़ता है और सार्थक दिखाई नहीं पड़ता। कूड़ा-करकट तो दिखाई पड़ता है, हीरे अंधेरे में खो जाते हैं। खुद तो हम दिखाई नहीं पड़ते कि कौन हैं और सारा संसार दिखाई पड़ता है।

दूसरी अवस्था है स्वप्न की। हम तो दिखाई पड़ते ही नहीं स्वप्न में, बाहर का संसार भी खो जाता है। सिर्फ, संसार से बने हुए प्रतिबिंब मन में तैरते हैं। उन्हीं प्रतिबिंबों को हम जानते और देखते हैं— जैसे कोई दर्पण में देखता हो चांद को या झील पर कोई देखता हो आकाश के तारों को। सुबह जागकर हम वस्तुओं को सीधा देखते हैं; स्वप्न में हम वस्तुओं का प्रतिबिंब देखते हैं, वस्तुएं भी नहीं दिखाई पड़तीं।

और तीसरी अवस्था है— जिससे हम परिचित हैं— बाहर का जगत भी खो जाता

है; वस्तुओं का जगत भी अंधेरे में खो जाता है, और प्रतिबिंब भी नहीं दिखाई पड़ते; स्वप्न भी तिरोहित हो जाता है; तब हम गहन अंधकार में पड़ जाते हैं— उसी को हम सुषुप्ति कहते हैं। सुषुप्ति में न तो बाहर का ज्ञान रहता है, न भीतर का। जाग्रत में बाहर का ज्ञान रहता है। और जाग्रत और सुषुप्ति के बीच की एक मध्य-कड़ी है : स्वप्न, जहां बाहर का ज्ञान तो नहीं होता, लेकिन बाहर की वस्तुओं से बने हुए प्रतिबिंब हमारे मस्तिष्क में तैरते हैं और उन्हीं का ज्ञान होता है।

चौथी अवस्था है : तुर्या। वही सिद्धावस्था है। सारी चेष्टा उसी को पाने के लिए है। सब ध्यान, सब योग तुर्यावस्था को पाने के उपाय हैं। तुर्यावस्था का अर्थ है : भीतर और बाहर दोनों का ज्ञान; अंधेरा कहीं भी नहीं— न तो बाहर और न भीतर, पूर्ण जागृति; जिसको हमने बुद्धत्व कहा है, महावीर ने जिनत्व कहा है; जिसमें न तो बाहर अंधकार है, न भीतर, सब तरफ प्रकाश हो गया है; जिसमें वस्तुओं को भी हम जानते हैं, स्वयं को भी हम जानते हैं। ऐसी जो चौथी अवस्था है, वह कैसे पाई जाए— इसके ही ये सूत्र हैं।

पहला सूत्र है : जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति— इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जान लेने से तुर्यावस्था का ज्ञान हो जाता है। अभी हम जानते तो हैं, लेकिन पृथक रूप से नहीं जानते। जब हम स्वप्न में होते हैं, तब हमें पता नहीं चलता कि मैं स्वप्न देख रहा हूं; तब तो हम स्वप्न के साथ एक हो जाते हैं। सुबह जागकर पता चलता है कि रात सपना देखा। लेकिन अब तो वह अवस्था खो चुकी है। जब वह अवस्था होती है, तब हम पृथक रूप से नहीं जान पाते; तादात्म्य हो जाता हैं। स्वप्न में लगता है कि हम स्वप्न हो गये। सुबह जागकर लगता है कि अब हम स्वप्न नहीं रहे। लेकिन अब हमारा तादात्म्य जाग्रत से हो जाता है। हम कहते हैं : अब मैं जाग गया। लेकिन तुमने कभी सोचा है कि रात तुम फिर सो जाओगे और यह तादात्म्य भी भूल जायेगा; फिर सपना आयेगा और फिर तुम सपने के साथ एक हो जाओगे। जो भी तुम्हारी आंख पर आ जाता है, तुम उसी के साथ एक हो जाते हो, जबकि तुम सभी से पृथक हो।

यह ऐसा ही है कि जैसे वर्षा आये और तुम समझने लगो कि मैं वर्षा हो गया, गरमी आये और तुम समझने लगो कि मैं गरमी हो गया और फिर शीत आये और तुम समझो कि मैं शीत हो गया। लेकिन ये तीनों मौसम तुम्हारे आसपास हैं; तुम तीनों से अलग हो। बचपन था तो तुमने समझा कि मैं बच्चा हूं। जवान हुए तो तुमने समझा कि मैं जवान हूं। बूढ़े हुए तो तुम समझ लोगे कि मैं बूढ़ा हूं। लेकिन तुम तीनों के पार हो।

अगर तुम पार न होते तो बच्चा जवान होता कैसे ? तुम्हारे भीतर कुछ है जो बचपन को छोड़ सका और जवान हो सका। वह कुछ बचपन और जवानी दोनों से अलग है।

स्वप्न में तुम खो जाते हो। जागकर फिर तुम्हें लगता है कि सपना झूठ था। तुम्हारे भीतर ही कोई चेतना का तत्व है जो यात्रा करता है। स्वप्न, सुषुप्ति, जाग्रत तुम्हारी यात्रा के पड़ाव हैं, तुम नहीं हो। और जैसे ही तुम इस बात को समझ पाओगे कि तुम पृथक हो, अलग हो, वैसे ही चौथे का जन्म शुरू हो जाएगा। वह पृथकता ही चौथा है।

महावीर ने इसके लिए बहुत कीमती शब्द का प्रयोग किया है। इसे महावीर कहते हैं : भेद विज्ञान। वे कहते हैं कि सारा विज्ञान अध्यात्म के भेद को साफ-साफ कर लेने में है। वही इस शिवसूत्र का अर्थ है कि तुम्हें, तीनों अवस्थाएं अलग-अलग हैं, इसका पता चल जाए। जैसे ही तीनों अवस्थाओं को तुम अलग-अलग जान लोगे, तुम यह भी जान लोगे कि मैं तीनों से अलग हूं— तुम्हें भेद की कला आ गई। अभी हमारी मनोदशा ऐसी है कि जो भी हमारे सामने होता है, हम उसी के साथ एक हो जाते हैं।

किसी ने तुम्हें गाली दी, क्रोध उठा; उस क्षण में तुम क्रोध के साथ एक हो जाते हो। तुम भूल ही जाते हो कि क्षणभर पहले क्रोध नहीं था, तब भी तुम थे। क्षणभर बाद क्रोध फिर चला जाएगा, तब भी तुम रहोगे। तो क्रोध बीच में आया हुआ धुआं है। उसने तुम्हें कितना ही घेर लिया हो, लेकिन वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

चिंता आती है तो चिंता का बादल घिर जाता है; सूरज छिप जाता है। तुम भूल ही जाते हो कि मैं पृथक हूं। सुख आता है तो तुम नाचने लगते हो। दुख आता है तो तुम रोने लगते हो। जो भी घटता है, तुम उसी के साथ एक हो जाते हो। तुम्हें अपनी पृथकता का कोई बोध नहीं है। इसे धीरे-धीरे अलग करना सीखना होगा। हर स्थिति में अलग करना सीखना होगा। भोजन करते वक्त जानना कि जो भोजन कर रहा है, वह शरीर है। भूख लगे तो जानना कि जिसे भूख लगी है, वह शरीर है। मैं सिर्फ जाननेवाला हूं। चेतना को कोई भूख लग भी नहीं सकती। गरमी लगे और पसीना बहे तो जानना कि वह शरीर पर घट रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम गरमी में बैठे रहना और पसीना बहने देना; हटना, सुविधा बनाना; लेकिन शरीर के लिए ही सुविधा बनाई जा रही है, तुम सिर्फ जाननेवाले हो।

धीरे-धीरे प्रत्येक घटना जो तुम्हें घेरती है, तुम उससे अपने को अलग करते जाना। कठिन है पृथक करना; क्योंकि बहुत बारीक फासला है, सीमा-रेखा साफ नहीं है; क्योंकि अनंत जन्मों में तुमने तादात्म्य करना ही सीखा है, तोड़ना नहीं सीखा। तुमने

हमेशा अपने को जोड़ना सीखा है— स्थितियों के साथ; तुम तोड़ने की बात ही भूल गये हो। इसका नाम ही बेहोशी है— यह जो तुमने जोड़ना सीख लिया है।

एक सुबह, मुल्ला नसरुद्दीन अस्पताल में अपने मित्र के पास बैठा था। मित्र ने आंख खोली और उसने कहा, 'नसरुद्दीन, क्या हुआ ? मुझे कुछ याद भी नहीं आता।' नसरुद्दीन ने कहा, 'रात, तुम जरा ज्यादा पी गये और फिर तुम खिड़की पर चढ़ गये। और तुमने कहा कि मैं उड़ सकता हूं। और तुम उड़ गये। तीन मंजिल मकान पर थे। घटना जाहिर है। सब हड्डियां-पसलियां टूट गयी हैं।'

मित्र ने उठने की कोशिश की और कहा कि नसरुद्दीन, तुम वहां थे ? और तुमने यह होने दिया ? तुम किस तरह के मित्र हो ?

नसरुद्दीन ने कहा, 'अब यह बात मत उठाओ। उस समय तो मुझे भी लग रहा था कि तुम यह कर सकते हो। यही नहीं, अगर मेरे पायजामे का नाड़ा थोड़ा ढीला न होता तो मैं भी तुम्हारे साथ आ रहा था। तो कहां उड़ने में पायजामा सम्हालूंगा, इसलिए मैं रुक गया और बच गया। तुम ही थोड़े पी गये थे, मैं भी पी गया था।'

बेहोशी का अर्थ है : जो भी चित्त में दशा आ जाए, उसी के साथ एक हो जाना। शराबी को एक ख्याल आ गया कि उड़ सकता हूं तो अब वह भेद नहीं कर सकता। सोचने के लिए जगह नहीं है। विवेक के लिए सुविधा नहीं है। इसी के साथ एक हो गया !

तुम्हारा जीवन इसी शराबी जैसा है। माना कि तुम खिड़कियों से नहीं उड़ते और माना कि तुम अस्पताल में नहीं पाये जाते और हड्डियां नहीं तोड़ लेते; लेकिन बहुत गौर से देखोगे तो तुम अस्पताल में ही हो और तुम्हारी सब हड्डियां टूट गई हैं। क्योंकि तुम्हारा पूरा जीवन एक रोग है। और उस रोग में सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ हाथ आता नहीं है। सब जगह तुम गिरे हो। सब जगह तुमने अपने को तोड़ा है। और सारे तोड़ने के पीछे एक ही मूर्च्छा का सूत्र है कि जो भी घटता है, तुम उससे फासला नहीं कर पाते।

थोड़े दूर हटो ! एक-एक कदम लंबी यात्रा है; क्योंकि हजारों-लाखों जन्मों में जिसको बनाया है, उसको मिटाना भी आसान नहीं होगा। पर टूटना हो जाता है; क्योंकि वही सत्य है। तुमने जो भी बना लिया है, वह असत्य है। इसलिए हिंदू इसे माया कहते हैं। माया का अर्थ है कि तुम जिस संसार में रहते हो, वह झूठ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि बाहर जो वृक्ष है, वह झूठ है; पर्वत जो है, वह झूठ है और आकाश में चांद-तारे

हैं, वे झूठ हैं। नहीं, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा जो तादात्म्य है, वह झूठ है। और, उसी तादात्म्य से तुम जीते हो। वही तुम्हारा संसार है।

कैसे तादात्म्य टूटे ? तो पहले तो जागने से शुरू करो; क्योंकि वहीं थोड़ी-सी किरण जागरण की है। स्वप्न से तो तुम कैसे शुरू करोगे। मुश्किल होगा। और सुषुप्ति का तो तुम्हें कोई पता नहीं है। वहां तो सब होश खो जाता है। जाग्रत से शुरू करो। साधना शुरू होती है जाग्रत से। वह पहला कदम है। दूसरा कदम है : स्वप्न। और तीसरा कदम है : सुषुप्ति। और जिस दिन तुम तीनों कदम पूरे कर लेते हो, चौथा कदम उठ जाता है, वह चौथा कदम है : तुर्यावस्था— वह सिद्धावस्था है।

जाग्रत से शुरू करो; क्योंकि वही रास्ता है। इसलिए उसको जाग्रत कहा है; वह जाग्रत है भी नहीं। क्योंकि कैसी जागृति, जब तुम वस्तुओं में खोये हुए हो और अपने प्रति तुम्हें कोई भी होश नहीं है ! उसको क्या जागरण कहना; नाम मात्र को जागरण है। लेकिन उसको जाग्रत कहा है। ठीक जाग्रत तो हमने बुद्धपुरुषों को कहा है। लेकिन यह जागरण है, इस अर्थ में, कि इसमें थोड़ी-सी संभावना जागने की है।

तो पहले तुम जागरण से शुरू करो। भूख लगे, भोजन देना; लेकिन इस स्मरण को साधे रखना कि भूख शरीर को लगती है, मुझे नहीं। पैर में चोट लगे तो मरहमपट्टी करना, अस्पताल जाना, दवा लेना; लेकिन भीतर एक जागरण को साधे रखना कि चोट शरीर को लगी है, मुझे नहीं। इतने ही स्मरण को रखने से ही तुम पाओगे कि निन्यानबे प्रतिशत पीड़ा तिरोहित हो गई। निन्यानबे प्रतिशत पीड़ा इतना होश रखने से ही तिरोहित हो जाती है कि जो चोट लगी है, वह मुझे नहीं लगी। इतना बोध भी तत्क्षण तुम्हारे दुख को विसर्जित कर देता है। एक प्रतिशत बची रहेगी; क्योंकि यह बोध पूरा नहीं है। जिस दिन बोध पूरा हो जाएगा, उस दिन समग्र दुख विसर्जित हो जाता है।

बुद्ध ने कहा है : जाग्रत पुरुष का दुख-निरोध हो जाता है। तुम उसे दुख नहीं दे सकते। तुम उसके हाथ-पैर काट सकते हो; तुम उसकी हत्या कर सकते हो; तुम उसे आग में जला सकते हो; लेकिन दुख नहीं दे सकते हो; क्योंकि प्रतिपल जो भी घट रहा है, वह उससे अलग है।

तो, जागने से शुरू करो। रास्ते पर चलना जरूर; लेकिन ध्यान रखना कि तुम नहीं चल रहे हो, शरीर ही चल रहा है। तुम कभी चले भी नहीं। तुम चलोगे कैसे ? आत्मा का कोई पैर है कि चल सके ? आत्मा का कोई पेट है कि उसे भूख लगे ? आत्मा की कोई भी वासना नहीं है। सभी वासना शरीर की है। आत्मा निर्वासना है; इसलिए न

चलती है, न चल सकती है। तुम्हारा शरीर ही चल रहा है। इसे जब तक होश रहे, सम्हालने की कोशिश करो। धीरे, धीरे, धीरे, एक बड़ा अनूठा और आह्लादकारी अनुभव होगा कि रास्ते पर चलते हुए अचानक किसी दिन पाओगे कि तुम्हारे भीतर दो हिस्से हो गये— एक चल रहा है और एक नहीं चल रहा है; एक भोजन कर रहा है और एक नहीं भोजन कर रहा है।

उपनिषद कहते हैं : एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, दो पक्षी। ऊपर का पक्षी शांत है— न हिलता, न डुलता; न रोता, न हंसता; न आता, न जाता; बस बैठा है शांत। नीचे का पक्षी बड़ा बेचैन है; इस डाल से उस डाल पर उछलता है। इस फल को पकड़ता है, उसको पकड़ता है। बड़े सपने देखता है। बड़ी दौड़-धूप करता है। वे दोनों पक्षी तुम्हारे भीतर हैं। वह जो वृक्ष है, वह तुम हो। एक तुम्हारे भीतर जो पक्षी है, जो कभी हिला-डुला नहीं है, जो बस बैठा देख रहा है— उस पक्षी को हमने साक्षी कहा है।

जीसस ने कहा है कि एक ही बिस्तर पर तुम सोते हो; उसमें एक मरा हुआ है और एक सदा जीवित है। और एक सदा से मरा हुआ है और एक सदा जीवित रहेगा। वह बिस्तर तुम ही हो। जब रात तुम बिस्तर पर सोते हो, तो एक उसमें मुर्दा है और एक उसमें शाश्वत चैतन्य है। पर फर्क करना, फासला करना; कठिन श्रम-उद्यम की जरूरत है।

तो पहले तो तुम दिन से कोशिश करो। सुबह जब उठते हो, जब पहली किरण आती है होश की, तभी से तुम साधने की कोशिश करो। हजारों प्रयास करोगे, तब कहीं एक प्रयास सफल होगा। पर एक भी सफल हो जाए, तो तुम पाओगे कि हजारों साल की मेहनत करनी महंगी नहीं थी। क्योंकि एक क्षण को भी तुम्हें पता चल जाए कि जो चल रहा था, वह तुम नहीं हो; जो रुका है, वह तुम हो; जो वासना से भरा है, वह तुम नहीं; जो सदा निर्वासना है, वह तुम हो; जो मरण-धर्मा है, वह तुम नहीं; जो अमृत का स्रोत है, वह तुम हो। एक क्षण को भी इसका पता चल जाए तो एक क्षण को भी तुम महावीर या बुद्ध हो जाओ, या शिवत्व को उपलब्ध हो जाओ तो तुमने महान संपदा का द्वार खोल लिया। फिर यात्रा सरल है। स्वाद के बाद यात्रा बड़ी सरल है। स्वाद के पहले ही सारी क़ठिनाई है।

दिन से शुरू करो; और, अगर तुमने दिन से शुरू किया तो तुम धीरे-धीरे सफल हो जाओगे स्वप्न में भी। गुरजियेफ— इस सदी का एक बहुत बड़ा गुरु, महागुरु—वह अपने साधकों को पहले तो दिन में होश रखना सिखाता था—फिर

स्वप्न में होश रखना सिखता था। उसकी प्रक्रिया थी कि जब तुम सोने लगो, तब एक ही बात स्मरण रखो कि यह स्वप्न है। अभी स्वप्न शुरू नहीं हुआ। तुम अभी जागे हो, तभी से तुम यह सूत्र अपने भीतर दोहराने लगो कि मैं जो देख रहा हूं, यह स्वप्न है। कमरे को चारों तरफ देखो और यह भाव मन में गहरा करो कि जो मैं देख रहा हूं, वह स्वप्न है। बिस्तर को छुओ और यह भाव गहरा करो कि जो मैं छू रहा हूं, यह स्वप्न है। अपने हाथ को ही अपने हाथ से स्पर्श करो और अनुभव करो कि जो मैं छू रहा हूं, यह स्वप्न है। ऐसे भाव को करते-करते तुम सो जाओ। यह भाव की सतत धारा तुम्हारे भीतर बनी रहेगी। कुछ ही दिनों में तुम पाओगे कि बीच स्वप्न में तुम्हें अचानक याद आ जाता है कि यह स्वप्न है। और जैसे ही याद आता है कि स्वप्न है, स्वप्न उसी क्षण टूट जाता है। क्योंकि स्वप्न के चलने के लिए मूर्च्छा जरूरी है; बिना मूर्च्छा के स्वप्न नहीं चल सकता। बीच स्वप्न में तुम्हें याद आ जाएगा कि यह स्वप्न है और स्वप्न टूट जाएगा। और तुम इतने आनंद से भर जाओगे कि उस आनंद को तुमने कभी भी जाना नहीं है। नींद टूट जाएगी, स्वप्न बिखर जाएगा और एक गहरा प्रकाश तुम्हें घेर लेगा।

ज्ञानी पुरुष के स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं; क्योंकि, नींद में भी वह स्मरण रख पाता है कि यह स्वप्न है।

भारत ने इसके बड़े अनूठे प्रयोग किये हैं। शंकर-वेदांत में, सारे जगत की माया की जो धारणा है, वह इसी का एक प्रयोग है। संन्यासी को चौबीस घंटे स्मरण रखना है कि जो भी हो रहा है, सब स्वप्न है। जागते भी, रास्ते से गुजरते, बाजार में बैठे हुए भी स्मरण रखना है कि जो भी है, सब स्वप्न है। यह क्यों ? यह एक प्रयोग है, एक प्रक्रिया है, एक विधि है। अगर तुमने आठ घंटे जागते में स्मरण रखा कि जो भी हो रहा है, यह स्वप्न है, तो यह स्मरण इतना गहरा हो जाएगा कि जब रात स्वप्न भी चलेगा, तब तुम वहां भी याद रख सकोगे। वहां भी तुम याद रख सकोगे कि यह स्वप्न है।

अभी तुम याद नहीं रख पाते। अगर ठीक से समझो तो अभी भी तुम उलटे अर्थों में यही कर रहे हो। चौबीस घंटे, जब तुम जागते हो, तब तुम समझते हो कि जो भी देख रहा हूं, यह सत्य है। इसी प्रतीति के कारण रात सपने को देखकर भी तुम समझते हो कि जो भी मैं देख रहा हूं, वह सत्य है। क्योंकि यह प्रतीति गहरी हो जाती है।

सपने से झूठा और क्या होगा ! और तुमने कितनी बार रोज सुबह उठकर नहीं पाया कि सपना झूठा है, व्यर्थ है। लेकिन, फिर दुबारा तुम सोते हो और फिर वही भूल होती है। क्यों यह भूल बार-बार होती है ? इस भूल के पीछे कोई बहुत गहरा कारण होना

चाहिए। वह कारण यह है कि तुम जो भी देखते हो जाग्रत में, उसको तुम समझते हो कि यह सत्य है। जब सब कुछ देखा हुआ तुम सत्य मानते हो तो रात तुम सपने को देखते हो, उसको तुम असत्य कैसे मानोगे! उसको भी तुम सत्य मान लेते हो।

इससे उलटा प्रयोग माया का है। तुम जो भी देखते हो उसे दिनभर स्मरण रखते हो कि यह असत्य है। बार-बार भूलते हो और फिर याद को सम्हालते हो; फिर-फिर स्मरण लाते हो कि यह असत्य है। यह सब जो मैं देख रहा हूं चारों तरफ, एक बड़ा नाटक है और मैं दर्शक से ज्यादा नहीं हूं। मैं भोक्ता नहीं हूं, कर्ता नहीं हूं; सिर्फ साक्षी हूं।

इस भाव को अगर तुम सम्हालते हो तो इसकी भीतर एक धारा बन जाती है। तब रात सपना टूट जाता है। और, जिसका सपना टूट गया, उसकी बड़ी उपलब्धि है। जब सपना टूट जाए तो फिर तीसरा चरण उठाया जा सकता है। जब सपना टूट जाए तो फिर सुषुप्ति में होश रखने का चरण उठाया जा सकता है। लेकिन तुम्हें अभी बहुत कठिनाई होगी। सीधा उस प्रयोग को करना संभव नहीं है; एक-एक कदम उठाना पड़ेगा।

जब सपना टूट जाता है, तब दृश्य कोई भी नहीं रह जाता। दिन में आंख खोलकर तुम चलते हो। तुम कितना ही मानो कि जो देख रहे हो, वह माया है, तो भी दृश्य तो बचेगा। तुम कितना ही, शंकर भी कितना ही कहते हों कि माया है तो भी दीवार से तो निकलेंगे नहीं, निकलेंगे तो दरवाजे से ही; कितना ही कहते हों कि सब माया है, कंकड़-पत्थर तो नहीं खायेंगे, खायेंगे तो भोजन ही; कितना ही कहते हों कि माया है, फिर भी तुम होओगे, तभी बोलेंगे, तुम नहीं होओगे तो नहीं बोलेंगे।

इसलिए, बाहर के जगत के साथ तुम कितनी ही मान्यता को गहन कर लो कि यह माया है, बाहर का जगत तो बना रहेगा, मिट नहीं जाएगा। कोई पत्थर मारेगा फेंककर तो सिर टूटेगा, खून बहेगा, तुम दुखी मत होओगे, तुम पीड़ा नहीं लोगे, तुम कहोगे कि सब माया है; तुम अपने को दूर रखोगे। लेकिन; फिर भी घटना तो घटेगी ही। लेकिन, स्वप्न में एक अनूठी बात है— वह बिलकुल माया है। इसलिए वहां एक अनूठा प्रयोग हो जाता है। जैसे ही तुम समझते हो कि सपना माया है, सपना खो जाता है, दृश्य विलीन हो जाता है। और, जब दृश्य विलीन हो जाता है, तभी द्रष्टा के प्रति आंख जा सकती है। जब तक दृश्य मौजूद रहता है, तब तक तुम बाहर ही देखते हो; क्योंकि दृश्य आकर्षित करता रहता है। जब दृश्य खो जाता है, पर्दा खाली हो जाता है, पर्दा भी नहीं रह जाता, तब तुम अकेले छूटते हो। इसलिए ध्यानी आंख बंद करके ध्यान

करता है; क्योंकि, इस संसार को माया कहना एक विधि है।

यह संसार वास्तविक है। यह तुम्हारे सोचने पर निर्भर नहीं है। अगर यह स्वप्न भी है तो ब्रह्म का है; यह तुम्हारा स्वप्न नहीं है। लेकिन तुम्हारे निजी सपने हैं; वे रात में घटते हैं। इसलिए बड़ी क्रांतिकारी घटना तो तब घटती है, जब तुम निजी स्वप्न को तोड़ देते हो। आकाश खाली हो जाता है। वहां देखने को कुछ नहीं बचता। नाटक समाप्त हुआ। घर जाने का वक्त आ गया। अब तुम करोगे भी क्या, बैठे-बैठे ! इस घड़ी में अचानक आंख मुड़ती है; क्योंकि बाहर कुछ भी खोजने को नहीं रह जाता, देखने को नहीं रह जाता, सोचने को नहीं रह जाता। कोई दृश्य नहीं बचता। तो, जो ऊर्जा दृश्य की तरफ जाती थी, वह स्वयं की तरफ मुड़ती है। स्वयं की तरफ मुड़ती हुई ऊर्जा ही ध्यान है। और, जैसे ही यह स्वयं की तरफ मुड़ती है, तब तुम सुषुप्ति में भी होश रख सकते हो। क्योंकि तुम तो होते हो, संसार नहीं होता सुषुप्ति में, स्वप्न नहीं होता सुषुप्ति में। क्योंकि तुम दोनों को देखने में अटके थे, इसलिए सुषुप्ति में बेहोशी रहती थी। अब तुम्हारी अटक टूट गई। अब दृश्य से तुम्हारा कोई संबंध न रहा। अब दृश्य के बिना भी तुम हो सकते हो। अब दीया जलता है; उसकी दीये को कोई फिक्र नहीं कि दीये के प्रकाश में कोई गुजरता है या नहीं गुजरता। अब तुम्हारा जीवन भीतर की तरफ मुड़ेगा। अब तुम सुषुप्ति में जाग जाओगे।

स्वप्न के टूटने पर जो प्रयोग करने का है, वह यह है कि जैसे ही स्वप्न टूट जाए, आंख मत खोलना; क्योंकि आंख खोली तो जगत बाहर मौजूद है। फिर दृश्य मिल जाएगा। जब स्वप्न टूट जाए तो आंख मत खोलना; गौर से देखे चले जाना शून्य को— स्वप्न खो गया। जहां स्वप्न था, अब वहां स्वप्न नहीं है। तुम गौर से उस शून्य को देखे चले जाना। उस शून्य को देखने में ही तुम पाओगे कि तुम्हारी चेतना भीतर की तरफ मुड़ने लगी, अंतर्मुखी हो गई। तब तुम सुषुप्ति में भी जागे रहोगे। यही कृष्ण ने गीता में कहा कि जब सब सो जाते हैं, तब भी योगी जागता है। जो सबके लिए निद्रा है, वह योगी के लिए निद्रा नहीं है। वह सुषुप्ति में भी जागा हुआ है। और, जब तुम तीनों को पृथक-पृथक देख लेते हो, तब तुम चौथे हो गये; अपने-आप चौथे हो गये।

तुर्या का अर्थ है : चौथा, दि फोर्थ। उस शब्द का और कोई अर्थ नहीं है। उसे कोई शब्द का अर्थ देने की जरूरत भी नहीं है। बस चौथा कहना काफी है; क्योंकि सभी अर्थ उसको बांध लेंगे, सभी शब्दों से बांध लेंगे; सिर्फ इशारा काफी है, क्योंकि वह अनंत है, और असीम है।

जैसे ही तुम तीन के बाहर हुए, तुम परमात्मा हो। इन तीनों में तुम प्रविष्ट हो गये हो, इसलिए संकीर्ण हो गये हो। यह ऐसे ही है कि जैसे तुम खुले आकाश से एक टनल में, एक बोगदे में प्रवेश कर जाओ और बोगदा छोटा होता जाए। इंद्रियों तक आते-आते तुम बिलकुल संकीर्ण हो गये हो। पीछे लौटना है। जैसे-जैसे तुम पीछे लौटते हो, तुम्हारा आकाश बड़ा होता जाता है। जिस क्षण तुम तीनों के पार अपने को देख लेते हो, उस दिन तुम महा आकाश हो। उस दिन तुम परमात्मा हो— ऐसे ही जैसे कि कोई आदमी दूरबीन से देखता है आकाश को। दूरबीन का छोटा-सा छेद होता है और वह अपनी सारी आंखों को उसी पर लगा देता है। फिर दूरबीन से आंखें हटाता है, तब उसे पता चलता है कि मैं दूरबीन नहीं हूं। तुम भी आंख नहीं हो; लेकिन आंख पर तुम कई जन्मों से टिके हो। तुम कान नहीं हो; लेकिन कान से तुम कई जन्मों से सुन रहे हो। तुम हाथ नहीं हो; लेकिन हाथ से तुम कई जन्मों से छू रहे हो। बस, तुम दूरबीन से बंध गये हो। तुम्हारी हालत वैसी हो गयी है, जैसे किसी वैज्ञानिक को दूरबीन बंध गयी हो। अब वह दूरबीन को आंख से बांधे हुए घूम रहा है। तुम उसको कितना ही कहो कि दूरबीन उतारकर रखो, यह तुम नहीं हो। पर वह दूरबीन से ही देख सकता है और भूल ही गया है। यह विस्मृति है। इस विस्मृति को तोड़ने की प्रक्रिया है— जाग्रत से शुरू करो, सुषुप्ति पर पूर्ण होने दो।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने से तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है। इससे शुरू करो—और धीरे-धीरे बढ़ते जाओ। जिस दिन तुम्हें गहरी नींद में होश रह जाए, उस दिन जान लेना कि तुममें, बुद्ध में, महावीर में, शिव में, अब कोई अंतर न रहा। लेकिन तुम उलटा ही काम कर रहे हो। तुम जागरण में भी ठीक से जागे हुए नहीं हो तो तुम सुषुप्ति में कैसे जागोगे ! तुम यहां भी सोये हुए हो। तुम्हारा जागरण नाम मात्र को है। तुम्हें भ्रम पैदा होता है कि तुम जागे हो, क्योंकि तुम कामचलाऊ काम निपटा लेते हो। साईकल चला लेते हो तो तुम सोचते हो कि तुम जागे हुए हो; कार चला लेते हो तो तुम सोचते हो कि जागे हुए हो।

लेकिन तुमने कभी खयाल किया कि यह सब आटोमेटिक हो गया है, यंत्रवत हो गया है। साईकल चलानेवाला सोचता भी नहीं कि अब बायें मुड़ना है, अब दायें मुड़ना है। वह अपने मन में लगा रहता है। साईकल बायें मुड़ती है, दायें मुड़ती है; वह अपने घर पहुंच जाता है। सोचना। यहां होशपूर्वक चलने की कोई जरूरत नहीं है; सब यंत्रवत हो गया है, आदत हो गयी है। वह घर पहुंच ही जाता है। कार चलानेवाला

चलाता जाता है; कोई जरूरत नहीं है उसको कि वह जागे।

हम सबकी जिंदगी एक रूटीन, एक बंधी हुई लीक पर घूमने लगती है। जैसे कोल्हू के बैल चलते हैं, ऐसे हम चलने लगते हैं। उसी-उसी लीक पर रोज चलते हैं। किसी की लीक थोड़ी बड़ी, किसी की थोड़ी छोटी, किसी की थोड़ी सुंदर, किसी की थोड़ी कुरूप; लेकिन लीक होने में कोई फर्क नहीं है। तुम्हारी जिंदगी एक कोल्हू के बैल की भांति है। सुबह उठते हो, एक धारा चलती है; रात सो जाते हो, एक वर्तुल पूरा हुआ। फिर सुबह उठते हो—फिर वही, फिर वही। यह सब इतनी बार तुमने दोहराया है कि अब होश रखने की कोई जरूरत ही नहीं; यह बेहोशी में हो जाता है। समय पर भूख लग जाती है। समय पर नींद आ जाती है। समय पर उठकर तुम बाजार चल पड़ते हो। तुम पूरी जिंदगी को ऐसे सोये-सोये एक वर्तुल में गुजार रहे हो।

कब जागोगे ? कब एक झटका दोगे अपने को ? कब इस लीक से उठोगे ? कब कहोगे कि मैं कोल्हू का बैल होने को राजी नहीं हूं ? जिस दिन तुम्हें झटका देने का खयाल आ जायेगा, उसी दिन से परमात्मा की यात्रा शुरू हो जाती है। मंदिर जाने से तुम धार्मिक नहीं होते; क्योंकि वह भी तुम्हारी कोल्हू की लीक का हिस्सा है। तुम वहां भी चले जाते हो; क्योंकि तुम सदा जाते रहे हो; क्योंकि तुम्हारे मां-बाप जाते रहे हैं; उनके मां-बाप जाते रहे हैं इसी मंदिर में। इसी शास्त्र को तुम पढ़ते रहे हो, तो तुम पढ़ते चले जाते हो। लेकिन यह कोल्हू की लीक है। क्या तुम कभी होशपूर्वक मंदिर गए ? होशपूर्वक अगर तुम जा सको तो मंदिर जाने की जरूरत न रह जायेगी। जहां होश हो जायेगा, तुम वहीं पाओगे, मंदिर है।

होश मंदिर है। लेकिन ईसाई चला जा रहा है चर्च की तरफ; सिक्ख चला जा रहा है गुरुद्वारा की तरफ; हिंदू चला जा रहा है मंदिर की तरफ—बंधे हुए अपनी-अपनी लीक पर हैं। तुम्हारी यह सोयी-सोयी अवस्था तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं तोड़ सकता।

तो पहली बात जान लेनी जरूरी है कि तुम्हारा जाग्रत भी सोया हुआ है और योगी की सुषुप्ति भी जागी हुई है। तुम बिलकुल उलटे योगी हो। और जिस दिन तुम इससे विपरीत हो जाओगे, उसी दिन जीवन का सार-सूत्र तुम्हारे हाथ आ जायेगा। तीनों को अलग-अलग जान लो तो जाननेवाला तीनों से अलग हो जाता है। तुम मात्र ज्ञान हो, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। तुम सिर्फ होश मात्र हो। लेकिन तीनों से अपने को तोड़ो।

पढ़ता था मैं, एक सूफी फकीर के संबंध में—जुन्नैद के बाबत। कोई उसे गाली दे जाता तो वह कहता है कि कल आकर उत्तर दूंगा। कल जाकर कहता कि अब उत्तर की कोई जरूरत नहीं। तो वह आदमी पूछता कि कल मैंने गाली दी; कल तुमने क्यों उत्तर नहीं दिया ? तुम अनूठे आदमी हो। गाली किसी को दो तो वह उसी वक्त उत्तर देता है, क्षणभर नहीं रुकता है। जुन्नैद ने कहा कि मेरे गुरु ने कहा है कि अगर जल्दी की तो मूर्च्छा हो जाती है। तो थोड़ा वक्त देना। कोई गाली दे, उसी वक्त अगर उत्तर दिया तो उत्तर मूर्च्छा में दिया जायेगा; क्योंकि गाली तुम्हें घेरे होगी, उसका ताप तुम्हें पकड़े होगा, उसका धुआं अभी आंखों में होगा। थोड़ा बादल को गुजर जाने दो। चौबीस घंटे का वक्त दो, फिर उत्तर देना।

और जुन्नैद कहता है कि मेरा गुरु वहुत चालबाज आदमी था; क्योंकि तब से मैं उत्तर ही नहीं दे पाया। चौबीस घंटा कोई रुक जाये क्रोध करने को, तो तुम सोचते हो, क्रोध कर पायेगा ? चौबीस मिनट भी रुक जाये तो क्रोध असंभव है। चौबीस सैकंड भी रुक जाये तो क्रोध असंभव है। सच तो यह है कि एक सैकंड भी अगर रुक जाये, और देख ले, तो क्रोध असंभव है।

लेकिन, तुम रुकते ही नहीं। उधर किसी ने गाली दी, जैसे किसी ने बिजली का बटन दबाया, इधर तुम्हारा पंखा चला। इसमें रत्तीभर का फासला नहीं है। इसमें जरा-सी भी संध नहीं है। और, तुम सोचते हो कि तुम बड़े होशपूर्ण हो। तुम मालिक भी नहीं हो अपने। बेहोश आदमी मालिक हो भी नहीं सकता। कोई भी बटन दबाता है और तुम्हें चलाता है। कोई आया और तुम्हारी खुशामद की, तुम खिलखिला गये, गदगद हो गये। किसी ने तुम्हारा अपमान किया और तुम आंसुओं से भर गये। तुम मालिक हो अपने ? या हर कोई तुम्हें चलाता है ? और जो तुम्हें चला रहे हैं, वे भी अपने मालिक नहीं है अपने। तुम गुलामों के गुलाम हो। और बड़ा मजा है कि सब एक-दूसरे को चलाने में कुशल हैं, और उनमें से एक भी होश में नहीं है। इससे बड़ा और कोई अपमान नहीं हो सकता आत्मा का, कि हर कोई तुम्हें चलाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में काम करता था। सभी नाराज थे उसके काम से; क्योंकि काम भी कुछ था ही नहीं। या तो वह सोया रहता था या झपकी खाता रहता था। आखिर दफ्तर के लोग परेशान इतने हो गये कि धीरे-धीरे लोगों ने उसे कहना भी शुरू कर दिया। मालिक ने भी कहा, डांटा-डपटा; लेकिन उसमें कुछ फर्क नहीं हुआ। इतना अपमान और इस सब उपद्रव के कारण उसने इस्तीफा दिया। बदलना तो

मुश्किल था, इस्तीफा देना आसान था। बहुत-से लोग, जो संसार से भागते हैं संन्यास की तरफ, वे इस्तीफा दे रहे हैं। बदलना तो मुश्किल है, इस्तीफा देना सदा आसान है। उसने इस्तीफा दिया। सारा दफ्तर प्रसन्न हुआ इस्तीफे से। लोग इतने प्रसन्न हो गए कि मालिक ने कहा कि जब वह अपनी तरफ से ही जा रहा है, तो विदाई-समारोह करना उचित है। और हम इतने परेशान थे इससे और यह छोड़ रहा है। और छुड़ाने का कोई उपाय नहीं था। वह बोझ हो गया था। इसलिए, ठीक से, सच में ही खुश थे वे। विदाई-समारोह काफी अच्छी तरह से आयोजित किया—मिठाई, खाना-पीना; सब इकट्ठे हुए। नसरुद्दीन बड़ा हैरान हुआ। और सभी ने दो-दो शब्द उसकी प्रशंसा में भी कहे; क्योंकि विदाई का वक्त था। नसरुद्दीन खड़ा हुआ—गदगद। आंख से आंसू झर रहे हैं। उसने कहा, 'मैं अपना इस्तीफा वापस लेता हूं। मुझे पता ही नहीं था कि तुम सब इतना प्रेम मेरे लिए करते हो। अब इस जीवन में यहां से जाने का कोई कारण नहीं है।'

हम संचालित हो रहे हैं। और अक्सर यह होता है कि चारों तरफ, पूरा संसार, एक-एक व्यक्ति को चला रहा है और मौसम चारों तरफ बदलता रहता है। हजारों तरह के लोग हैं। इसलिए तुम्हारे भीतर एक गहरा विभ्रम और एक कंफ्यूजन है। होगा ही; क्योंकि तुम एक से चालित नहीं हो। एक से चालित तो वही है, जो भीतर जागा हुआ है। उसकी जिंदगी में एक स्पष्टता होगी, निरभ्रता होगी। उसके जीवन मे एक सफाई होगी, एक निर्णय होगा। उसके जीवन में एक दिशा होगी। तुम्हारे जीवन में कोई दिशा नहीं, हो भी नहीं सकती। तुम तो ऐसे हो, जैसे कोई आदमी भीड़ में, धक्के में चलता है। वह चल भी नहीं रहा; लेकिन भीड़ इतना धक्का दे रही है कि खड़ा भी नहीं रह सकता। कोई बायें धक्का देता है तो वह बायें चला जाता है; कोई दायें धक्का देता है तो वह दायें चला जाता है। तुम्हारी पूरी जिंदगी भीड़ में चलती हुई है। तुम गौर से देखो, समझ में आ जाएगा। कोई कुछ कह रहा है, वह तुम करते हो। फिर कोई कुछ और कहता है, वह भी तुम करते हो। फिर तुम्हारे भीतर इतने विरोधाभास हो जाते हैं।

एक आदमी मेरे परिचित थे। चोट लग गयी थी, थोड़ी-सी चोट थी। रिक्शा उलट गया था। फिर अस्पताल से भी छूट गये। फिर छह महीने भी बीत गये। भले-चंगे भी हो गये। लेकिन, फिर भी वे अपनी बैसाखी.... । तो मैंने उनसे पूछा कि बैसाखी कब छोड़ोगे ? वे कहते हैं, 'छोड़ना तो मैं भी चाहता हूं। मेरा डाक्टर कहता है, बेकार है; लेकिन मेरा वकील कहता है, अभी रखो, जब तक मुकदमा तय न हो जाये। तो

किसकी सुनूं ?'

तुम्हारा वकील कुछ कहता है, तुम्हारा डाक्टर कुछ कहता है; पत्नी कुछ कहती है, पति कुछ कहता है; बेटा कुछ कहता है, बाप कुछ कहता है। चारों तरफ तुम्हें चलानेवाले मालिक हैं—करोड़ों मालिक हैं और तुम अकेले हो ! और तुम सबकी सुनते हो। जो भी दबा देता है, उसी को सुनते हो। तब तुम्हारे भीतर सब दरारें पड़ जाती हैं; खंड-खंड हो जाता है व्यक्तित्व। जब तक तुम भीतर की न सुनोगे तब तक तुम अखंड नहीं हो सकते।

मैं संन्यासी उसे कहता हूं, जिसने भीतर की आवाज सुननी शुरू कर दी और जब वह भीतर की आवाज पर सब दांव लगाने को राजी है। लेकिन भीतर की आवाज तुम्हें समझ में भी न आयेगी, जब तक तुम बेहोश हो। तब तक अगर तुमने भीतर की आवाज समझी भी कि यह भीतर की आवाज है, तो वह भीतर की न होगी; वह भी बाहर की आवाज होगी। बेहोश आदमी को भीतर की आवाज का क्या पता ! नहीं तो दिल्ली में बैठे सभी राजनीतिज्ञ अंतरात्मा की आवाज की बात करते; इंदिरा, गिरी—अंतरात्मा की आवाज ! अंतरात्मा का पता कैसे सोये हुए आदमी को ! कौन-सी आवाज अंतरात्मा की है, तुम्हें कैसे पता ? जो भी आवाज तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करती हुई मालूम पड़ती है, अंतर्वासना की आवाज है। उसे तुम अंतरात्मा की आवाज कहते हो।

सिर्फ जागे हुए आदमी के भीतर कोई आवाज होती है। और वह आवाज तुम्हें मिल जाये तो तुम्हारे जीवन में सब जो कलुष है, वह जो उपद्रव है और हजार तरह के विक्षिप्त स्वर हैं; कि तुम एक भीड़ हो गये हो, एक व्यक्ति नहीं; तुम एक बाजार की तरह हो, जिसमें सब चल रहा है। बंबई का शेयर बाजार हो तुम....और सब चलता है। कुछ समझ में नहीं आता। कोई नया आदमी कुछ समझ नहीं पायेगा कि तुम क्या हो। कोई कुछ चिल्ला रहा है, कोई कुछ चिल्ला रहा है। सब तरह की आवाजें हैं। तुम्हारी आवाज बिलकुल खो गई है।

तुर्यावस्था का अर्थ है : आत्मा को पहचानना। और इन तीन से तुम अपने को तोड़ो, तो ही तुम आत्मा को पहचान सकोगे। छोटे-छोटे प्रयोग शुरू करो। क्रोध आये, रुको; जल्दी क्या है ! घृणा आये, थोड़ा रुको; थोड़ा संधिकाल चाहिए। तभी उत्तर दो जब कि तुम होश में आ जाओ। उसके पहले उत्तर मत दो। और तुम पाओगे कि तुम्हारी जिंदगी से पाप खोना शुरू हो गया; गलत अपने-आप विसर्जित होना शुरू हो

गया। तुम अचानक पाओगे कि अब क्रोध का उत्तर देने की जरूरत न रही। यह भी हो सकता है कि जिसने तुम्हारा अपमान किया था, तुम उसे धन्यवाद देने भी जाओ; क्योंकि उसने भी तुम्हारा उपकार किया है, तुम्हें जागने का एक मौका दिया है।

कबीर ने कहा है : निंदक नियरे रखिये, आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा कर रहा है, उसे तुम पास में ही सम्हाल कर, इंतजाम कर दो। उसको घर में ही ठहरा लो; क्योंकि वह तुम्हें जागने का मौका देगा। जो-जो तुम्हें मूर्च्छित होने का मौका देता है, अगर तुम चाहो तो उसी मौके को तुम जागरण की सीढ़ी भी बना सकते हो। जिंदगी ऐसी है जैसे रास्ते पर एक बड़ा पत्थर पड़ा हो। जो नासमझ हैं, वे पत्थर को देखकर लौट जाते हैं। वे कहते हैं, रास्ता बंद है। जो समझदार हैं, वे पत्थर पर चढ़ जाते हैं। वे उसकी सीढ़ी बना लेते हैं। और जैसे ही सीढ़ी बना लेते हैं, और भी ऊपर का रास्ता उन्मुक्त हो जाता है।

साधक के लिए एक ही बात स्मरण रखनी है कि जीवन का हर एक क्षण जागृति के लिए उपयोग कर लिया जाये। चाहे भूख हो, चाहे क्रोध हो, चाहे काम हो, चाहे लोभ हो—हर स्थिति को जागरण के लिए उपयोग कर लिया जाये। रत्ती-रत्ती तुम इस तरह इकट्ठा करोगे जागरण, तो तुम्हारे भीतर ईंधन इकट्ठा हो जायेगा। उस ईंधन से जो ज्वाला पैदा होती है, उसमें तुम पाओगे कि तुम न तो जाग्रत हो, न तुम स्वप्न हो, न तुम सुषुप्ति हो; तुम तीनों के पार पृथक हो।

ज्ञान का बना रहना ही जाग्रत अवस्था है—बाहर की वस्तुओं के ज्ञान का बना रहना ही जाग्रत अवस्था है। विकल्प ही स्वप्न हैं। मन में विचारों का तंतुजाल विकल्पों का, कल्पनाओं का फैलाव स्वप्न है। अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव सुषुप्ति है।

ये तीन अवस्थाएं हैं। जिनमें हम गुजरते हैं। लेकिन जब हम एक से गुजरते हैं तो हम उसी के साथ एक हो जाते हैं। जब हम दूसरे में पहुंचते हैं, तो हम दूसरे के साथ एक हो जाते हैं। जब हम तीसरे में पहुंचते हैं, तो तीसरे के साथ एक हो जाते हैं। इसलिए हम तीनों को अलग-अलग नहीं देख पाते हैं। अलग देखने के लिए थोड़ा फासला चाहिए, परिप्रेक्ष्य चाहिए। अलग देखने के लिए थोड़ी-सी जगह चाहिए। तुम्हारे, और जिसे तुम देखते हो, दोनों के बीच में थोड़ा रिक्त स्थान चाहिए। तुम आइने में भी अगर बिलकुल सिर लगाकर खड़े हो जाओ, तो अपना प्रतिबिंब न देख पाओगे; थोड़ी दूरी चाहिए। और तुम इतने निकट खड़े हो जाते हो—जाग्रत के, स्वप्न के, सुषुप्ति के कि तुम बिलकुल एक ही हो जाते हो। तुम उसी के रंग में रंग जाते हो। और,

यह दूसरे के रंग में रंग जाने की हमारी आदत इतनी गहन हो गयी है कि हमें पता भी नहीं चलता और इसका शोषण किया जाता है।

अगर तुम हिंदू हो, और तुमसे कहा जाए कि यह मस्जिद खड़ी है, इसमें आग लगा दो, तो तुम हजार बार सोचोगे, विचार करोगे कि यह क्या उचित है। और मस्जिद भी उसी परमात्मा के लिए समर्पित है। ढंग होगा और, सीढ़ी का रंग होगा और, रास्ते की व्यवस्था होगी और; लेकिन मंजिल वही है। लेकिन हिंदुओं की एक भीड़ मस्जिद को आग लगाने जा रही हो, तुम इस भीड़ में हो, तब तुम नहीं सोचते; क्योंकि तुम भीड़ के रंग में रंग जाते हो। तब तुम मस्जिद को जला दोगे और बाद में कोई अगर तुमसे पूछेगा कि तुम यह कैसे कर सके, तो तुम सोचोगे और कहोगे कि यह आश्चर्य है कि मैं कैसे कर सका। अकेले तुम यह न कर पाते। लेकिन भीड़ में तुम क्यों खो गये ? क्योंकि खोने की तुम्हारी आदत है।

कोई मुसलमान इतना बुरा नहीं है अकेले में, जितना भीड़ के साथ बुरा होता है। कोई हिंदू इतना बुरा नहीं है अकेले में, जितना भीड़ के साथ बुरा होता है। किसी अकेले आदमी ने इतने पाप नहीं किये, जितने भीड़ ने पाप किये। क्यों ? क्योंकि भीड़ तुम्हें रंग देती है। तुम भीड़ के रंग में एक हो जाते हो। अगर भीड़ क्रोध से भरी है, तुम अचानक पाते हो कि तुम्हारे भीतर भी क्रोध जग रहा है। अगर भीड़ रो रही है, चीख रही है, चिल्ला रही है, तो तुम रोने, चीखने-चिल्लाने लगते हो। अगर भीड़ प्रसन्न है, तुम अपने दुख भूल जाते हो और प्रसन्न हो जाते हो।

खयाल करो, तुम किसी के घर गये हो, कोई मर गया है, वहां अनेक लोग रो रहे हैं, अचानक तुम पाते हो, तुम्हारे भीतर भी रुदन उठा आ रहा है। शायद तुम सोचते होओगे कि तुम बड़े करुणावान हो। शायद तुम सोचते हो कि तुम बड़ी दया और प्रेम से भरे हुए व्यक्ति हो। शायद तुम सोचते हो कि सहानुभूति के कारण ये आंसू आ रहे हैं, तो तुम गलती में हो; क्योंकि घर भी तुमने यह खबर सुनी थी कि वह आदमी मर गया है। तब तुम्हें कुछ भी नहीं हुआ था, क्योंकि तुम अकेले थे। तब तुमने सोचा होगा कि ठीक है, मरना-जीना लगा ही रहता है। बजाए इसके कि यह आदमी मर गया है, इससे तुम्हें दुख होता, तुम्हें यही झंझट आयी होगी कि अब जाना पड़ेगा और संवेदना प्रकट करनी पड़ेगी। और, पच्चीस दूसरे काम थे, और यह एक और उपद्रव बीच में आ गया। और यह आदमी था ही ऐसा, बेवक्त मरा। कोई वक्त था आज मरने का !

ये तुम्हारे विचार रहे होंगे। लेकिन जब तुम घर में पहुंचोगे और वहां तुम लोगों को

रोते देखोगे, भीड़ जब वहां दुखी हो रही होगी तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर भी बड़े भाव उठ रहे हैं। ये भाव दो कौड़ी के हैं और खतरनाक हैं; क्योंकि, भीड़ तुम्हें रंगे दे रही है। तुम अपने को बचाना। ऐसी सहानुभूति किसी मतलब की नहीं है, जो भीड़ से आती हो, जो तुम्हारे हृदय से न आती हो।

तुमने देखा है कि दुखी, परेशान, बेचैन लोग भी होली के हुल्लड़ में बड़े आनंदित दिखाई पड़ते हैं! वे भी नाचने-गाने लगते हैं, गुलाल उड़ाने लगते हैं। जिनकी जिंदगी में गुलाल बिलकुल भी नहीं है और जिनकी जिंदगी में कभी कोई खुशी, कोई गीत नहीं देखा गया है, अचानक रास्तों पर रंग फेंक रहे हैं। हुआ क्या इनको? यही आदमी कल चला जा रहा था मरा-मरा, उसका पैर नहीं उठ रहा था; उसकी जिंदगी ऐसी थी जैसे सुषुप्त और यही आदमी आज नाच रहा है! भीड़ ने रंग दिया इसे।

साधक को भीड़ से सावधान होना चाहिए। तुम अपनी आवाज खोजो, अपना स्वर खोजो। भीड़ तुम्हें सदा से धक्के दे रही है, और तुम भीड़ के साथ...। भीड़ तुम्हें जो बनाती है, वही तुम हो जाते हो। यह क्यों हो पाता है? यह इसलिए हो पाता है कि तुम पृथकता अपनी अनुभव नहीं करते और जहां भी तुम्हें अपनी पृथकता खोने का मौका मिलता है, तुम तत्क्षण खो देते हो। तुम तैयार बैठे हो की कहीं भी डूब जाओ। नींद आयी तो नींद में डूब गये। जाग्रत आया तो जाग्रत में डूब गये। स्वप्न आया तो स्वप्न में डूब गये। लोग दुखी हैं तो तुम दुखी हो गये। लोग सुखी हैं तो तुम सुखी हो गये। तुम हो? या सिर्फ तुम एक डूबने का बिंदु हो! तुम्हारा कोई अस्तित्व है? तुम्हारा कोई केंद्र है? ...उस केंद्र का नाम ही आत्मा है।

अपने अस्तित्व को जगाओ। डूबने से बचो। इसलिए सारे धर्म शराब के विरोध में हैं। शराब में ऐसी कोई खराबी नहीं है। लेकिन सभी धर्म विरोध में हैं। कारण कुल इतना ही है कि वह डूबने का रास्ता है। सभी धर्म जगाने के पक्ष में हैं। और जो आदमी शराब पी रहा है, वह डूब रहा है। जो-जो चीजें डुबाती हैं तुम्हें, जिन-जिन चीजों से तुम और भी ज्यादा मूर्च्छित होते हो, धर्म उनके विरोध में हैं। तुम वैसे ही काफी मूर्च्छित हो, रत्तीभर, तुममें जरा-सा होश है, तुम उसी को भी खोने के लिए तैयार रहते हो।

और, आश्चर्य की बात तो यह है कि जब भी तुम उसे खो देते हो, तभी तुम प्रसन्न होते हो। तुम जैसा मूढ़ खोजना असंभव है; क्योंकि जब भी तुम उसे खो देते हो, तभी तुम कहते हो कि बड़ा आनंद है। क्यों? क्योंकि वह जो थोड़ा-सा होश है, वह तुम्हें जिंदगी की समस्याओं को देखने में सहायता देता है। वह तुम्हें जिंदगी के प्रति चैतन्य

बनाता है और चिंता से भरता है। वह तुम्हें होश से भरता है कि तुम होश में नहीं हो। वह जो छोटी-सी तुम्हारे भीतर किरण है, वह तुम्हारे अंधकार को प्रकट करती है, जो कि गहन है। तुम उस किरण को भी बुझा देना चाहते हो कि न रहेगी किरण— न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी— न रहेगी किरण, न अंधेरे का पता चलेगा। क्योंकि उस किरण की वजह से अंधेरा पता चलता है, हटाओ इस किरण को, पी लो शराब, डूब जाओ किसी भीड़ के उपद्रव में, राजनीति में, इसमें,उसमें— कहीं भी अपने को लगा दो, ताकि तुम अपने को भूल जाओ।

पश्चिम में मनोवैज्ञानिक लोगों को कहते हैं कि तुम अगर अपने को भुला सको, तो ही तुम स्वस्थ रह सकोगे और पूरब के धर्मगुरुओं ने कहा है कि तुम अपने को अगर जगा सको तो ही तुम स्वस्थ हो सकोगे। बड़ी उलटी बातें हैं। लेकिन दोनों बातें सार्थक हैं। पश्चिम का मनोवैज्ञानिक, तुम जैसे हो, उसको स्वीकार करता है। तुम जैसे हो, ऐसे ही तुम रह सको, जी सको, किसी तरह गुजार सको जिंदगी, उसमें वह सहायता पहुंचाता है। वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है कि किसी तरह अपने को भुला दो। ज्यादा चैतन्य खतरनाक है; क्योंकि तुम चिंता से मर जाओगे; क्योंकि तब सब चीजें तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। और, कुछ भी ठीक नहीं है इस जिंदगी में; सब गड़बड़ है, सब अस्तव्यस्त है। तो बेहतर है कि तुम आंख बंद कर लो, प्रसन्न रहो। क्या जरूरत है इस सारी समस्या को देखने की।

लेकिन पूरब के धर्मगुरु तुम्हें स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं : तुम तो रुग्ण हो। तुम तो विक्षिप्त हो ही, तुम्हें पहले शांति की जरूरत नहीं है। कोई चिंता नहीं, अगर चिंता बढ़े और तुम्हारे भीतर बेचैनी आए। कोई हर्जा नहीं है; क्योंकि उसी के द्वारा तुम बदलोगे, क्रांति होगी।

यह तो ऐसा है जैसे एक आदमी कैंसर से पड़ा है, और हम कुछ भी नहीं कर सकते, तब हम उसे मार्फिया देते हैं कि तुम अपने आराम से पड़े रहो। लेकिन पूरब के धर्मगुरु कहते हैं : मार्फिया से जीवन-क्रांति नहीं होती। जगाओ— रूपांतरण हो सकता है। और आदमी जैसा है, यह उसकी अंतिम अवस्था नहीं है। यह उसकी प्रथम अवस्था तक नहीं है। यह तो यात्रा के बिलकुल बाहर ही खड़ा है— द्वार के बाहर। अभी इसने भीतर प्रवेश भी नहीं किया। महानंद की संभावना है; लेकिन तुम जैसे हो— सोये इससे महानंद नहीं होगा।

सुख और आनंद का फर्क समझ लो। सुख उस अवस्था का नाम है, जब तुम्हारे

भीतर जो छोटी-सी किरण जाग गयी है, वह भी सो जाती है। तब तुम्हें कोई दुख पता

नहीं चलता। आनंद उस अवस्था का नाम है, जब तुम्हारे भीतर जो छोटी-सी किरण है, वह महासूर्य हो जाती है और अंधकार पूरा खो जाता है। सुख नकारात्मक, निगेटिव है— दुख का पता न चलना। तुम्हारे सिर में दर्द है; ऐस्प्रो की टिकिया सुख है, आनंद नहीं। क्योंकि ऐस्प्रो की टिकिया तुम्हें सिर्फ दर्द का तुम्हें पता नहीं चलने देती। वह तुम्हें बेहोशी दे देती है।

तुम बीमार हो, तुम परेशान हो, जिंदगी चिंता से भरी है— तुम शराब पी लेते हो, फिर सब ठीक है। दुखी, शराबी जाता है शराबघर की तरफ, लौटता है नाचता-गाता। इस प्रकार, तुम्हारी जो छोटी-सी प्रकाश की किरण है, उसे खोकर तुम सुख खरीदते हो। उससे तुम्हें आनंद कभी भी न मिलेगा। क्योंकि सुख सिर्फ दुख का भूल जाना है, विस्मरण है। और, आनंद आत्मा का स्मरण है। वह भूल जाना नहीं है; वह पूरी स्मृति है। कबीर ने उसे सुरति कहा है। वह पूर्ण स्मरण है।

ये सूत्र तुम्हें पूर्ण स्मरण की तरफ ले जाएंगे। तो ध्यान रखना, जो चीज बेहोश करती हो, उससे बचना। और, बेहोश करने के इतने सुगम उपाय हैं कि तुम्हें पता भी नहीं है; तुम उनमें इतने ज्यादा ग्रस्त हो गये हो कि तुम्हें खयाल भी नहीं।

एक आदमी खाने के पीछे पागल है। वह खाता ही रहता है। तुम्हें खयाल नहीं है कि वह खाने से शराब का उपयोग कर रहा है। ज्यादा भोजन निद्रा लाता है। ज्यादा भोजन सुषुप्ति देता है। इसलिए अगर किसी दिन तुमने उपवास किया तो रात तुम सो न सकोगे। क्योंकि भोजन की एक अपनी तंद्रा है। तो जो आदमी चौबीस घंटे खाने में लगा है, वह खाने के माध्यम से बेहोशी खोज रहा है।

एक आदमी महत्वाकांक्षा की यात्रा में लगा है। वह कहता है कि जब तक करोड़ रुपये न हों तब तक मैं रुकनेवाला नहीं। तब तक वह दीवाने की तरह लगा है— सुबह हो, रात हो, दिन हो, अंधेरा हो, उजाला हो, कुछ फिक्र नहीं, उसके मन में एक गणित चल रहा है— एक करोड़! वह उस एक गणित के प्रति समर्पित है। उसे कोई चिंता नहीं घेरती। उसको कोई चिंता नहीं। बस, उसको— एक करोड़! उसको चिंता उस दिन घेरेगी, जब वह एक करोड़ पाने में सफल हो जाएगा। तब अचानक वह पाएगा कि बेकार गए; अब क्या करना!

मैंने सुना है, एक पागलखाने में तीन आदमी बंद थे— एक ही कोठरी में; क्योंकि, एक ही साथ पागल हुए थे, तीनों पुराने साथी थे। एक-दूसरे को रंग दिया होगा। एक

मनोवैज्ञानिक उनका अध्ययन करने आया था। तो उसने पागलखाने के डाक्टर से पूछा कि इनमें नंबर एक की क्या तकलीफ है। डाक्टर ने कहा, 'यह नंबर एक, एक रस्सी में लगी हुई गांठ को खोलने का उपाय कर रहा था और खोल नहीं पाया— उसी में पागल हुआ।'

'और यह दूसरा क्या कर रहा था ?

'यह भी वही गांठ खोल रहा था रस्सी में लगी हुई और खोलने में सफल हो गया, इसलिए पागल हुआ।'

वह मनोवैज्ञानिक थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, 'ये तीसरे सज्जन ?'

डाक्टर ने कहा कि ये वे सज्जन हैं, जिन्होंने यह गांठ लगायी थी।

कोई गांठ लगा रहा है, कोई खोल रहा है; कोई सफल हो जाता है, कोई असफल हो जाता है— इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; सब पागल हो जाते हैं। लेकिन लोग गांठ लगाने-खोलने में उलझे क्यों है ? ...अपने से बचने के लिए। स्वयं से बचने की तरकीबें हैं ! नहीं तो, स्वयं का सामना करना पड़ेगा। न कोई महत्वाकांक्षा है, न दिल्ली जाना है, न कोई राजनीति करनी है, न कोई चुनाव लड़ना है, न धन कमाने का कोई पागलपन है— फिर आप अपने से कैसे बचोगे ? फिर कहीं न कहीं खुद से मिलना हो जायेगा। वह भय है कि कहीं खुद से मिलना न हो जाये। उससे हाथ-पैर कांपते हैं।

तुम सुनते हो बहुत कि आत्मा को जानो; लेकिन अगर तुम खुद को समझोगे तो तुम आत्मा को जानने से बचने का सब उपाय करते हो। कहते हैं बुद्धपुरुष कि आत्मा को जानने से महानंद की वर्षा होती है, अमृत बरसता है। कबीर कहते हैं कि बादल गरजते हैं अमृत के और अमृत बरसता है। लेकिन यह घटना बहुत अंत में घटती है, पहले तो बहुत दुख से गुजरना पड़ता है। क्योंकि तुमने जितने धोखे दिये हैं जिंदगी में, अनंत जन्मों में, उन सब धोखों को तोड़ना पड़ेगा और हर धोखे को तोड़ने में दुख होता है। हर धोखे को तोड़ने में दुख होता है; क्योंकि धोखे ने एक मधुरता दी थी, एक नींद दी थी, एक बेहोशी दी थी और अब उसको तोड़ो ! और बिना उनको तोड़े तुम पहुंच न पाओगे— उस जगह, जहां आकाश अमृत के बादलों से भर जाता है और जहां आनंद की वर्षा होती है।

वह बीच का मार्ग ही तपश्चर्या है। जागने से शुरू करो। तुम्हारे तप को फिर स्वप्न में ले जाओ, फिर सुषुप्ति में ले जाओ।

विकल्प स्वप्न है। चित्त का विकल्पों से भरे रहना स्वप्न की दशा है। तो यह मत

सोचना कि तुम रात में ही सपना देखते हो, तुम दिन में भी देखते रहते हो। जरूरी नहीं है कि तुम यहां बैठे हो, तो तुम यहां बैठे हो तो हो सकता है कि तुम मुझे सुन भी रहे हो और सपना भी देख रहे हो। तुम्हारे भीतर चौबीस घंटे, एक अंतर्धारा सपने की चलती रहती है। जागने में भी, भीतर तो एक सपना तुम्हें घेरे ही रहता है, कुछ न कुछ चलता ही रहता है। कभी भी आंख बंद करो और तुम पाओगे कि भीतर कुछ चल रहा है।

यह हालत ऐसी ही है जैसे कि रात में तो आकाश में तारे दिखायी पड़ते हैं, दिन में दिखायी नहीं पड़ते; क्योंकि सूरज के प्रकाश में ढक जाते हैं। इससे तुम यह मत समझना कि खो जाते हैं; वे अपनी जगह हैं। खोयेंगे कहां ! जायेंगे कहां ! तुम किसी गहरे कुएं में चले जाना और गहरे कुएं में से खड़े होकर दिन में देखना तो तुम्हें तारे, आकाश में दिन में भी दिखायी पड़ जाएंगे। क्योंकि तारों को देखने के लिए अंधेरा चाहिए। सूरज की रोशनी की वजह से तारे दिखायी नहीं पड़ते।

यही हालत स्वप्न की है। रात में ही सपने दिखायी पड़ते हैं, ऐसा नहीं है। लेकिन रात का अंधकार चाहिए; आंखें बंद हों तो दिखायी पड़ते हैं। दिन में आंखें खुली हैं, पच्चीस और काम करने जरूरी हैं। सपने तो भीतर बने रहते हैं, दिखायी नहीं पड़ते। दिन में भी तुम अगर आंख बंद करके आराम-कुर्सी पर बैठ जाओ, तत्क्षण दिवा-स्वप्न शुरू हो जायेगा। वह चल ही रहा था। वह भीतर चलता ही रहता है। उसका एक अंतर्सूत्र है।

इस अंतर्सूत्र को तोड़ना बहुत जरूरी है; क्योंकि दिन में तुम तोड़ सको तो ही रात में तुम तोड़ पाओगे। दिन में ही न तोड़ सको तो रात में कैसे तोड़ोगे !

सभी मंत्रों का उपयोग इस अंतर्सूत्र को तोड़ने के लिए किया जाता है। जैसे कि कोई एक आदमी को मंत्र दे दिया उसके गुरु ने कि तू एक काम कर, बाजार जा, सामान बेच, खरीद; लेकिन भीतर राम-राम की अंतर्ध्वनि चलने दे। यह क्या है ? अगर तुम काम करते वक्त भीतर राम की अंतर्ध्वनि चलने दो तो वह जो शक्ति स्वप्न बनती थी, वह राम की धारा बन जायेगी। क्योंकि, वही शक्ति है जो भीतर सपना बनती है। तो भीतर तुमने एक अपना ही एक सपना पैदा कर लिया— राम, राम, राम, राम। बाहर तुम सब काम करते हो और भीतर तुम राम का अनुस्मरण करते हो, तो वह जो शक्ति तुम्हारे भीतर खाली पड़ी सपना देखती थी, वह राम का स्मरण बन जायेगी। इससे कुछ राम नहीं मिल जायेंगे; लेकिन सपने को तोड़ने में सहायता मिलेगी। और जिस दिन तुम रात नींद

में भी पाओगे कि सपना नहीं चलता, बल्कि राम की धारा चल रही है, उस दिन समझ लेना कि दिन में सपना टूट गया।

तो, मंत्र की सफलता नींद में पता चलती है, दिन में पता नहीं चलती। कैसे पता चलेगी ! अगर तुम दिनभर राम का जप करते रहे हो तो रात सोते समय सपना पैदा नहीं होगा, राम की धारा चलेगी। यह धारा इतनी सघन हो सकती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

स्वामी राम 'राम-राम' जपते रहे थे। एक रात हिमालय में ठहरे वे, अपने एक मित्र के पास— सरदार पूर्णसिंह के पास। अकेली कोठरी में थे। दूर पहाड़ में बनी कोठरी थी। वहां कोई पास था भी नहीं मीलों तक। सरदार पूर्णसिंह को कुछ नींद नहीं आयी— कुछ मच्छर थे, कुछ गर्मी थी। तो वे बड़े हैरान हुए— 'राम-राम' की आवाज चल रही है कोठरी में। स्वामी राम तो सो गये हैं। तो वे उठे, थोड़ा भय भी लगा कि यहां कोई तीसरा आदमी तो है नहीं और यह 'राम' की आवाज ! तो दीया लेकर सब तरफ देख आये। बाहर कोई भी नहीं है। कमरे में फिर आये तो और हैरानी हुई कि बाहर आवाज कम सुनायी पड़ती, कमरे में ज्यादा सुनायी पड़ती थी। वे जैसे राम की खाट के पास पहुंचे तो आवाज और ज्यादा सुनायी पड़ने लगी। उन्होंने दीये से राम को देखा कि कहीं वे जागकर राम का स्मरण तो नहीं कर रहे हैं। वे तो गहरी नींद में सो रहे हैं, खर्राटा आ रहा है। वे बहुत हैरान हुए। करीब आकर बैठ गये। कान लगाकर सुनने लगे— पूरे शरीर के रोएं-रोएं से राम-राम की आवाज आ रही है।

अगर अनुस्मरण बहुत गहरा हो जाए तो यह घटना घटती है; क्योंकि स्वप्न में बड़ी ऊर्जा नष्ट हो रही है। तुम्हारे सपने तुम्हें मुफ्त नहीं मिले हैं। उनमें है कुछ भी नहीं, लेकिन कीमत बहुत चुकानी पड़ती है; क्योंकि रातभर तुम सपना देखते हो।

अभी स्वप्न पर बड़ी वैज्ञानिक शोध होती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि रात में हर आदमी— साधारण स्वस्थ आदमी कम से कम आठ सपने देखता है और एक स्वप्न का अंतराल करीब-करीब पंद्रह मिनिट का होता है। एक स्वप्न पंद्रह मिनट का, तो आठ सपने का मतलब हुआ कि कम से कम दो घंटे रात सपना देखा जा रहा है। और यह बिलकुल सामान्य स्वस्थ आदमी, जिसमें कोई मानसिक विकार नहीं है ! ऐसा स्वस्थ आदमी भी खोजना मुश्किल है— आम आदमी तो रात के आठ घंटे की नींद में करीब-करीब छह घंटे सपना देखता है। यह छह घंटे जो सतत स्वप्न की धारा चल रही है, इसमें तुम्हारी शक्ति नष्ट हो रही है। यह मुफ्त नहीं है। यह तुम खरीद रहे हो, अपने

जीवन को देकर।

मंत्र इस शक्ति को राम में केंद्रित कर लेता है या कृष्ण में या क्राइस्ट में या ओंकार में— कोई भी शब्द काम दे देगा। कोई जरूरत नहीं है भगवान का नाम, खुद का नाम भी अगर तुमने दोहराया तो काम दे देगा।

एक अंग्रेज कवि हुआ— टैनिसन। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह हो गया कि जब मुझे नींद न आती थी तो मैं अपने को जोर-जोर से कहता था; टैनिसन, टैनिसन, टैनिसन, और मुझे नींद आ जाती थी। फिर मुझे तरकीब हाथ पड़ गयी कि जब भी मैं बेचैन होता तो मैं भीतर कहता, टैनिसन, टैनिसन, टैनिसन— मेरी बेचैनी खो जाती थी। फिर मैंने इसका मंत्र बना लिया।

अपना ही नाम भी अगर तुम लोगे तो उतना ही लाभ हो सकता है। हालांकि होगा नहीं; क्योंकि तुम्हें अपने नाम पर उतना भरोसा नहीं हो सकता। बाकी फर्क कुछ भी नहीं है। राम कहो, रहीम कहो—उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई भी नाम, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल नाम का नहीं है। शब्द सभी एक जैसे हैं। और, सभी नाम परमात्मा के हैं; तुम्हारा नाम भी। कोई भी एक शब्द को पकड़कर अगर दोहराया जाए तो उसका एक संगीत भीतर पैदा हो जाता है, एक ध्वनि पैदा हो जाती है। उस ध्वनि में स्वप्न की जो ऊर्जा है, वह लीन हो जाती है। मंत्र सपनों को नष्ट करने के उपाय हैं। उनसे कोई परमात्मा को नहीं पाता। लेकिन स्वप्न को नष्ट करना परमात्मा को पाने के मार्ग पर एक बड़ा कदम है।

मंत्र एक प्रक्रिया है, एक विधि है, एक औजार है, एक हथौड़ी है, जिससे हम सपनों को चकनाचूर कर देते हैं। और सपने भी क्या हैं, शब्द हैं! इसलिए शब्दों की हथौड़ी उन्हें चकनाचूर कर सकती है। उनके लिए कोई लोहे की असली हथौड़ी भीतर ले जाने की जरूरत भी नहीं है। नकली हैं, नकली हथौड़ी काम कर देगी। नकली बीमारी के लिए असली दवा हमेशा खतरनाक है। नकली बीमारी के लिए नकली दवा ही उचित होगी; क्योंकि वही उसको नष्ट कर सकती है।

स्वप्न क्या हैं, विकल्प हैं! और मंत्र क्या हैं, मंत्र संकल्प है। वह भी विकल्प का ही एक रूप है। लेकिन स्वप्न बदलते हुए हैं, क्षणभंगुर हैं; मंत्र सतत है और एक ही है। धीरे-धीरे सभी स्वप्नों की ऊर्जा मंत्र में लीन हो जाती है। और जिस दिन रात्रि में, नींद में भी स्वप्न न आएं और मंत्र चलने लगे, तुम समझना कि तुमने स्वप्न पर विजय पा ली। तुम समझना कि तुम्हारा सपना टूटा, सत्य शुरू हुआ। उसके बाद सुषुप्ति में प्रवेश हो

सकता है।

लेकिन, तुम उलटा ही कर रहे हो। तुम विकल्पों को शक्ति देते हो। तुम्हारे भीतर व्यर्थ के विचार चलते हैं, उनको भी तुम साथ देते हो। बैठे हो खाली तो यही सोचने लगते हो कि अगले इलैक्शन में खड़े हो जायें। फिर सपना शुरू हुआ। फिर राष्ट्रपति हुए बिना काम नहीं चलेगा। फिर तुम सपने में राष्ट्रपति हो जाते हो। स्वागत-समारोह हो रहे हैं, और तुम सबका स्वाद ले रहे हो। तुम कभी भी नहीं सोचते कि यह कैसी मूढ़ता है ! क्या तुम कर रहे हो ! तुम एक व्यर्थ के विकल्प को ऊर्जा दे रहे हो, साथ दे रहे हो। और, ऐसे ही व्यर्थ के विकल्पों से भरा हुआ तुम्हारा चित्त है।

अगर हम आदमी के जीवन की पूरी खोजबीन करें, तो निन्यानवे प्रतिशत इसी तरह के सपनों में खो जाता है। धन के सपने, साम्राज्य के सपने, शक्ति के सपने—तुम पा भी लोगे तो क्या मिलेगा!

अमरीका का एक बहुत प्रसिद्ध प्रैजीडेंट हुआ—कालविन कूलिज; बड़ा शांत आदमी था। भूल से ही वह राष्ट्रपति हो गया; क्योंकि उतने शांत आदमी उतनी अशांत जगहों तक पहुंच नहीं सकते। वहां पहुंचने के लिए बिलकुल पागल दौड़ चाहिए। वहां जो जितना ज्यादा पागल है, वह छोटे पागलों को दबाकर आगे निकल जाता है। कूलिज कैसे पहुंच गया, यह चमत्कार है। बिलकुल शांत आदमी था—न बोलता, न चालता। कहते हैं कि किसी-किसी दिन ऐसा हो जाता दस-पांच शब्दों से ज्यादा न बोलता। जब दुबारा फिर राष्ट्रपति के चुनाव का समय आया तो मित्रों ने कहा कि तुम फिर खड़े हो जाओ। उसने कहा कि नहीं। तो उन्होंने कहा कि क्या बात है। पूरा मुल्क राजी है; तुम्हें फिर से राष्ट्रपति बनाने को उत्सुक है। उसने कहा कि अब नहीं, एक बार भूल हो गई काफी; पहुंचकर कुछ भी न पाया। अब पांच साल और खराब मैं न करूंगा। और, फिर राष्ट्रपति के आगे बढ़ती का कोई उपाय भी नहीं है। जो रह चुके, रह चुके; अब उसके आगे जाने की कोई जगह भी नहीं है। जगह होती आगे तो शायद सपना बना रहता।

इसलिए, तुम्हें पता नहीं है, जो लोग सफल हो जाते हैं सपनों में, उनसे ज्यादा असफल आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि सफलता की आखिरी कगार पर उन्हें पता चलता है कि जिसके लिए दौड़े, भागे, पा लिया, वहां कुछ भी नहीं है। यद्यपि अपनी मूढ़ता छिपाने को वे, पीछे जो लोग अभी भी दौड़ रहे हैं, उनकी तरफ देखकर मुस्कराते रहते हैं, हाथ हिलाते रहते हैं, विजय का प्रतीक बताते रहते है। वे हार गये

हैं, और विजय का प्रतीक बताते रहते हैं—उनको, जो पीछे नासमझ अभी और दौड़ रहे हैं। अगर दुनिया के सभी सफल लोग ईमानदारी से कह दें कि उनकी सफलता से उन्हें कुछ भी न मिला तो बहुत-से व्यर्थ सपनों की दौड़ बंद हो जाए। लेकिन यह उनके अहंकार के विपरीत है कि वे कहें, उनको कुछ भी न मिला। पीछे तो वे यही बताते रहते हैं कि उन्होंने परम आनंद पा लिया। जिसकी पूंछ कट गयी हो, वह दूसरों की पूंछ कटवाने का इंतजाम करता रहता है। अन्यथा पूंछकटा अकेला होगा तो बड़ी ग्लानि होगी। सबकी कट जाए तो....।

जब भी तुम्हारे भीतर सपनों की धारा चले, तब जरा जागकर देखना, देखना कि क्या तुम कर रहे हो। बच्चे शेखचिल्लियों की कहानियां पढ़ते हैं, वे सब कहानियां तुम्हारे संबंध में हैं। मन शेखचिल्ली है। और जब तक तुम स्वप्न देखते हो तब तक तुम शेखचिल्ली ही रहोगे। शेखचिल्ली का मतलब है व्यर्थ के सपने देख रहा है और उन सपनों को सच मान रहा है। भगवान न करे कि वे सपने सच हो जाएं; क्योंकि उनको सच करने में बड़ी शक्ति लगानी पड़ेगी, और जब वे सच हो जाएंगे, तब तुम पाओगे, उनसे कुछ भी न पाया। हाथ राख लगती है सदा। इस संसार की सभी सफलताएं राख में बदल जाती हैं। लेकिन, जब तक राख हाथ में आती हैं, तब तक जीवन हाथ से निकल चुका होता है; लौटने का उपाय नहीं होता। और तब तो सिर्फ छिपाने की बात रह जाती है कि लोगों से छिपा लो कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ नहीं गया; तुम बड़े सार्थक हो गये हो, तुमने कुछ पा लिया है!

विकल्प ही स्वप्न हैं। इन विकल्पों को शक्ति मत देना और जब भीतर स्वप्न चले, तब हिलाकर अपने को जगा लेना और स्वप्न को तोड़ देना, जितनी जल्दी हो सके। मंत्र उपयोगी हो सकता है स्वप्न को तोड़ने में। मंत्र के संबंध में हम आगे विचार करेंगे, कैसे मंत्र कारगर हो सकता है। मंत्र निश्चित ही स्वप्न को तोड़ देता है।

और, अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव सुषुप्ति है—जहां सभी कुछ खो जाता है, कोई विवेक नहीं रह जाता, कोई होश नहीं रह जाता—न बाहर का कोई होश, न भीतर का कोई होश; जहां तुम सिर्फ एक चट्टान की भांति हो जाते हो, गहन तंद्रा में। लेकिन, तुम देखो कि तुम्हारा जीवन कैसा उपद्रव होगा! क्योंकि जब भी तुम गहरी तंद्रा में हो जाते हो, तभी सुबह उठकर तुम कहते हो कि रात बड़ी आनंददायी नींद आयी। थोड़ी देर सोचो कि तुम्हारा जीवन कैसा नरक होगा कि तुम्हें सिर्फ नींद में सुख आता है। बेहोशी में भर सुख आता है, बाकी तुम्हारा जीवन एकदम दुख ही दुख है। अच्छी

नींद आ जाती है तो तुम कहते हो, काफी हो गया। और नींद का अर्थ है—बेहोशी। लेकिन, ठीक ही है, तुम्हारे लिए काफी हो गया; क्योंकि तुम्हारी पूरी जिंदगी सिर्फ चिंता, तनाव और बेचैनी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ! उसमें तुम आराम कर लेते हो थोड़ी देर के लिए तो तुम समझते हो कि तुमने सब पा लिया, जबकि वहां कुछ भी नहीं है।

नींद का अर्थ है : जहां कुछ भी नहीं है; न बाहर का जगत है, न भीतर का जगत है; जहां सब अंधकार में खो गया। हां, लेकिन, विश्राम मिल जाता है। विश्राम लेकर भी तुम क्या करोगे ! सुबह तुम फिर उसी दौड़ में लगोगे। विश्राम से जो शक्ति तुम्हें मिलती है, तुम उसे नये तनाव बनाने में लगाओगे, नयी चिंताएं ढालोगे। रोज तुम विश्राम करोगे और रोज तुम नई चिंताएं ढालोगे। काश ! तुम इतनी-सी ही बात समझ लो कि नींद में जब इतना आनंद मिलता है, बेहोश तंद्रा में जब इतना आनंद मिलता है—क्यों ? क्योंकि, वहां कोई तनाव नहीं है, वहां कोई चिंता नहीं है; वहां तुम भूल गये सब उपद्रव—अगर बेहोशी में भी उपद्रव भूलकर इतना आनंद मिलता है, तो तुम सोचो, जिस दिन उपद्रव खो जाएंगे और तुम होश में रहोगे, उस दिन कैसा आनंद तुम्हें उपलब्ध हो सकेगा। उसे हमने मोक्ष कहा है; वह निर्वाण है, वह ब्रह्मानंद है।

नींद में इतना मिल जाता है, क्योंकि उपद्रव नहीं दिखायी पड़ते तो उपद्रव जब सच में ही खो जाते हैं; तनाव जब सच में ही विसर्जित हो जाते हैं और तुम चौबीस घंटे उतने विश्राम में रहने लगते हो, जैसे गहरी निद्रा में कभी-कभी कोई व्यक्ति पहुंचता है—जब वैसी चौबीस घंटा सतत तुम्हारी शांत स्थिति बनी रहती है, तब तुम्हें कैसे आनंद के राज्य का अनुभव नहीं होगा ! उसे थोड़ा सोचो। क्योंकि समाधि सुषुप्ति जैसी है। सिर्फ एक फर्क है उसमें कि वहां होश है। तुर्यावस्था सुषुप्ति जैसी है; सिर्फ एक फर्क है कि वहां प्रकाश है और सुषुप्ति में अंधकार है।

समझो कि तुम्हें एक स्ट्रेचर पर बेहोश अवस्था में, इस बगीचे में लाया जाए। सूरज की किरणें तुम्हें छुएंगी; क्योंकि सूरज की किरणें बेहोश नहीं, बेहोश तुम हो। हवाओं के झोंके तुम्हारे ऊपर से गुज़रेंगे, हलकी थपकियां देंगे; क्योंकि वे बेहोश नहीं हैं, बेहोश तुम हो। फूल की पंखुड़ियों से गंध तुम्हारे नासापुटों तक आयेगी; क्योंकि फूल बेहोश नहीं है, बेहोश तुम हो। सुबह की पड़ी हुई ओस की ताजगी तुम्हें छुएगी; क्योंकि ओस बेहोश नहीं है, बेहोश तुम हो। सब घटित होगा।

लेकिन तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। दो घंटे बाद जब तुम होश में आओगे, तो तुम

कहोगे कि बड़ा विश्राम था। इस विश्राम में उस ओस का भी दान होगा—फूल की गंध का भी, सूरज की किरण का भी, हवा के झोंकों का भी; लेकिन उनका तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुम बेहोश थे, तब भी तुम होश में लौटकर आकर कहते हो कि बड़ा सुख आया।

थोड़ी देर कल्पना करो कि तुम होश से बैठे हो, फूल की गंध बरस रही है, सूरज की किरणें बरस रही हैं, ओस ने सब ताजा कर दिया है, सब नया कर दिया है; हवाओं के झोंके वृक्षों में गीत पैदा करते हैं और तुम होश से भरे बैठे हो! तब तुम्हारे आनंद....।

सुषुप्ति में तुम वहीं पहुंचते हो, जहां बुद्ध और महावीर और शिव जाग्रत अवस्था में पहुंचते हैं। नींद में भी तुम सुबह थोड़ी-सी खबर लाते हो कि बड़ा सुख था; हालांकि, तुम साफ नहीं कह सकते कि कैसा सुख था, तुम कुछ बता नहीं सकते, कुछ व्याख्या नहीं कर सकते, कुछ स्वाद की खबर नहीं दे सकते। नींद में गहरी, लेकिन फिर भी तुम सुबह थोड़ी-सी ताजगी लेकर आते हो। सुबह उठते हुए आदमी की—जो रात गहरी नींद सोया हो—उसके चेहरे पर बुद्धत्व की थोड़ी-सी झलक होती है। खासकर छोटे बच्चे, जो कि सच में गहरी नींद सोते हैं—क्योंकि जैसे-जैसे तुम्हारी चिंताएं बढ़ने लगती हैं, गहरी नींद भी मुश्किल हो जाती है—छोटे बच्चों को सुबह उठते समय देखो, इसके पहले कि उनकी नींद टूटे, उनके चेहरे को देखो, उस पर बुद्धत्व की ताजगी होती है। कहीं भीतर कोई आनंदपूर्ण घटना घट रही है, जिसका उसे होश नहीं है; लेकिन, घटना घट रही है।

सुषुप्ति में सब तनाव खो जाते हैं, लेकिन विवेक नहीं होता। और समाधि में—तुरीयावस्था में—सब तनाव खो जाते हैं और विवेक होता है। विवेक + सुषुप्ति = समाधि।

और तीनों का भोक्ता वीरेश कहलाता है। जाग्रत को, स्वप्न को, सुषुप्ति को—तीनों का भोक्ता, तीनों से जो पृथक है, तीनों से जो अन्य है, तीनों से जो गुजरता है, तीनों को जो भोगता है, लेकिन तादात्म्य नहीं करता; जो तीनों के पार जाता है, लेकिन अपने को अन्य मानता है; तीनों से भिन्न जो है—वही वीरेश है।

वीरेश का अर्थ है : वीरों में वीर है, महावीर है। वीरेश शिव का एक नाम है। हमने महावीर उन्हीं पुरुषों को कहा, जिन्होंने समाधि पा ली। हम महावीर उनको नहीं कहते, जो गौरीशंकर पर चढ़ गया; ठीक है, साहस किया, लेकिन गौरीशंकर कोई आखिरी

ऊंचाई नहीं। हम महावीर उसको भी नहीं कहते जो चांद पर पहुंच गया; साहस किया, लेकिन चांद पर पहुंचना कोई आखिरी मंजिल नहीं है। हम तो वीरेश उसे कहते हैं, महावीर उसे कहते हैं, जिसने आत्मा को पा लिया; क्योंकि, परमात्मा से और ऊंचा गौरीशंकर कहां ! और, परमात्मा से और आगे मंजिल कहां ! जिसने आखिरी पा लिया,हम उसी को महावीर कहते हैं। उससे कम पर हम राजी नहीं हैं। क्योंकि चांद पर पहुंच कर क्या होगा। चांद पर पहुंचकर सिर्फ और आगे पहुंचने के रास्ते खुलते हैं; अब मंगल पर पहुंचना होगा। मंगल पर पहुंचकर क्या होगा ! अनंत विस्तार है !

हम महावीर उसे कहते हैं, जो वहां पहुंच गया, जिसके आगे पहुंचने को अब कोई जगह न बची। और, क्यों कहते हैं महावीर उसे,क्योंकि उससे बड़ा कोई दुस्साहस नहीं। स्वयं को पा लेने से बड़ा कोई दुस्साहस नहीं। उससे बड़ा कोई साहसिक अभियान नहीं। क्योंकि उसके मार्ग पर जितनी कठिनाइयां हैं, उतनी कठिनाइयां किसी मार्ग पर नहीं है। उस तक पहुंचने में जितनी तपश्चर्या से तुम्हें गुजरना पड़ेगा, और कहीं पहुंचने से वैसी तपश्चर्या से नहीं गुजरना पड़ता है। स्वयं की यात्रा सबसे दुर्भर यात्रा है। वह खड़ग की धार है। शायद इसलिए, तुम स्वयं से भागे हुए हो। और संसार में अपने को यहां-वहां उलझा रहे हो। शायद इसी कारण आत्मज्ञान की बात मन को पकड़ती भी है, फिर भी तुम हिम्मत नहीं जुटाते। कहीं कोई डर पकड़ लेता है।

कठिन है ! अकेले जाना होगा ! सबसे बड़ी तो कठिनाई तो यह है कि दुनिया में सब जगह तुम किसी के साथ जा सकते हो, सिर्फ एक जगह है, जहां तुम्हें अकेले जाना होगा। वहां पत्नी साथ न होगी, भाई साथ न होगा, मित्र साथ न होगा, गुरु तक भी वहां साथ नहीं हो सकता; वह सिर्फ इशारा कर सकता है कि मंजिल कहां है। बुद्ध इशारा करते हैं, जाना तुम्हें होगा।

अकेले होने में डर लगता है। और चारों तरफ इतने लोग हैं, इतने सपने हैं ! सपनों में कई तो बड़े मधुर सपने हैं। उसमें बड़ा रस है। उन सबको तोड़कर, इस सब सपने के जाल को गिराकर, सत्य की यात्रा पर थोड़े-से दुर्लभ लोग निकलते हैं। उनमें से भी बहुत बीच यात्राओं से वापस लौट आते हैं। लाखों में एक उस यात्रा पर जाता है; क्योंकि बड़ी कठिन है। और लाखों जाते हैं, उनमें से कोई एक पहुंच पाता है। इसलिए, हमने उस अवस्था को वीरेश कहा है।

तीन के पार जो चौथा तुम्हारे भीतर छिपा है, वही गौरीशंकर है—वहीं पहुंचना है। और पहुंचने का रास्ता यह है कि तुम जागने में और जागो। अभी तुम कुनकुने-कुनकुने

हो। जलती हुई [illegible] ताकि यह लपट स्वप्न में प्रवेश कर जाए स्वप्न में भी जागो ताकि स्वप्न टूट जाएं। स्वप्न में इतने जागो कि जागने की एक कि सुषुप्ति में भी पहुंच जाये। बस, जिस दिन तुम सुषुप्ति में दीया लेकर पहुंच गये, तु वीरेश होने का द्वार खोल लिया। तुमने मंदिर पर पहली दस्तक दी।

अनंत आनंद है। लेकिन, बीच का मार्ग चलना ही पड़ेगा। कीमत चुकानी पड़ेगी और जितना बड़ा आनंद पाना हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। सस्ता सौदा नहीं हो सकता।

बहुत लोग सस्ते सौदे की कोशिश भी करते हैं। बहुत लोग शार्टकट खोजते उनको शोषण करने वाले गुरु भी मिल जाते हैं, जो कहते हैं कि बस, इससे सब जाएगा कि तुम यह ताबीज बांध लो; कि तुम मुझ पर भरोसा रखो, बस; कि तुम कर दो, कि तुम पुण्य कर दो, कि तुम मंदिर बना दो—ये सब सस्ती बाते हैं। इनसे हल होनेवाला नहीं है। इनसे सिर्फ तुम धोखे में पड़ते हो। यात्रा करनी ही पड़ेगी

फिर और भी सस्ते मार्ग खोजनेवाले लोग हैं। कोई गांजा पीकर सोचता है समाधि लग गयी; कोई भंग खाकर सोचता है कि ज्ञान उत्पन्न हो गया। ह साधु-संन्यासी हैं—गांजा, अफीम, भंग का उपयोग कर रहे हैं। अभी पश्चिम में उ प्रभाव बहुत बढ़ गया है; क्योंकि पश्चिम में और भी अच्छे मादक द्रव्य खोज लिये हैं। हशीश, मारिजुआना, एल.एस.डी, और भी वैज्ञानिक केमिकल खोज लिये ग जिनका तुम एक इंजेक्शन ले लो और तुम समाधिस्थ हो गये! एक गोली ले समाधि उपलब्ध हो गयी! जैसे तत्क्षण काफी तैयार की जा सकती है, वैसे त समाधि भी तैयार की जा सकती है।

काश, इतना सस्ता होता! और काश! नशे में खोने से कोई ज्ञान को उपलब्ध तो सारी दुनिया कभी की हो गयी होती। इतना सस्ता नहीं है; लेकिन सस्ते की खोज करता है। मन चाहता है, किसी तरह बीच का रास्ता कट जाए और हम जहां हैं, से हम सीधे मोक्ष में प्रवेश कर जाएं। बीच का रास्ता नहीं कट सकता; क्योंकि इस से गुजरने में ही तुम्हारा मोक्ष आयेगा। क्योंकि रास्ता सिर्फ रास्ता नहीं है, रास्ता तु विकास भी है।

यही तकलीफ है। बाहर तो हो सकता है। लंदन से हवाई जहाज उड़ता है, बम्बई उतर जाए—बीच का रास्ता काट दिया। लेकिन लंदन से जो आदमी बैठ वह बम्बई में वही आदमी उतरेगा जो लंदन से बैठा था, कोई दूसरा आदमी नहीं

सकता। उसमें कोई विकास नहीं हुआ। यह यात्रा बाहर की है। लेकिन तुम जहां हो, वहां से मोक्ष में उतरने की कोई यात्रा नहीं हो सकती। और, जो भी कहते हैं कि हो सकती है, वे धोखा देते हैं। क्योंकि यह यात्रा एक बिंदु से दूसरे बिंदु की यात्रा नहीं है; एक जीवन-स्थिति से दूसरी जीवन-स्थिति में प्रवेश है। बीच के मार्ग से गुजरना ही होगा; क्योंकि उस गुजरने में ही तुम निखरोगे, जलोगे, बदलोगे। उस गुजरने की पीड़ा से ही तुम्हारा विकास होगा। वह पीड़ा अनिवार्य है। उस पीड़ा से गुजरे बिना कोई वहां नहीं पहुंच सकता। और, तुमने अगर कोई संक्षिप्त रास्ता खोजा तो तुम सिर्फ अपने को धोखा दे रहे हो।

पश्चिम में संक्षिप्त की बड़ी तलाश है। इसलिए महेश योगी जैसे व्यक्तियों का बड़ा प्रभाव है। उस प्रभाव का कुल कारण इतना है कि वे कहते हैं हम जो कह रहे हैं, यह जैट-स्पीड है। हम जो कह रहे हैं, यह जो छोटा-सा मंत्र है, इसे रोज पंद्रह मिनट कर लेने से, तुम सीधे पहुंच जाओगे। कुछ और करने की जरूरत नहीं। न तुम्हारे आचरण को बदलने की जरूरत है, न तुम्हारे जीवन को बदलने की जरूरत है, न तुम्हें कुछ खोना है बाहर की दुनिया में, कुछ करना नहीं है; बस, तुम्हें बैठकर पंद्रह मिनट विश्राम में इस मंत्र का जाप कर लेना है। बस, यह मंत्र सब कुछ है।

मंत्र कीमती चीज है, पर सब कुछ नहीं है। और, मंत्र से सपने काटे जा सकते हैं, सत्य नहीं मिलता। सपना काटना सत्य के मिलने के मार्ग पर एक हिस्सा है। लेकिन, मंत्र को ही दोहराकर कोई समझता हो कि सब हो गया; कि माला फेर कर समझता हो कि सब हो गया, तो वह बचकाना है। वह अभी योग्य भी नहीं है। समझ के भी योग्य नहीं है—पहुंचने की तो बात बहुत दूर है।

दूभर है मार्ग। उस दूभर से गुजरना होगा। और, इसीलिए यह सूत्र कहता है—उद्यम चाहिए। इतनी महान प्रयत्न करने की आकांक्षा चाहिए, अभीप्सा चाहिए कि तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दो। मोक्ष खरीदा जा सकता है, लेकिन तुम अपने को पूरा दांव पर लगाओ तो ही; इससे कम में नहीं चलेगा। कुछ और तुमने दिया, वह देना नहीं है, वह कीमत नहीं चुकायी तुमने। अपने को पूरा दे डालोगे तो ही कीमत चुकती है और उपलब्धि होती है।

आज इतना ही।

हो। जलती हुई लपट हो जाओगे जागरण की, ताकि यह लपट स्वप्न में प्रवेश कर जाए स्वप्न में भी जागो ताकि स्वप्न टूट जाएं। स्वप्न में इतने जागो कि जागने की एक किरण सुषुप्ति में भी पहुंच जाये। बस, जिस दिन तुम सुषुप्ति में दीया लेकर पहुंच गये, तुमने वीरेश होने का द्वार खोल लिया। तुमने मंदिर पर पहली दस्तक दी।

अनंत आनंद है। लेकिन, बीच का मार्ग चलना ही पड़ेगा। कीमत चुकानी ही पड़ेगी और जितना बड़ा आनंद पाना हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। सस्ता कोई सौदा नहीं हो सकता।

बहुत लोग सस्ते सौदे की कोशिश भी करते हैं। बहुत लोग शार्टकट खोजते हैं उनको शोषण करने वाले गुरु भी मिल जाते हैं, जो कहते हैं कि बस, इससे सब हो जाएगा कि तुम यह ताबीज बांध लो; कि तुम मुझ पर भरोसा रखो, बस; कि तुम दान कर दो, कि तुम पुण्य कर दो, कि तुम मंदिर बना दो—ये सब सस्ती बाते हैं। इनसे कुछ हल होनेवाला नहीं है। इनसे सिर्फ तुम धोखे में पड़ते हो। यात्रा करनी ही पड़ेगी।

फिर और भी सस्ते मार्ग खोजनेवाले लोग हैं। कोई गांजा पीकर सोचता है कि समाधि लग गयी; कोई भंग खाकर सोचता है कि ज्ञान उत्पन्न हो गया। हजारों साधु-संन्यासी हैं—गांजा, अफीम, भंग का उपयोग कर रहे हैं। अभी पश्चिम में उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया है; क्योंकि पश्चिम में और भी अच्छे मादक द्रव्य खोज लिये गये हैं। हशीश, मारिजुआना, एल.एस.डी, और भी वैज्ञानिक केमिकल खोज लिये गये हैं जिनका तुम एक इंजेक्शन ले लो और तुम समाधिस्थ हो गये! एक गोली ले लो, समाधि उपलब्ध हो गयी! जैसे तत्क्षण काफी तैयार की जा सकती है, वैसे तत्क्षण समाधि भी तैयार की जा सकती है।

काश, इतना सस्ता होता! और काश! नशे में खोने से कोई ज्ञान को उपलब्ध होता तो सारी दुनिया कभी की हो गयी होती। इतना सस्ता नहीं है; लेकिन सस्ते की खोज मन करता है। मन चाहता है, किसी तरह बीच का रास्ता कट जाए और हम जहां हैं, वहां से हम सीधे मोक्ष में प्रवेश कर जाएं। बीच का रास्ता नहीं कट सकता; क्योंकि इस रास्ते से गुजरने में ही तुम्हारा मोक्ष आयेगा। क्योंकि रास्ता सिर्फ रास्ता नहीं है, रास्ता तुम्हारा विकास भी है।

यही तकलीफ है। बाहर तो हो सकता है। लंदन से हवाई जहाज उड़ता है, सीधा बम्बई उतर जाए—बीच का रास्ता काट दिया। लेकिन लंदन से जो आदमी बैठा है, वह बम्बई में वही आदमी उतरेगा जो लंदन से बैठा था, कोई दूसरा आदमी नहीं उतरेगा

सकता। उसमें कोई विकास नहीं हुआ। यह यात्रा बाहर की है। लेकिन तुम जहां हो, वहां से मोक्ष में उतरने की कोई यात्रा नहीं हो सकती। और, जो भी कहते हैं कि हो सकती है, वे धोखा देते हैं। क्योंकि यह यात्रा एक बिंदु से दूसरे बिंदु की यात्रा नहीं है; एक जीवन-स्थिति से दूसरी जीवन-स्थिति में प्रवेश है। बीच के मार्ग से गुजरना ही होगा; क्योंकि उस गुजरने में ही तुम निखरोगे, जलोगे, बदलोगे। उस गुजरने की पीड़ा से ही तुम्हारा विकास होगा। वह पीड़ा अनिवार्य है। उस पीड़ा से गुजरे बिना कोई वहां नहीं पहुंच सकता। और, तुमने अगर कोई संक्षिप्त रास्ता खोजा तो तुम सिर्फ अपने को धोखा दे रहे हो।

पश्चिम में संक्षिप्त की बड़ी तलाश है। इसलिए महेश योगी जैसे व्यक्तियों का बड़ा प्रभाव है। उस प्रभाव का कुल कारण इतना है कि वे कहते हैं हम जो कह रहे हैं, यह जैट-स्पीड है। हम जो कह रहे हैं, यह जो छोटा-सा मंत्र है, इसे रोज पंद्रह मिनट कर लेने से, तुम सीधे पहुंच जाओगे। कुछ और करने की जरूरत नहीं। न तुम्हारे आचरण को बदलने की जरूरत है, न तुम्हारे जीवन को बदलने की जरूरत है, न तुम्हें कुछ खोना है बाहर की दुनिया में, कुछ करना नहीं है; बस, तुम्हें बैठकर पंद्रह मिनट विश्राम में इस मंत्र का जाप कर लेना है। बस, यह मंत्र सब कुछ है।

मंत्र कीमती चीज है, पर सब कुछ नहीं है। और, मंत्र से सपने काटे जा सकते हैं, सत्य नहीं मिलता। सपना काटना सत्य के मिलने के मार्ग पर एक हिस्सा है। लेकिन, मंत्र को ही दोहराकर कोई समझता हो कि सब हो गया; कि माला फेर कर समझता हो कि सब हो गया, तो वह बचकाना है। वह अभी योग्य भी नहीं है। समझ के भी योग्य नहीं है—पहुंचने की तो बात बहुत दूर है।

दूभर है मार्ग। उस दूभर से गुजरना होगा। और, इसीलिए यह सूत्र कहता है—उद्यम चाहिए। इतनी महान प्रयत्न करने की आकांक्षा चाहिए, अभीप्सा चाहिए कि तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दो। मोक्ष खरीदा जा सकता है, लेकिन तुम अपने को पूरा दांव पर लगाओ तो ही; इससे कम में नहीं चलेगा। कुछ और तुमने दिया, वह देना नहीं है, वह कीमत नहीं चुकायी तुमने। अपने को पूरा दे डालोगे तो ही कीमत चुकती है और उपलब्धि होती है।

आज इतना ही।

योग के सूत्र : विस्मय, वितर्क, विवेक

तीसरा प्रवचन

दिनांक 13 सितंबर, 1974,
प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना:

विस्मयो योगभूमिकाः ।
स्वपदंशक्ति ।
वितर्क आत्मज्ञानम् ।
लोकानन्दः समाधिसुखम् ।

विस्मय योग की भूमिका है। स्वयं में स्थिति ही शक्ति है। वितर्क अर्थात विवेक आत्मज्ञान का साधन है। अस्तित्व का आनंद भोगना समाधि है।

विस्मय योग की भूमिका है।
इसे थोड़ा समझें।

विस्मय का अर्थ शब्दकोश में दिया है—आश्चर्य; पर, आश्चर्य और विस्मय में एक बुनियादी भेद है। और वह भेद समझ में न आये तो अलग-अलग यात्राएं शुरू हो जाती हैं। आश्चर्य विज्ञान की भूमिका है, विस्मय योग की; आश्चर्य बहिर्मुखी है, विस्मय अंतर्मुखी; आश्चर्य दूसरे के संबंध में होता है, विस्मय स्वयं के संबंध में—एक बात।

जिसे हम नहीं समझ पाते; जो हमें अवाक कर जाता है; जिस पर हमारी बुद्धि की पकड़ नहीं बैठती; जो हमसे बड़ा सिद्ध होता है; जिसके सामने हम अनायास ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं; जो हमें मिटा जाता है—उससे विस्मय पैदा होता है। लेकिन, अगर यह जो विस्मय की दशा भीतर पैदा होती है—अतर्क्य, अचिंत्य के समक्ष खड़े होकर—इस धारा को हम बहिर्मुखी कर दें, तो विज्ञान पैदा होता है। सोचने लगें पदार्थ के संबंध में; विचार करने लगें जगत के संबंध में; खोज करने लगें रहस्य की, जो हमारे चारों ओर है—तो विज्ञान का जन्म होता है।

विज्ञान आश्चर्य है। आश्चर्य का अर्थ है—विस्मय बाहर की यात्रा पर निकल गया। और आश्चर्य और विस्मय में यह भी फर्क है कि जिस चीज के प्रति हम आश्चर्यचकित होते हैं, हम आज नहीं कल उस आश्चर्य से परेशान हो जायेंगे; आश्चर्य से तनाव पैदा होगा। इसलिए आश्चर्य को मिटाने की कोशिश होती है।

विज्ञान आश्चर्य से पैदा होता है, फिर आश्चर्य को नष्ट करता है; व्याख्या खोजता है, सिद्धांत खोजता है, सूत्र चाबियां खोजता है और तब तक चैन नहीं लेता जब तक कि रहस्य मिट न जाये; जब तक कि ज्ञान हाथ में न आ जाये; जब तक विज्ञान यह न कह सके कि हमने समझ लिया—तब तक चैन नहीं।

विज्ञान जगत से आश्चर्य को मिटाने में लगा है। अगर विज्ञान सफल हुआ तो

दुनिया में ऐसी कोई चीज न रह जायेगी, जो आदमी न कह सके कि हम जानते हैं। इसका अर्थ हुआ कि जगत में कोई परमात्मा न बचेगा; क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हम जान भी लें तो भी दावा न किया जा सके कि हम जानते हैं; जो हमारे जानने के बाद भी जानने को शेष रह जाये; जिसे जान-जानकर भी हम चुकता न कर पायें; जिसके विस्मय को अंत करने का कोई उपाय नहीं।

एक तो ऐसी वस्तुएं हैं, जिन्हें हमने जान लिया—उन्हें हम 'ज्ञात' कहें; कुछ ऐसी वस्तुएं हैं, जिन्हें हमने जाना नहीं लेकिन हम जान लेंगे—उन्हें हम 'अज्ञात' कहें; और कुछ ऐसा भी है इस जगत में, जिसे हमने जाना भी नहीं है और हम जान भी न पायेंगे—उसे हम 'अज्ञेय' कहें। परमात्मा अज्ञेय है। वह तीसरा तत्व है। विज्ञान इसलिए परमात्मा को स्वीकार नहीं करता; क्योंकि विज्ञान कहता है कि ऐसा कुछ भी नहीं है, जो न जाना जा सके। नहीं जाना होगा हमने अभी तक, हमारे प्रयास कमजोर हैं; लेकिन आज नहीं कल, केवल समय की बात है, हम जान लेंगे। एक दिन जगत पूरा का पूरा जान लिया जायेगा; इसमें अनजाना कुछ भी न बचेगा।

विज्ञान आश्चर्य से पैदा होता है और फिर आश्चर्य की हत्या में लग जाता है। इसलिए, विज्ञान को मैं 'पितृघाती' कहता हूं; जिससे पैदा होता है, उसे मिटाने में लग जाता है। धर्म बिलकुल विपरीत है। धर्म भी एक आश्चर्य-भाव से पैदा होता है; इस आश्चर्य-भाव को शिवसूत्र में विस्मय कहा है। फर्क इतना ही है कि जब किसी स्थिति में आश्चर्य से भर जाता है धार्मिक खोजी, तो वह बाहर की यात्रा पर नहीं जाता, वह भीतर की यात्रा पर जाता है। जब भी कोई रहस्य उसे घेर लेता है तो वह सोचता है कि मैं जानूं कि मैं कौन हूं। रहस्य अंतर्मुखी बन जाये; यात्रा, खोज भीतर चलने लगे, पदार्थ की तरफ नहीं, स्व की तरफ मेरी खोज उन्मुख हो जायें; मेरा संधान पहले उसे जानने में लग जाये कि मैं कौन हूं—तो विस्मय।

और, दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि विस्मय कभी चुकता नही; जितना ही हम जानते हैं, उतना ही बढ़ता है। इसलिए विस्मय एक विरोधाभास है; क्योंकि जानने से विस्मय नष्ट होना चाहिए। लेकिन, बुद्ध या कृष्ण या शिव या जीसस—उनका विस्मय नष्ट नहीं होता। जिस दिन वे परम ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उस दिन उनका विस्मय भी परम होता है। उस दिन वे ऐसा नहीं कहते कि हमने सब जान लिया; उस दिन वे ऐसा कहते हैं कि सब जानकर भी, सब जानने को शेष रह गया।

उपनिषदों ने कहा है कि पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाये, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। सब जान लिया जाए, तो भी सब जानने को शेष रह जाता है। इसलिए, धार्मिक ज्ञान अहंकार का जन्म नहीं बनता; वैज्ञानिक ज्ञान अहंकार का जन्म बनेगा। धार्मिक ज्ञान में तुम जाननेवाले कभी भी न बनोगे; तुम सदा विनम्र रहोगे। और, जितना तुम जानते जाओगे, उतनी ही तुम्हें प्रतीति होगी कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। परम ज्ञान के क्षण में तुम कह सकोगे कि मेरा कोई भी ज्ञान नहीं। परम ज्ञान के क्षण में यह पूरा अस्तित्व विस्मय हो जायेगा।

विज्ञान अगर सफल हो तो सारा जगत ज्ञात हो जायेगा; धर्म अगर सफल हो तो सारा जगत अज्ञात हो जायेगा। विज्ञान अगर सफल हो तो तुम, जाननेवाले, अस्मिता से भर जाओगे और सारा जगत साधारण हो जायेगा; क्योंकि जहां विस्मय नहीं है, वहां सब साधारण हो जाता है; जहां रहस्य नहीं है, वहां सारी आत्मा खो जाती है; जहां रहस्य का और उपाय नहीं है, वहां आगे की यात्रा बंद हो जाती है; जहां जिज्ञासा पूरी हो गयी, कुतूहल समाप्त हो गया।

अगर विज्ञान जीता तो जगत में ऐसी ऊब पैदा होगी, जैसी ऊब कभी भी पैदा नहीं हुई थी। इसलिए, अगर पश्चिम में लोग ज्यादा ऊब से भरे हैं, बोरडम से भरे हैं, तो उसका मौलिक कारण विज्ञान है; क्योंकि लोगों की विस्मय-क्षमता घटती जा रही है। लोग किसी भी चीज से चकित नहीं होते; चकित होना ही भूल गये हैं। अगर तुम उनके सामने कुछ ऐसा सवाल भी रखो, जो उलझानेवाला है, तो भी वे कहेंगे कि सुलझ जायेगा। क्योंकि लोगों की विस्मय-क्षमता घटती जा रही है। लोग किसी भी चीज से चकित नहीं होते; चकित होना ही भूल गये हैं। अगर तुम उनके सामने कुछ ऐसा सवाल भी रखो, जो उलझानेवाला है, तो भी वे कहेंगे कि सुलझ जायेगा। क्योंकि, मौलिक रूप से ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, विज्ञान की दृष्टि में, जो अज्ञात सदा के लिए रह जाए; हम पर्दे उघाड़ ही लेंगे।

लेकिन, धर्म की यात्रा बड़ी उलटी है। जितने हम पर्दे उघाड़ते हैं, पाते हैं कि रहस्य उतना सघन होता जाता है; जितने हम करीब आते हैं, उतना ही पता चलता है कि जानना बहुत मुश्किल है। और, जिस दिन हम परमात्मा के ठीक केंद्र में प्रवेश कर जाते हैं; उस दिन सभी कुछ रहस्यपूर्ण हो जाता है। बुद्ध के लिए आकाश के तारे ही रहस्यपूर्ण नहीं है, जमीन पर पड़े कंकड़-पत्थर भी आश्चर्यपूर्ण हो गये हैं; बुद्ध के लिए यह विराट ही रहस्यमय नहीं है, क्षुद्र से क्षुद्र घटना भी रहस्यपूर्ण हो गयी है। एक बीज

का जमीन से अंकुरित होना भी उतना ही रहस्यपूर्ण है, जितना इस पूरी सृष्टि का जन्म।

तो, जैसे-जैसे विस्मय घना होगा, वैसे-वैसे तुम्हारी आंखें छोटे बच्चे की तरह होती जायेंगी; क्योंकि छोटे बच्चे के लिए सभी कुछ विस्मय होता है। छोटे बच्चे को चलते देखो। वह रास्ते से जा रहा है, हर चीज उसे चौंकाती है। एक रंगीन पत्थर उसे कोहिनूर मालूम होता है। तुम हंसते हो, क्योंकि तुम ज्ञाता हो; तुम जानते हो कि यह रंगीन पत्थर है। तुम कहते हो—पागल मत हो, यह कोहिनूर नहीं है। लेकिन छोटा बच्चा उस पत्थर को खीसे में रखना चाहता है। तुम कहोगे : 'वजन मत ढोओ। और, गंदा पत्थर है, कीचड़ में पड़ा है; फेंक इसे।' लेकिन बच्चा इसे पकड़ता है। क्योंकि, तुम बच्चे को नहीं समझ पा रहे हो, यह बच्चे के लिए विस्मय है; यह रंगीन पत्थर किसी कोहिनूर से कम कीमती नहीं है। कीमत विस्मय की है, पत्थरों की थोड़ी ही कोई कीमत होती है। एक तितली भी उसे इतना सम्मोहित कर लेती है, जितना परमात्मा भी तुम्हें मिल जाए तो इतना सम्मोहित नहीं करेगा। वह तितली के पीछे दौड़ना शुरू कर देता है।

एक छोटे बच्चे की जैसी निर्मल दशा है, ऐसे विस्मय की परम स्थिति में—बुद्धत्व की स्थिति में—किसी भी व्यक्ति की हो जाती है। इसलिए, जीसस ने कहा है कि जो छोटे बच्चों की तरह सरल होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। जीसस ने वही कहा है, जो शिव सूत्र में कह रहे हैं : विस्मयो योग भूमिकाः। विस्मय योग का प्रथम चरण है। तब तो बहुत बातें खयाल में लेनी जरूरी हैं।

तुम्हारे पास जितना ज्ञान होगा, उतनी ही योग की भूमिका मुश्किल हो जायेगी। तुम्हें जितना दंभ होगा कि मैं जानता हूं, उतना ही तुम योगी न हो पाओगे। जितने शास्त्र तुम्हारे चित्त पर भारी होंगे, उतना ही तुम्हारा विस्मय नष्ट हो गया। एक पंडित को पूछो, परमात्मा के संबंध में, तो वह ऐसे उत्तर देता है, जैसे परमात्मा कोई उत्तर देने की बात हो; जैसे कि कोई उत्तर दिया जा सकता हो। पंडित को पूछो, उसके पास उत्तर रेडीमेड हैं। तुमने पूछा भी नहीं था, उसके पास उत्तर तैयार था। परमात्मा भी उसे अवाक नहीं करता। उसके पास सूत्र सब निश्चित हैं, वह तो तत्क्षण समझा देता है।

लेकिन, बुद्ध के पास जाओ, पूछो परमात्मा के संबंध में, बुद्ध चुप रह जाते हैं। शायद तुम यही सोचकर लौट आओ कि बहुत से पंडित बुद्ध के पास से यही सोचकर लौट गये कि यह आदमी चुप रह गया ! इसका मतलब है, इसे पता नहीं है। और, यह आदमी इसलिए चुप रह गया कि विस्मय तो द्वार है। तुम अगर थोड़े समझदार होते तो तुम रुक गये होते इस आदमी के पास, जिसने उत्तर नहीं दिया। और, तुमने इस आदमी

को समझने की कोशिश की होती; इसकी आंखों में झांका होता; इसके सत्संग में, इसकी सन्निधि में तुम रहे होते; क्योंकि इसे कुछ स्वाद मिल गया है और वह स्वाद इतना बड़ा है कि शब्द उसे कह नहीं सकते और इसे कोई ऐसा दर्शन हुआ है, जो उत्तर नहीं बनाया जा सकता।

प्रश्न और उत्तर स्कूली बच्चों की बातें हैं। तुम्हारा प्रश्न ही बेहूदा है। परमात्मा के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता। विराट के संबंध में कोई प्रश्न कैसे पूछा जा सकता है ! विराट के संबंध में तो प्रश्न-उत्तर दोनों गिर जाते हैं। तुम्हारा प्रश्न क्षुद्र है। इसलिए, बुद्ध चुप रह गये हैं। लेकिन, तुम शायद यह सोचकर लौटोगे कि इस आदमी को पता होता तो जवाब देता। इसने जवाब नहीं दिया, इसे पता नहीं है। तुम पंडित को पहचानते हो; क्योंकि तुम्हारा सिर भी शब्दों से भरा है। तुम ज्ञानी को न पहचान पाओगे; क्योंकि ज्ञानी विस्मय से भरा है। और तुम्हारा विस्मय नष्ट हो गया है।

जगत में बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना है और वह है कि विस्मय का नष्ट हो जाना। जिस दिन तुम्हारा विस्मय नष्ट होता है, उसी दिन तुम्हारे छुटकारे का उपाय नष्ट हो गया। जिस दिन तुम्हारा विस्मय नष्ट हुआ, उसी दिन तुम्हारा बाल-हृदय मर गया, जड़ हो गया, तुम बूढ़े हो गये। क्या अब भी तुम चौंकते हो ? क्या जीवन तुम्हें प्रश्न बनता है ? क्या चारों तरफ से पक्षियों की आवाजें, झरनों का शोरगुल, हवाओं का वृक्षों से गुजरना, तुम्हारे लिए किसी पुलक से भर जाता है ? तुम आह्लादित हो जाते हो ? तुम जीवन को चारों तरफ देखकर अवाक होते हो ? नहीं; क्योंकि तुम्हें सब यह पता है कि यह पक्षियों की आवाज है, यह शोरगुल है हवाओं का वृक्षों में—तुम्हारे पास हर चीज के उत्तर हैं। उत्तरों ने तुम्हें मार डाला है। तुम ज्ञान के पहले ज्ञानी हो गये हो।

विस्मयो योगभूमिकाः। जो व्यक्ति योग में प्रवेश करना चाहे, विस्मय उसके लिए द्वार है। अपने बचपन को वापस लौटाओ। फिर से पूछो, फिर से कुतूहल करो, फिर से जिज्ञासा जगाओ—तो तुम्हारे भीतर जहां-जहां जीवन के स्रोत सूख गये हैं, फिर हरे हो जायेंगे; जहां-जहां पत्थर अड़ गये हैं, वहां-वहां वह झरना फिर प्रगट हो जायेगा। तुम फिर से आंख खोलो और चारों तरफ देखो। सब उत्तर झूठे हैं। क्योंकि सब तुम्हारे उत्तर उधार हैं। तुमने खुद कुछ भी नहीं जाना है। लेकिन, तुम उधार ज्ञान से ऐसे भर गये हो कि तुम्हें प्रतीति होती है कि मैंने जान लिया।

विस्मय को जगाओ। तुम्हारे आसन, प्राणायाम से कुछ भी न होगा, जब तक विस्मय न जग जाए। क्योंकि आसन, प्राणायाम सब शरीर के हैं। ठीक है, शरीर-शुद्धि

होगी, शरीर स्वस्थ होगा; लेकिन शरीर की शुद्धि और शरीर का स्वास्थ्य तुम्हें कोई परमात्मा से न मिला देगा।

विस्मय मन की शुद्धि है। विस्मय का अर्थ है—मन सभी उत्तरों से मुक्त हो गया। विस्मय का अर्थ है—तुमने हटा दिया उत्तरों का कचरा; तुम्हारा प्रश्न फिर नया और ताजा हो गया और तुमने अपने अज्ञान को समझा।

विस्मय का अर्थ है—मुझे पता नहीं; पांडित्य का अर्थ है—मुझे पता है। जितना तुम्हें पता है, उतने ही तुम गलत हो। जब तुम सरल भाव से कहते हो—मुझे कुछ भी पता नहीं हैं, सारा जगत अज्ञान है। जो भी मुझे पता है वह भी कामचलाऊ है; मैंने अभी कुछ भी नहीं जाना है—ऐसी प्रतीति जैसे ही तुम्हारे हृदय में जितनी गहरी बैठ जायेगी, तुमने योग का पहला कदम उठाया। फिर दूसरे कदम आसान हैं। लेकिन अगर पहला कदम ही चूक जाये, तो फिर तुम कितनी ही यात्रा करो, उससे कुछ हल नहीं होता। क्योंकि, जिसका पहला कदम गलत पड़ा वह मंजिल पर नहीं पहुंच सकेगा। पहला कदम जिसका सही है, उसकी आधी यात्रा पूरी हो गयी। और, विस्मय पहला कदम है।

थोड़ा गौर से देखो। तुम्हारे पास ज्ञान है ? तुम भी थोड़े गौर से देखोगे तो तुम समझ लोगे कि ज्ञान नहीं है; सब कचरा है, इकट्ठा कर लिया है—शास्त्र से, गुरुओं से, संतों से और उसे तुम बहुमूल्य थाती की तरह संजोये बैठे हो। उसने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया, सिर्फ तुम्हारे विस्मय की हत्या कर दी। तुम्हारा विस्मय तड़प रहा है, मरा हुआ पड़ा है; अब तुम चौंकते नहीं। अब तुम्हें कोई भी चीज चौंकाती नहीं।

एक ईसाई फकीर हुआ—इकहार्ट। उसने एक बड़ी अनूठी बात कही है। उसने कहा है : संत वही है, जिसे हर चीज चौंका दे; हर चीज, छोटी-छोटी घटनायें जिसे चौंका देती हैं। पानी में पत्थर गिरता है, आवाज होती है, लहरें उठती हैं—संत को चौंका देती हैं। यह इतना विस्मयपूर्ण है, इतना रहस्यपूर्ण है। संत श्वास लेता है, जीता है—यह भी काफी चौंकानेवाला है।

इकहार्ट रोज सुबह की प्रार्थना में परमात्मा को कहता था, 'आज फिर सुबह हुई। आज फिर सूरज उगा। तेरी लीला अपार है। न उगता तो क्या करते ? क्या उपाय था ? आदमी बेबस है।'

इकहार्ट कहता था, 'आज सांस आती है, कल न आए, क्या करूंगा ?'

तुम सांस ले तो न सकोगे। सांस तुम्हारे बस में तो नहीं है। इतने पास है श्वास, फिर

भी तुम उसके मालिक नहीं हो। गयी बाहर और न लौटी, तो नहीं लौटोगी। इतने पास जो है, उसके भी हम ज्ञाता और मालिक नहीं हैं। और, खयाल हमें यह है कि हम सब कुछ जानते हैं। तुम्हारे सब जानने ने ही तुम्हें मारा है। इस कचरे को हटा दो और हलके हो जाओ। तत्क्षण, तुम्हारी आंखें जब ज्ञान से न भरी होंगी, तब रहस्य से भर जायेंगी। उस रहस्य की अंतर्यात्रा का नाम विस्मय है, बहिर्यात्रा का नाम आश्चर्य है।

अगर उस रहस्य को तुमने पदार्थों पर लगा दिया, तो तुम एक वैज्ञानिक हो जाओगे। अगर उस रहस्य को तुमने स्वयं की सत्ता पर लगा दिया तो तुम एक महायोगी हो जाओगे। और, दोनों के परिणाम भिन्न होंगे। क्योंकि, आश्चर्य हिंसात्मक है; विस्मय अहिंसात्मक है। आश्चर्य जिस तरफ लग जाता है, उसे तोड़ने लगता है, विश्लेषण करता है; क्योंकि आश्चर्य में एक बेचैनी है, विस्मय में एक रस है।

इस फर्क को भी ठीक से समझ लो। शब्दकोश में वह नहीं लिखा हुआ है, लिखा भी नहीं जा सकता; क्योंकि शब्दकोश बनानेवाले को कोई विस्मय पता भी नहीं है।

आश्चर्य हिंसात्मक है, आक्रमक है। तुम जिस चीज के प्रति आश्चर्य से भरते हो, एक तनाव पैदा हो जाता है। उस तनाव को हल करना ही पड़ेगा। जब तक वह जिज्ञासा पूरी न हो जायेगी; जब तक तुम जान न लोगे, तब तक एक बेचैनी तुम्हारे सिर पर सवार रहेगी। वह जो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में लगा रहता है, अट्ठारह-अट्ठारह घंटे, वह किस लिए लगा है ? एक बेचैनी है; जैसे एक भूत प्रेत ने उसे पकड़ लिया है। और, जब तक वह उसको हल न कर लेगा, तब तक वह लगा ही रहेगा।

लेकिन, विस्मय आक्रमक नहीं है और विस्मय एक बेचैनी नहीं है; बल्कि विस्मय एक विश्राम है। जब कोई व्यक्ति विस्मय से भरता है तो एकदम विश्राम से भर जाता है। विस्मय को मिटाना नहीं है, विस्मय को पीना है विस्मय का स्वाद लेना है। विस्मय में लीन हो जाना है, एक हो जाना है। आश्चर्य मिटाने में लग जाता है; विस्मय जीने में लग जाता है। विस्मय जीवन की एक शैली है; आश्चर्य मनुष्य का एक हिंसात्मक रूप है।

इसलिए विज्ञान विजय की भाषा में सोचता है—तोड़ो, फोड़ो, जीतो। धर्म समर्पण की भाषा में सोचता है—अपने को खो दो। जब तुम्हारे भीतर विस्मय का प्रवेश होगा, तो विस्मय तुममें इस तरह लीन हो जायेगा, जैसे तुम ने नमक की डली पानी में डाल दी और सारा पानी खारा हो जाये। जिस दिन तुम विस्मय से भरोगे उस दिन तुम विस्मय

होगी, शरीर स्वस्थ होगा; लेकिन शरीर की शुद्धि और शरीर का स्वास्थ्य तुम्हें कोई परमात्मा से न मिला देगा।

विस्मय मन की शुद्धि है। विस्मय का अर्थ है—मन सभी उत्तरों से मुक्त हो गया। विस्मय का अर्थ है—तुमने हटा दिया उत्तरों का कंचरा; तुम्हारा प्रश्न फिर नया और ताजा हो गया और तुमने अपने अज्ञान को समझा।

विस्मय का अर्थ है—मुझे पता नहीं; पांडित्य का अर्थ है—मुझे पता है। जितना तुम्हें पता है, उतने ही तुम गलत हो। जब तुम सरल भाव से कहते हो—मुझे कुछ भी पता नहीं हैं, सारा जगत अज्ञान है। जो भी मुझे पता है वह भी कामचलाऊ है; मैंने अभी कुछ भी नहीं जाना है—ऐसी प्रतीति जैसे ही तुम्हारे हृदय में जितनी गहरी बैठ जायेगी, तुमने योग का पहला कदम उठाया। फिर दूसरे कदम आसान हैं। लेकिन अगर पहला कदम ही चूक जाये, तो फिर तुम कितनी ही यात्रा करो, उससे कुछ हल नहीं होता। क्योंकि, जिसका पहला कदम गलत पड़ा वह मंजिल पर नहीं पहुंच सकेगा। पहला कदम जिसका सही है, उसकी आधी यात्रा पूरी हो गयी। और, विस्मय पहला कदम है।

थोड़ा गौर से देखो। तुम्हारे पास ज्ञान है ? तुम भी थोड़े गौर से देखोगे तो तुम समझ लोगे कि ज्ञान नहीं है; सब कचरा है, इकट्ठा कर लिया है—शास्त्र से, गुरुओं से, संतों से और उसे तुम बहुमूल्य थाती की तरह संजोये बैठे हो। उसने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया, सिर्फ तुम्हारे विस्मय की हत्या कर दी। तुम्हारा विस्मय तड़प रहा है, मरा हुआ पड़ा है; अब तुम चौंकते नहीं। अब तुम्हें कोई भी चीज चौंकाती नहीं।

एक ईसाई फकीर हुआ—इकहार्ट। उसने एक बड़ी अनूठी बात कही है। उसने कहा है : संत वही है, जिसे हर चीज चौंका दे; हर चीज, छोटी-छोटी घटनायें जिसे चौंका देती हैं। पानी में पत्थर गिरता है, आवाज होती है, लहरें उठती हैं—संत को चौंका देती हैं। यह इतना विस्मयपूर्ण है, इतना रहस्यपूर्ण है। संत श्वास लेता है, जीता है—यह भी काफी चौंकानेवाला है।

इकहार्ट रोज सुबह की प्रार्थना में परमात्मा को कहता था, 'आज फिर सुबह हुई। आज फिर सूरज उगा। तेरी लीला अपार है। न उगता तो क्या करते ? क्या उपाय था ? आदमी बेबस है।'

इकहार्ट कहता था, 'आज सांस आती है, कल न आए, क्या करूंगा ?'

तुम सांस ले तो न सकोगे। सांस तुम्हारे बस में तो नहीं है। इतने पास है श्वास, फिर

भी तुम उसके मालिक नहीं हो। गयी बाहर और न लौटी, तो नहीं लौटोगी। इतने

पास जो है, उसके भी हम ज्ञाता और मालिक नहीं हैं। और, खयाल हमें यह है कि हम सब कुछ जानते हैं। तुम्हारे सब जानने ने ही तुम्हें मारा है। इस कचरे को हटा दो और हलके हो जाओ। तत्क्षण, तुम्हारी आंखें जब ज्ञान से न भरी होंगी, तब रहस्य से भर जायेंगी। उस रहस्य की अंतर्यात्रा का नाम विस्मय है, बहिर्यात्रा का नाम आश्चर्य है।

अगर उस रहस्य को तुमने पदार्थों पर लगा दिया, तो तुम एक वैज्ञानिक हो जाओगे। अगर उस रहस्य को तुमने स्वयं की सत्ता पर लगा दिया तो तुम एक महायोगी हो जाओगे। और, दोनों के परिणाम भिन्न होंगे। क्योंकि, आश्चर्य हिंसात्मक है; विस्मय अहिंसात्मक है। आश्चर्य जिस तरफ लग जाता है, उसे तोड़ने लगता है, विश्लेषण करता है; क्योंकि आश्चर्य में एक बेचैनी है, विस्मय में एक रस है।

इस फर्क को भी ठीक से समझ लो। शब्दकोश में वह नहीं लिखा हुआ है, लिखा भी नहीं जा सकता; क्योंकि शब्दकोश बनानेवाले को कोई विस्मय पता भी नहीं है।

आश्चर्य हिंसात्मक है, आक्रमक है। तुम जिस चीज के प्रति आश्चर्य से भरते हो, एक तनाव पैदा हो जाता है। उस तनाव को हल करना ही पड़ेगा। जब तक वह जिज्ञासा पूरी न हो जायेगी; जब तक तुम जान न लोगे, तब तक एक बेचैनी तुम्हारे सिर पर सवार रहेगी। वह जो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में लगा रहता है, अट्ठारह-अट्ठारह घंटे, वह किस लिए लगा है ? एक बेचैनी है; जैसे एक भूत प्रेत ने उसे पकड़ लिया है। और, जब तक वह उसको हल न कर लेगा, तब तक वह लगा ही रहेगा।

लेकिन, विस्मय आक्रमक नहीं है और विस्मय एक बेचैनी नहीं है; बल्कि विस्मय एक विश्राम है। जब कोई व्यक्ति विस्मय से भरता है तो एकदम विश्राम से भर जाता है। विस्मय को मिटाना नहीं है, विस्मय को पीना है विस्मय का स्वाद लेना है। विस्मय में लीन हो जाना है, एक हो जाना है। आश्चर्य मिटाने में लग जाता है; विस्मय जीने में लग जाता है। विस्मय जीवन की एक शैली है; आश्चर्य मनुष्य का एक हिंसात्मक रूप है।

इसलिए विज्ञान विजय की भाषा में सोचता है—तोड़ो, फोड़ो, जीतो। धर्म समर्पण की भाषा में सोचता है—अपने को खो दो। जब तुम्हारे भीतर विस्मय का प्रवेश होगा, तो विस्मय तुममें इस तरह लीन हो जायेगा, जैसे तुम ने नमक की डली पानी में डाल दी और सारा पानी खारा हो जाये। जिस दिन तुम विस्मय से भरोगे उस दिन तुम विस्मय

से खारे हो जाओगे। रोआं रोआं विस्मय से भर जायेगा। उठोगे तो विस्मय, बैठोगे तो विस्मय। तुम सदा चौंके रहोगे। हर चीज रहस्यपूर्ण हो जायेगी। क्षुद्रतम भी विराट का हिस्सा हो जायेगा। क्योंकि जब क्षुद्र में भी विस्मय जुड़ जाता है, तो क्षुद्र भी विराट हो जाता है। तब जाना हुआ कुछ भी नहीं है, सभी तरफ रहस्य तुम्हें घेरे हुए है। तब प्रतिपल नया हो रहा है और प्रतिपल निमंत्रण दे रहा है। विस्मय एक आमंत्रण है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया था, तो मत मांगने घर-घर गया। गांव में जो चर्च का पादरी था, उसके द्वार पर भी गया। जब मत मांगने गया था, तब भी उसके मुंह से शराब की बास आ रही थी। पादरी भला आदमी था। सीधे-सीधे कहना अशिष्टता होगी। तो, उसने नसरुद्दीन से कहा, 'मुझे तुमसे एक बात पूछनी है। अगर संतोषजनक उत्तर दिया तो मेरा मत, मेरा वोट तुम्हारे लिए है। क्या तुम कभी शराब पीते हो ?' पूछने का इसमें कुछ भी नहीं था, शराब वह पिये ही हुये था। नसरुद्दीन चौंका और उसने कहा कि इसके पहले मैं जवाब दूं, एक सवाल मुझे भी पूछना है, 'यह जांच-पड़ताल है या आमंत्रण ? इज दिस ऐन इंक्वायरी आर ऐन इन्वीटेशन ?'

आश्चर्य जांच-पड़ताल है; विस्मय आमंत्रण है। विस्मय एक भीतरी बुलावा है। और, जैसे-जैसे तुम भीतर प्रवेश करते हो, वैसे-वैसे डूबते चले जाते हो। एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम न बचोगे और विस्मय ही बचेगा। उस दिन परम ज्ञान घट गया। अगर तुमने आश्चर्य किया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम ही बचोगे और आश्चर्य न बचेगा। यह विज्ञान की निष्पत्ति है। अहंकार बचेगा और आश्चर्य नष्ट हो जायेगा। अगर विस्मय की यात्रा पर गये तो तुम नष्ट हो जाओगे, विस्मय बचेगा; रोआं-रोआं उसी स्वाद से भर जाएगा। तुम्हारा होना ही विस्मयपूर्ण होगा। इसे शिव ने भूमिका कहा है योग की।

ज्ञान को हटाओ। विस्मय से भरो। और अब कठिन लगेगा, शुरू में, क्योंकि तुम्हें खयाल है कि तुम सब जानते हो।

डी.एच. लारेंस, एक बड़ा विचारक—कीमती, मूल्यवान विचारक—हुआ। एक छोटे बच्चे के साथ बगीचे में घूम रहा था। उस छोटे बच्चे ने पूछा, "व्हाई दि ट्रीज आर ग्रीन ? वृक्ष हरे क्यों है ?"

छोटे बच्चे ही ऐसे सवाल पूछ सकते हैं—इतने ताजे सवाल। तुम तो यह सवाल ही नहीं सोच सकते। तुम कहोगे कि वृक्ष हरे, हरे हैं, इसमें पूछना क्या है ! यह कोई सवाल है ! यह बच्चा मूढ़ है। लेकिन तुम फिर से सोचो कि वृक्ष हरे क्यों हैं। तुम्हें सच

में उत्तर पता है ? शायद तुम में कोई विज्ञान का विद्यार्थी हो तो वह

कहेगा—क्लोरोफिल के कारण। मगर इससे कोई बच्चे के प्रश्न का हल तो नहीं होता। बच्चा पूछेगा कि वृक्ष में क्लोरोफिल क्यों है ? आखिर क्लोरोफिल को वृक्ष में होने की क्या जरूरत है ? और, आदमी में क्यों नहीं है ? और, क्लोरोफिल कैसे वृक्षों को खोजता रहता है ? 'क्यों' का कोई सवाल क्लोरोफिल से हल नहीं होता।

विज्ञान जो भी जवाब देता है, सब ऐसे ही हैं। उससे प्रश्न सिर्फ एक सीढ़ी पीछे हट जाता है, बस। अगर तुम जरा समझदार हो तो प्रश्न फिर उठा सकते हो। विज्ञान के पास 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं है। इसलिए विज्ञान विस्मय को नष्ट नहीं कर सकता, सिर्फ भ्रम पैदा करता है नष्ट करने का।

लेकिन डी.एच लारेंस कोई वैज्ञानिक नहीं था; कवि था, एक उपन्यासकार था। उसके पास संचेतना थी। सौंदर्य की। वह खड़ा हो गया। वह सोचने लगा। उसने बच्चे से कहा कि मौका दो; क्योंकि मुझे खुद ही पता नहीं है।

तुम्हारे बच्चे ने भी तुमसे कई बार ऐसे सवाल किये होंगे। तुमने कभी कहा कि मुझे पता नहीं है। उससे अहंकार को चोट लगेगी। हर बाप सोचता है कि उसे पता है। बच्चा पूछता है, बाप जवाब देता है। इन्हीं जवाबों के कारण बाप प्रतिष्ठा खोता है बाद में; क्योंकि बच्चे को एक-न-एक दिन पता चल जाता है कि पता तुम्हें कुछ भी न था। तुम नाहक ही जवाब देते रहे। जैसा अज्ञानी मैं हूं, वैसे ही तुम हो। तुम्हारी उम्र ज्यादा थी, तुम्हारा अज्ञान जरा पुराना था। बस, इतनी ही बात थी। लेकिन छोटे बच्चे को तुम जवाब दे देते हो। छोटा बच्चा भरोसा करता है। वह मान लेता है कि ठीक है, होगा। कितने दिन तक मानेगा ?

डी.एच. लारेंस खड़ा हो गया। उसने कहा कि मैं सोचूंगा और अगर तुम ज्यादा ही जिद करो तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि वृक्ष हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। इसमें कोई और उत्तर नहीं है। मैं खुद ही इसी रहस्य से भरा हुआ हूं।

अगर तुम आंख से थोड़े ज्ञान का पर्दा थोड़ा हटाओगे तो तुम पाओगे कि चारों तरफ रहस्य खड़ा हुआ है। हरे वृक्ष हरे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। वृक्षों में लाल फूल लग रहे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। एक छोटे-से बीज में इतने-इतने विराटकाय वृक्ष छिपे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। एक बीज को तुम संभाल कर रखे रहो, सैंकड़ों-हजारों सालों के बाद बोओ, वृक्ष प्रगट हो जाता है। जीवन शाश्वत मालूम होता है। हर घड़ी रहस्य से भरी है। पर, तुमने जैसे अपनी आंखें बंद कर ली हैं। तुम निश्चित हो गये हो।

निश्चितता तुम्हारी जड़ता है।

तुम झिझकते भी नहीं। इसमें कुछ कारण हैं। क्योंकि इससे अहंकार को आश्वासन मिला रहता है कि मैं जानता हूं। मैं जानता हूं तो एक सुरक्षा बनी है। मैं नहीं जानता तो सब सुरक्षा खो जाती है। पता तुम्हें कुछ भी नहीं है। लेकिन यह बात पीड़ा देती है मुझे कुछ भी पता नहीं है। इसलिए तुम कुछ भी पकड़ लेते हो। तिनके को पकड़ लेता है डूबता हुआ आदमी, तिनके के सहारे ले लेता है। यह तुम जो पकड़े हो, यह तिनका भी नहीं है। तिनके से शायद कभी कोई बच भी जाए, पर तुमने जो पकड़ा है, वह तिनका भी नहीं; वह तो सिर्फ सपना है, सिर्फ कोरे शब्द हैं।

एक आदमी पक्का मानकर बैठा है कि उसे ईश्वर का पता है। यह बात ही बेहूदी है कि कोई आदमी कहे कि मुझे पक्का पता है। 'पक्के' का मतलब होता है कि तुम ईश्वर के रहस्य को भी खोज लिये। 'पक्के' का अर्थ होता है कि तुम उसके भी आर-पार गुजर गये, उसे भी नाप-जोख लिया। 'पक्के' का अर्थ होता है कि वह भी माप लिया गया। तुमने तोल लिया तराजू पर, जांच-पड़ताल कर ली प्रयोगशाला में। पक्के का क्या अर्थ होता है ?

एक दूसरा आदमी है, जिसको पक्का पता है कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों मूढ़ हैं और दोनों की बीमारी एक है। एक अपने को आस्तिक कहता है, एक नास्तिक; और दोनों में जरा भी फर्क नहीं है। गहरे में दोनों की बीमारी एक है। दोनों मानते हैं कि हमें पता है और दोनों में विवाद खड़ा होता है।

ज्ञान से विवाद पैदा होता है; विस्मय से संवाद होता है। जब तुम विस्मय से भरोगे तो तुम्हारे जीवन में एक संवाद आयेगा। महावीर के पास कोई जाता और कहता : 'ईश्वर है ?' तो वे कहते : 'है।' कोई नास्तिक जाता और कहता कि ईश्वर नहीं है तो वे कहते कि नहीं है। कोई दोनों को न माननेवाला अज्ञेयवादी (ऐग्नास्टिक) पहुंच जाता, तो महावीर उससे कहते कि है भी और नहीं भी।

बड़ी कठिन बात हो गयी। क्योंकि हम चाहेंगे—उत्तर साफ दो, सीधे दो; चाहे गलत हों, लेकिन साफ चाहिए। और ध्यान रखें, यह जगत इतना जटिल है कि यहां साफ उत्तर गलत ही होंगे। यहां जो उत्तर विरोधाभासी नहीं है, वह गलत होगा। यहां जो उत्तर अपने से विपरीत को भी समा लेता है, वही सही होगा; क्योंकि जगत अपने से विपरीत को समाये हुए है।

यहां जन्म भी है और मृत्यु भी है। यहां साफ-सुथरा रास्ता नहीं है। यहां अंधेरा भी

है और प्रकाश भी है। यहां शुभ भी है और अशुभ भी है। यहां दोनों साथ-साथ जी रहे हैं। यहां पापी और पुण्यात्मा अलग-अलग नहीं हैं, दोनों साथ जी रहे हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परमात्मा दोनों को अपने में समाये हुए है। अस्तित्व बड़ा है। कोई तर्क की कसौटी पर कटा हुआ नहीं है, अतर्क्य है। वहां दोनों एक-दूसरे में मिले हुए हैं।

ऐसा हुआ कि जुन्नैद ने एक रात प्रार्थना की परमात्मा से कि मैं जानना चाहता हूं कि इस गांव में ऐसा कोई आदमी है, जो महापापी हो; क्योंकि उसको देखकर, उसको समझकर में पाप से बचने की कोशिश करूंगा। मेरे पास मापदंड हो जायेगा कि यह महापापी है, इस जीवन से बचना है। आवाज आयी कि तेरा पड़ोसी। हैरान हुआ जुन्नैद। उसने कभी सोचा भी न था कि उसका पड़ोसी और महापापी! साधारण आदमी था, काम-धंधा करता था, दुकान चलाता था; 'महापापी' का तो उसने सोचा भी न था। उसका तो खयाल था कि महापापी होगा कोई रावण, महापापी कोई होगा कोई दुष्ट , शैतान। यह आदमी दुकान चलाता है, बाल-बच्चे पालता है। बड़ी उलझन में पड़ गया। यह तो साधारण आदमी था। इसको तो महापापी कोई भी न कहेगा।

दूसरी रात, उसने फिर प्रार्थना की कि ठीक; तू जो कहे, ठीक; अब मुझे एक और मापदंड चाहिए कि इस गांव में जो सबसे बड़ा महात्मा हो, पुण्यात्मा हो, उसकी मुझे खबर दे। परमात्मा ने कहा कि वही आदमी, वह जो तेरे पड़ोस में है। जुन्नैद ने कहा, 'तू मुझे मुश्किल में डाल रहा है, मैं वैसे ही काफी मुश्किल में हूं। दिनभर उस आदमी को देखता रहा, ऐसा कुछ महापाप नहीं देखा। अब और झंझट खड़ी हो गयी कि पुण्यात्मा भी वही है।'

तो आवाज आयी कि मेरी दुनिया में दोनों जुड़े हैं। सिर्फ, बुद्धि तोड़कर चीजों को देखती है। यहां बड़े-से-बड़े संत के पीछे भी छाया पड़ती है। यहां बड़े-से-बड़े पापी के चेहरे पर भी रोशनी है। इसलिए तो यह संभव होता है कि पापी चाहे तो संत हो जाये, संत चाहे तो पापी हो जाये। इतनी आसानी से बदलाहट इसीलिए तो संभव है कि दोनों छिपे हैं एक में ही।

अंधेरा और उजाला अलग-अलग नहीं है; रात और दिन जुड़े हैं। तर्क तोड़ता है और साफ रास्ते बनाता है। तर्क ऐसे है जैसे तुमने एक छोटा-सा बगीचा बना लिया हो साफ-सुथरा, कटा-पिटा। जीवन जंगल की तरह है। वहां कुछ साफ-सुथरा नहीं है। वहां सब चीजें एक दूसरे से उलझी हैं।

जो जीवन को समझने चला है, उसे साफ कट-कटाये उत्तरों से बचने की क्षमता चाहिए। उनको पकड़ लेने में सुरक्षा है; क्योंकि तुम्हें आश्वासन हो जाता है कि ठीक मुझे पता है। जैसे ही तुम्हें लगता है कि मुझे पता है, तुम्हारी हिम्मत आ जाती है, जिंदगी में चलने में भरोसा आ जाता है। इसलिए, तुम डरते हो ज्ञान छोड़ने से। इसलिए बड़ी पीड़ा होती है। तुमसे कोई धन छीन ले, इतनी मुसीबत नहीं, फिर कमा लेंगे। और धन तो मिट्टी थी—तुम जानते ही थे। तुमसे कोई पद छीन ले, कोई बड़ी चिंता की बात नहीं; तुम खुद भी त्याग सकते हो। लेकिन ज्ञान...!

इधर मैं देखता हूं, एक अनूठी घटना घटती है। एक आदमी समाज छोड़ देता है, गांव छोड़ देता है, घर छोड़ देता है, पत्नी-परिवार छोड़ देता है; लेकिन अगर वह जैन था तो हिमालय पर भी जैन रहता है; हिंदू था तो हिंदू रहता है; मुसलमान था तो मुसलमान रहता है। जिस समाज को यह छोड़कर भाग आया, उसी ने यह मुसलमान होना दिया था; उसी ने यह ज्ञान दिया था कि तुम मुसलमान हो; यह कुरान सच्ची किताब है, सब किताबें बाकी गलत हैं। सबको छोड़ आया, लेकिन ज्ञान को बचाकर आ जाता है हिमालय पर भी। कुछ भी नहीं बदला, इस आदमी की जिंदगी में; क्योंकि ज्ञान का भरोसा इसे यहां भी है।

ज्ञान तुम छोड़ दो, तो जहां तुम खड़े हो, वहीं हिमालय आ जाएगा। हिमालय का अर्थ ही इतना है कि जहां सब रहस्यपूर्ण है; जहां उत्तुंग शिखर हैं, जिन्हें तुम छू न सकोगे और जहां अनंत खाइयां हैं, जिनमें तुम उतर न सकोगे; जो हमारे सभी पैमानों से बड़ा है।

विस्मय का अर्थ है : जहां तुम्हारी बुद्धि व्यर्थ हो जाती है; जहां तुम्हारा अहंकार असमर्थ हो जाता है; जहां तुम एकदम असहाय हो जाते हो; तुम रो सकते हो वहां, हंस सकते हो वहां, लेकिन बोल नहीं सकते।

कहा जाता है कि मूसा जब सिनाई के पर्वत पर गये तो रोये भी, हंसे भी, पर बोले नहीं। पीछे जब लौटकर उनके शिष्यों ने पूछा कि यह क्या हुआ, परमात्मा सामने मौजूद था और परमात्मा ने खुद कहा, 'मोजिज ! जूते बाहर उतारकर आ; क्योंकि यह पवित्र भूमि है। यहां मैं मौजूद हूं।' तो तुमने जूते उतारे। तुम रोये भी, हंसे भी, तुम बोले, क्यों नहीं ? यह मौका क्यों छोड़ दिया ? जो भी पूछने जैसा था, पूछ लेना था। एक कुंजी तो मांग लेनी थी, जिससे सभी ताले खुल जाते हैं।

मोजिज ने कहा, 'जब वह सामने था, तब बुद्धि खो गयी; तब हृदय ही बचा। खुशी

में रोया भी, खुशी में हंसा भी।'

और, यह मजा है जिंदगी का कि खुशी में तुम रो भी सकते हो, खुशी में तुम हंस भी सकते हो। इसलिए यह मत सोचना कि जो रोता है, वह दुख में ही रोता है—वह तर्क का हिसाब है। जिंदगी तर्क को मानती नहीं, सब तर्क की सीमाओं को तोड़कर जिंदगी की नदी बाढ़ की तरह बहती है। आदमी खुशी में भी रो सकता है। तब उसके आंसुओं का गुणधर्म बदल जाता है। तब उसके आंसुओं में आनंद की झलक होती है। हंस भी सकता है। ये विपरीत एक को ही प्रगट करनेवाले बन सकते हैं। यही जीवन का रहस्य है।

तो मोजिज ने कहा, 'हृदय ही बचा, मेरी तो बुद्धि खो गयी। जहां मैंने जूते छोड़े, लगता है, वहीं संस्कार भी छूट गया।' और मंदिर के बाहर जूते ही मत छोड़ना, सिर भी वहीं रख आना। जूतों के साथ जो सिर को रख आयेगा, मंदिर के बाहर, वही मंदिर में प्रविष्ट होता है। और, जूते और सिर का बड़ा जोड़ है। इसलिए जिससे कभी तुम गुस्से मे आ जाते हो तो तुम जूते उसके सिर पर मारते हो। साधु अपना ही जूता अपने सिर में मार लेता है।

ये दो छोर हैं। ये दो अतियां है। एक तरफ जूते हैं, एक तरफ सिर है, दोनों के मध्य में तुम हो। और वह जो मध्यबिंदु है तुम्हारा, वहां सभी विपरीत मिल रहे हैं। वहां तुम्हारे पैर और वहां तुम्हारा सिर मिल रहा है—वहीं हृदय है।

जो मोजिज ने कहा, 'रोया, हंसा; क्योंकि विस्मय से भर गया, अवाक रह गया।' मोजिज ने कहा है कि अब सो न सकूंगा; अब जो देखा है, उसे अनदेखा न कर सकूंगा; अब जो हो गया, अब उसका मिटना नहीं हो सकता। वह जो मोजिज पहले था, अब बचा नहीं। अब मैं दूसरा ही आदमी हूं।

यह एक नया जन्म है। इसको हिंदू 'द्विज' कहते हैं—जब कोई आदमी का ऐसा दूसरा जन्म हो जाये! सभी ब्राह्मण द्विज नहीं हैं। कभी-कभी कोई ब्राह्मण द्विज हो पाता है। द्विज का मतलब है—दुबारा जिसका जन्म हो, द्विज शब्द का मतलब जनेऊ पहन लेने से नहीं है। द्विज का मतलब है : दुबारा जिसका जन्म हो। मोजिज ने कहा है कि अब मैं द्विज हूं, ट्वाइसबार्न हूं। अब मैं दूसरा आदमी हूं; वह आदमी मर गया।

विस्मय से अगर तुम गुजरोगे तो तुम्हारा पुराना मर जाएगा और नये का जन्म होगा। और अगर तुम विस्मय में ठहर गये, तो प्रतिपल नया जन्मता है और पुराना नष्ट होता है; प्रतिपल पुराना जाता है और नया आता है। और तुम्हारी धारा शाश्वत है। फिर तुम

कभी जरा-जीर्ण न होओगे; फिर तुम्हें शाश्वत जीवन की स्फुरणा मिल गयी।

इसलिए, शिव कहते हैं; विस्मय योग की भूमिका है। दूसरा सूत्र है : स्वपदम् शक्ति—स्व में स्थिति शक्ति है। विस्मय भूमिका है। विस्मय का अर्थ है : भीतर की तरफ यात्रा; मैं कौन हूं—इस प्रश्न की अंतर्खोज। बाहर गये—आश्चर्य; बाहर गये—तर्क; बाहर गये—विज्ञान। भीतर आये—विस्मय, ध्यान, प्रार्थना; सारी विधि बदल जाती है। विस्मय तुम्हें भीतर लाएगा। क्योंकि जब सारा जगत रहस्यपूर्ण मालूम पड़ेगा, तब एक ही प्रश्न महत्वपूर्ण रह जाएगा कि मैं कौन हूं। यह विस्मय का मौलिक आधार है कि 'मैं कौन हूं'। जब तक मैं इस 'मैं' को ही न जान लूं, तब तक मैं जिसे जानने चला हूं, वह यात्रा हो नहीं सकती। कैसे मैं जानूंगा इन वृक्षों को, कैसे जानूंगा मैं तुम्हें, कैसे जानूंगा 'पर' को, जब मैं ही अभी अज्ञात और अज्ञान में हूं; जब मुझे मेरा ही पता नहीं।

इसलिए, 'मैं कौन हूं'—यह महामंत्र है। और जल्दी उत्तर मत देना; क्योंकि तुम्हारे पास उत्तर तैयार है। तो, 'मैं कौन हूं—तुम भीतर से कहते हो, मैं आत्मा हूं। यह उत्तर काम न आयेगा। यह तो तुम्हें पता ही है। इससे तुम्हारी जिंदगी बदली नहीं। ज्ञान आग है; वह तुम्हें जला देगा। जब तुम कहते हो—'मैं कौन हूं', और भीतर से आवाज आती है, वह भीतर की आवाज नहीं है। वह तुम्हारा सिर बोल रहा है; सिर में छिपे शास्त्र बोल रहे हैं; स्मृति बोल रही है। जब तुम कहते हो कि मैं आत्मा हूं तो यह दो कौड़ी का है; इसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि इससे तुम बदले नहीं; यह आग नहीं है, यह राख है। इसमें कभी अंगारा रहा होगा—किसी ऋषि को इसमें अंगारा रहा होगा—तुम्हारे लिए तो यह सिर्फ राख है। जिसके लिये अंगारा रहा, वह तो खो गया इस जगत से, अब तुम सिर्फ राख को ढो रहे हो।

'मैं कौन हूं'—इसको तुम पूछते जाना और उधार उत्तर मत देना। जब भी उधार उत्तर आये, कहना कि यह मेरा उत्तर नहीं, मैंने जाना नहीं, मेरा कैसे हो सकता है! जो मैं जानता हूं, वही केवल मेरा हो सकता है। जो तुम उपलब्ध करोगे अपने श्रम से, वही केवल तुम्हारी संपदा है। ज्ञान में चोरी नहीं चल सकती और न ज्ञान में भिखमंगापन चलता है। न तुम भीख मांग सकते हो, न तुम चोरी कर सकते हो। यहां डकैती नहीं चल सकती। हां तो तुम्हें स्व-श्रम से ही स्वयं को निर्मित करना होगा।

दूसरा सूत्र है : स्व में स्थिति शक्ति है। जैसे ही विस्मय पैदा हो, भीतर की तरफ चलना, डूबना और स्व में स्थित हो जाने की चेष्टा करना। क्योंकि जब तुम पूछते

हो—'मैं कौन हूं', तो कब तुम्हें उत्तर मिलेगा। अगर इसका उत्तर तुम्हें चाहिए तो भीतर स्व में ठहरना पड़ेगा। उसको ही हमने स्वास्थ्य कहा है—स्वयं में ठहर जाना। और, जब कोई व्यक्ति स्वयं में ठहर जायेगा, तभी तो देख पाएगा; दौड़ते हुए तुम कैसे देख पाओगे ?

तुम्हारी हालत ऐसी है कि तुम एक तेज रफ्तार की कार में जा रहे हो। एक फूल तुम्हें खिड़की से दिखायी पड़ता है। तुम पूछ भी नहीं पाते कि यह क्या है कि तुम आगे निकल गये। तुम्हारी रफ्तार तेज है और वासना से तेज रफ्तार दुनिया में किसी और यान की नहीं। चांद पर पहुंचना हो, राकेट भी वक्त लेता है; तुम्हारी वासना को इतना भी वक्त नहीं लगता, इसी क्षण तुम पहुंच जाते हो। वासना तेज से तेज गति है। और, जो वासना से भरा है, उसका अर्थ है कि वह गहरा हुआ नहीं है; भाग रहा है, दौड़ रहा है। और, तुम इतनी दौड़ में हो कि तुम पूछो भी कि 'मैं कौन हूं', तो उत्तर कैसे आयेगा ?

यह दौड़ छोड़नी होगी। स्व में स्थित होना होगा। थोड़ी देर के लिए सारी वासना, सारी दौड़, सारी यात्रा बंद कर देनी होगी। लेकिन, एक वासना समाप्त नहीं हो पाती कि तुम पच्चीस को जन्म दे लेते हो; एक यात्रा पूरी नहीं हो पाती कि पच्चीस नये रास्ते खुल जाते हैं और तुम फिर दौड़ने लगते हो। तुम्हें बैठना आता ही नहीं। तुम रुके ही नहीं हो जन्मों से।

मैंने सुना है कि एक सम्राट ने एक बहुत बुद्धिमान आदमी को वजीर रखा। लेकिन वजीर बेईमान था और उसने जल्दी ही साम्राज्य के खजाने से लाखों-करोड़ों रुपये उड़ा दिये। जिस दिन सम्राट को पता चला, उसने वजीर को बुलाया और उसने कहा कि मुझे कहना नहीं है। जो तुमने किया है, वह ठीक नहीं और ज्यादा मैं कुछ कहूंगा नहीं। तुमने भरोसे को तोड़ा है। बस, इतना ही कहता हूं कि अब तुम मुंह मुझे मत दिखाओ। इस राज्य को छोड़कर चले जाओ। और, व्यर्थ की बातचीत इसमें न फैले, इसलिए किसी को भी इस संबंध में कुछ न कहूंगा। तुम्हें भी कोई किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं।

वजीर ने कहा, 'सुनें; कहेंगे, चला जाऊंगा। यह पक्की है बात कि मैंने करोड़ों रुपये चुराये हैं। लेकिन, फिर भी एक सलाह वजीर होने के नाते मैं आपको देता हूं। और वह यह कि अब मेरे पास सब कुछ है। बड़ा महल है, पहाड़ पर बंगले हैं, समुद्र के किनारे बंगले हैं—सब कुछ मेरें पास है। पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों तक अब मुझे कुछ कमाने की जरूरत नहीं। आप मुझे अलग करके दूसरे आदमी को वजीर रखेंगे, उसको फिर अ,

ब, स से शुरू करना पड़ेगा। सम्राट बुद्धिमान था, उसकी बात समझ में आ गयी।

ऐसा क्षण तुम्हारे जीवन में कभी नहीं आता, जब तुम कह सको कि अब सब मेरे पास है। जिस दिन यह क्षण आ जायेगा, उसी दिन दौड़ बंद होगी। अन्यथा तुम हर घड़ी अ, ब, स से शुरू कर रहे हो। हर घड़ी नयी वासना पकड़ लेती है, नया चोर आ जाता है, नया लुटेरा खजाना तोड़ने लगता है। और एकाध लुटेरा हो तो ऐसा भी नहीं; बहुत वासनाएं हैं। तुम एक साथ बहुत दिशाओं में दौड़ रहे हो। तुम एक साथ बहुत-सी चीजों को पाने की कोशिश कर रहे हो। तुमने कभी बैठकर यह भी नहीं सोचा कि उसमें से कई चीजें तो विपरीत हैं, उनको तुम पा ही नहीं सकते; क्योंकि एक तुम पाओगे तो दूसरी खोयेगी; दूसरी को पाओगे तो पहली खो जायेगी।

मुल्ला नसरुद्दीन मरता था तो उसने अपने बेटे को कहा कि अब मैं तुझे दो बातें समझा देता हूं। मरने के पहले ही तुझे कह जाता हूं, इन्हें ध्यान में रखना। दो बाते हैं। एक—आनेस्टी (ईमानदारी) और दूसरी है—विजडम (बुद्धिमानी)। तो, दुकान तू सम्हालेगा, काम तू सम्हालेगा। दुकान पर तखती लगी है—आनेस्टी इज द बैस्ट पालिसी। (ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है।) इसका तू पालन करना। कभी किसी को धोखा मत देना। कभी वचन भंग मत करना। जो वचन दो, उसे पूरा करना।

बेटे ने कहा, 'ठीक, दूसरा क्या है ? बुद्धिमानी, उसका क्या अर्थ है ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'भूलकर कभी किसी को वचन मत देना।'

बस, ऐसा ही विपरीत बंटा हुआ जीवन है। ईमानदारी भी और बुद्धिमानी भी, दोनों संभालने की कोशिश है। वचन पूरा करना ईमानदारी का लक्ष्य है। वचन कभी न देना बुद्धिमानी का लक्ष्य है। इधर तुम चाहते हो कि लोग तुम्हें संत की तरह पूजें और उधर तुम चाहते हो कि तुम पापी की तरह मजे भी लूटो। बड़ी कठिनाई है। इधर तुम चाहते हो कि राम की तरह तुम्हारे चरित्र का गुणगान हो; लेकिन उधर तुम रावण की तरह दूसरे की स्त्री को भगाने में तत्पर हो। तुम असंभव संभव करना चाहते हो। तुम होना तो रावण जैसा चाहते हो; प्रतिष्ठा राम जैसी चाहते हो। बस, तब तुम मुश्किल में पड़ जाते हो। तब विपरीत दिशाओं में तुम्हारी यात्रा चलती है और अनंत तुम लक्ष्य बना लेते हो। उन सब में तुम बंट जाते हो। टुकड़े-टुकड़े हो जाते हो। जीवन के आखिर में तुम पाओगे जो भी तुम लेकर आये थे, वह खो गया।

एक बहुत बड़ा जुआरी हुआ। बहुत समझाया पत्नी ने, परिवार ने, मित्रों ने; लेकिन उसने सुना नहीं, धीरे-धीरे सब खो गया। एक दिन ऐसी हालत आ गयी कि सिर्फ एक

रुपया घर में बचा। पत्नी ने कहा, 'अब तो चौंको। अब तो सम्हलो।' पति ने कहा, 'जब इतना सब चला गया है और एक रुपया ही बचा है तो आखिरी मौका मुझे और दे। कौन जाने, एक रुपये से भाग्य खुल जाए।' जुआरी सदा ऐसा ही सोचता है। और फिर उसने कहा कि ज़ब लाखों चले गये, अब एक ही बचा तो अब एक के लिए क्या रोना-धोना। और एक रुपया चला ही जायेगा, कोई बचनेवाला नहीं है। लगा लेने दे दावं पर उसे भी।

पत्नी ने भी सोचा कि अब जब सब ही चला गया, एक ही बचा है और एक कोई टिकनेवाला वैसे भी क्या है; सांझ के पहले खत्म हों जायेगा। तो ठीक है, तू अपनी आखिरी इच्छा भी पूरी कर।

जुआरी गया जुए के अड्डे पर। बड़ा चकित हुआ। हर बाजी जीतने लगा। एक के हजार हुये, हजार के दस हजार हुये, दस हजार के पचास हजार हुये, पचास हजार के लाख हो गये; क्योंकि वह इकट्ठे ही दांव पर लगाता गया। फिर उसने लाख भी लगा दिये और कहा कि बस, अब आखिरी हल हो गया सब। और वह सब हार गया। वह घर लौटा। पत्नी ने पूछा, 'क्या हुआ ?' उसने कहा कि एक रुपया भी चल गया।

क्योंकि तुम वही खो सकते हो, जो तुम लेकर आये थे। लाख की क्या बात करनी ! उसने कहा, 'एक रुपया खो गया, कोई चिंता की बात नहीं। वह दांव खराब गया।' पर उसने यह बात न कही कि लाख हो गये थे। ठीक ही किया; क्योंकि, जो तुम्हारे नहीं थे, उनके खोने का सवाल भी क्या है ! मरते वक्त तुम पाओगे कि जो आत्मा तुम लेकर आये थे, वह तुम गंवाकर जा रहे हो। बस, एक खो जायेगा ! बाकी तुमने जो गंवाया, जोड़ा, मिटाया, बनाया, उसका कोई बड़ा हिसाब नहीं है; अंतिम हिसाब में उसका कोई मूल्य नहीं। तुमने लाखों जीते हों तो भी मौत के वक्त तो वे सब छूट जायेंगे; हिसाब एक का रह जायेगा। वह एक तुम हो। और अगर तुम उस एक में ठहर गये तो तुम जीत गये। अगर तुम उस एक में आ गये, रम गये; उसके लिए शिव कह रहे हैं : स्व में स्थिति शक्ति है।

तुम दुर्बल हो, दीन हो, दुखी हो—इसका कारण यह नहीं कि तुम्हारे पास रुपये कम हैं, मकान नहीं है, धन नहीं है, धन-दौलत नहीं है। तुम दीन हो, दुखी हो; क्योंकि, तुम स्वयं में नहीं हो। स्वयं में होना ऊर्जा का स्रोत है। वहां ठहरते ही व्यक्ति महाऊर्जा से भर जाता है।

जीसस से किसी ने पूछा कि मैं क्या करूं; मैं बहुत दीन हूं, मैं गरीब हूं, दुखी हूं।

जीसस ने कहा कि तू कुछ और मत कर; पहले परमात्मा के राज्य को खोज ले, शेष सब

अपने-आप पीछे चला आयेगा। एक को खोज लेने से शेष सब पीछे चला आता है। और, एक को गंवा देने से, सब गंवा दिया जाता है। वह एक तुम हो और वही तुम्हारी संपदा है; क्योंकि उसी को लेकर तुम आये हो। और आखिरी हिसाब में यही पूछा जायेगा कि जो तुम लेकर आये थे, उसे बचा सके या उसको भी गंवा दिया।

स्व में स्थिति शक्ति है—स्वपदम् शक्ति। अपने में ठहर जाना महाशक्तिवान हो जाना है। महाशक्तिवान तो तुम हो; लेकिन तुम ऐसे हो जैसे किसी बाल्टी में हजार छेद हों और कोई कुएं से पानी भर रहा हो। पानी भरता हुआ दिखायी पड़ता है हर बार; क्योंकि जब तक बाल्टी पानी में डूबी रहती है बिलकुल भरी रहती है। जैसे ही बाल्टी पानी से ऊपर उठती है, तुम खींचना शुरू करत्ते हो कि हजार मार्गों से पानी गिरना शुरू हो जाता है। जब तक बाल्टी ऊपर आती है, तब तक तो उसमें कुछ भी नहीं बचता।

हजार वासनाएं तुम्हारे हजार छेद हैं। उनसे तुम्हारी ऊर्जा खोती है। जब तक तुम सपना देखते हो, तब तक बाल्टी भरी है; जब तक तुम कामना करते हो, तब तक बाल्टी भरी है। जैसे ही कामना को कृत्य में लाते हो; जैसे ही खींचना शुरू करते हो कुएं से बाल्टी को; जैसे ही सपने को सत्य बनाने की कोशिश करते हो, वैसे ही ऊर्जा खोनी शुरू हो जाती है। हाथ आते तक बाल्टी हाथ आ जाती है, हजार छेद हाथ में आ जाते हैं; पानी की एक बूंद नहीं आती, प्यास उतनी की उतनी रह जाती है। हर बार जब खींचते हो, बड़ा शोरगुल मचता है कुएं में और लगता है कि पानी चला आ रहा है, तूफान आ रहा है; हाथ कुछ भी नहीं आता। हर बार तुम खाली हाथ लौटते हो; लेकिन, वासना बड़ी अदभुत है।

एक मछलीमार को कोई राहगीर पूछता था कि कितनी मछलियां पकड़ीं। सांझ होने के करीब थी, सुबह से बैठा था बंसी को डाले। यह राहगीर कई बार वहां से निकला और देख गया था। आखिर उससे न रहा गया। उसने पूछा, 'कितनी पकड़ी हैं?' उस मछलीमार ने कहा कि जिस एक को पकड़ने की अभी मैं कोशिश कर रहा हूं, एक यह और अगर दो और, तो तीन होंगी। अभी पकड़ी एक भी नहीं है—जिसको पकड़ रहा हूं, यह एक और दो और, तो तीन होंगी।

तुम हमेशा इस मछलीमार की हालत में हो—जिसको पकड़ रहे हो, यह एक और दो अभी सपने में हैं। और यह भी अभी सत्य नहीं हुई है। हिसाब तीन का है और तुम बड़े प्रसन्न हो रहे हो। जब भी बाल्टी हाथ में आती है, तुम पाते हो, फिर खाली आ

गयी। और ध्यान रहे, जितनी बार तुम डालते हो कुएं में, छेद उतने बड़े होते जाते हैं। इसलिए बच्चे प्रसन्न मालूम होते हैं। बूढ़े बिलकुल उदास मालूम होते हैं; उनकी बाल्टी छेद-ही-छेद हो गयी। कितनी बार डाल चुके कितनी बार निकाल चुके —सब छेद बड़े हो गये। लेकिन, फिर भी पुरानी आशा मरती नहीं—कभी तो भरी हुई आ जायेगी; क्योंकि भरी हुई दिखायी पड़ती है ! फिर पानी गिरता हुआ भी दिखायी पड़ता है। शक्ति तो तुम्हारे पास है परमात्मा की; लेकिन मन तुम्हारे पास छेदवाली बाल्टी की तरह है।

'स्वपदम् शक्ति' का अर्थ है कि अब तुम वासनाओं में न दौड़ोगे। एक वासना गिरी कि एक छेद बंद हुआ। वासनाएं गिर गयीं, सारे छेद खो गये। और तब तुम्हें किसी और कुएं में बाल्टी डालने की जरूरत नहीं, तुम खुद ही कुआं हो। बड़ी है ऊर्जा तुम्हारे पास ! सिर्फ तुम्हारी व्यर्थ खोती शक्ति बच जाये तो तुम महाऊर्जा लेकर पैदा हुए हो। तुम्हें कुछ पाना नहीं है; जो भी पाने योग्य है, वह तुम्हारे पास है; सिर्फ उसे खोने से बचना है। परमात्मा को पाने का सवाल नहीं है, सिर्फ खोने से बचना है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है। कैसे तुम खो देते हो, यही बड़ी-से-बड़ी रहस्य की घटना है जगत में।

तीसरा सूत्र है : वितर्क अर्थात विवेक से आत्मज्ञान होता है। एक-एक सूत्र कुंजी की तरह है। पहला—विस्मय, विस्मय मोड़ेगा स्वयं की तरफ; दूसरा—स्वयं में ठहरना, ताकि तुम महाऊर्जा को उपलब्ध हो जाओ। लेकिन, कैसे तुम स्वयं में ठहरोगे, उसकी कुंजी तीसरे सूत्र में है—विवेक, वितर्क आत्मज्ञानम्।

यह 'वितर्क' शब्द समझ लेने जैसा है। तर्क तो हम जानते हैं। तर्क विज्ञान के हाथ है। वह आश्चर्य को काटने की तलवार है। तर्क काटता है, विश्लेषण करता है। तर्क बाहर जाता है, वितर्क भीतर जाता है। वह काटता नहीं, जोड़ता है। तर्क विश्लेषण है—एनालिसिस; वितर्क संश्लेषण है—सिंथीसिस।

फरीद हुआ एक फकीर। एक भक्त उसके पास एक सोने की कैंची ले आया; बड़ी बहूमूल्य थी, हीरे-जवाहरात लगे थे। और उसने कहा कि मेरे परिवार में चली आ रही है सदियों से। करोड़ों का दाम है इसका। मैं इसका क्या करूं ? आपके चरणों में रख जाता हूं।

फरीद ने कहा, 'तू इसे वापस ले जा। अगर तुझे कुछ भेंट ही करना हो तो एक सुई-डोरा ले आना। क्योंकि हम तोड़नेवाले नहीं, जोड़नेवाले हैं। कैंची काटती है। अगर भेंट ही करना हो, तो एक सुई-डोरा ले आना।'

तर्क कैंची की तरह है, काटता है। हिंदुओं में गणेश तर्क के देवता हैं, इसलिए चूहे

पर बैठे हैं। चूहा यानी कैंची। वह काटता है। चूहा जीवित कैंची है। वह काटता ही रहता है। गणेश उस पर बैठे हैं। वे तर्क के देवता हैं। और हिंदुओं ने खूब मजाक किया गणेश का। उन्हें देखकर अगर तुम्हें हंसी न आये तो हैरानी की बात है। आती नहीं है तुम्हें; क्योंकि तुम उनसे भी आश्वस्त हो गये हो कि वे ऐसे हैं। अन्यथा वे हंसी-योग्य हैं।

गणेश के शरीर को ठीक से देखो तो सब ढंग से बेढंगा है। सिर भी अपना नहीं है, वह भी उधार है। तार्किक के पास सिर उधार होता है। बहुत बड़ा है, हाथी का है; लेकिन अपना नहीं है। उधार सिर हाथी का भी हो तो भी किसी का नहीं; काम वह सिर्फ कुरूप करेगा। भारी-भरकम शरीर है। चूहे पर सवार है। यह भारी-भरकम शरीर देखने का ही है। सवारी तो चूहे की है। कितना ही बड़ा पंडित हो, लेकिन सवारी चूहे की ही है—वह कैंची, तर्क! फरीद ने ठीक कहा कि अगर भेंट ही करनी ही तो एक सुई -धागा दे जाना; क्योंकि हम जोड़ते हैं।

वितर्क जोड़ने की कला है। वितर्क शब्द का अर्थ होता है—विशेष तर्क। साधारण तर्क तोड़ता है; विशेष तर्क जोड़ता है। बुद्ध, महावीर, शिव, लाओत्से—वे भी तर्क करते हैं, लेकिन उनका तर्क वितर्क है।

एक और तर्क है, जिसको हम कुतर्क कहते हैं। तीन तरह की संभावनाएं हैं। तर्क तोड़ता है, विश्लेषण करता है; लेकिन लक्ष्य उसका बुरा नहीं है; आश्चर्य को हल करना है। उसे तोड़ने में रस नहीं है। तोड़ना प्रक्रिया है; लक्ष्य तो किसी सिद्धांत की उपलब्धि है, जिससे कि आश्चर्य समाप्त हो जाए, चीजें साफ-सुथरी हो जायें। लक्ष्य सृजनात्मक है तर्क का।

लेकिन, जब तर्क का कोई लक्ष्य ही नहीं होता और सिर्फ तोड़ना ही लक्ष्य हो जाता है; जब मजा मारने में ही आने लगता है, तब हम उसे कुतर्क कहते हैं। तर्क पागल हो जाए तो कुतर्क हो जाता है। एक विक्षिप्त अवस्था है तर्क की, तब वह पागल हो जाता है; तब वह तोड़ने में लग जाता है; तब कोई और लक्ष्य नहीं रह जाता, नष्ट करना ही रसपूर्ण हो जाता है।

वितर्क, तर्क की अंतर्यात्रा है। तुम यहां तक आये हो, घर से चलकर, तो नजर, तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारी दिशा, इस तरफ रही है—मेरी तरफ रही है। पीठ घर की तरफ हो गयी थी। यहां से जब तुम लौटोगे घर की तरफ, रास्ता वही होगा। रास्ते में क्या फर्क पड़ना है, रास्ता वही होगा; सिर्फ दिशा बदल जायेगी—पीठ मेरी तरफ होगी, मुंह घर की तरफ होगा।

तर्क और वितर्क में रास्ता तो वही है; इसलिए उसको वितर्क कहते हैं—विशेष तर्क। रास्ता तो वही है, लेकिन दिशा बदल गयी। पहले तर्क दूसरे की तरफ जा रहा था—पदार्थ की तरफ; अब अपनी तरफ आ रहा है—घर की तरफ। और दिशा बदलने से सारा-का-सारा गुणधर्म बदल जाता है। दूसरे की तरफ जाता था, तो तोड़कर ही जाना जा सकता था; क्योंकि दूसरे में प्रवेश करना हो तो तोड़कर ही प्रवेश हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है।

अगर तुम मेडीकल कालेज में जाओ तो वहां तुम विद्यार्थियों को काटते हुए पाओगे—मेंढक को काट रहे हैं; क्योंकि उसके भीतर जानना है। और तो कोई उपाय भी नहीं। मेंढक को काटकर ही भीतर जाना सकता है। लेकिन खुद के भीतर जाना हो तो काटने की कोई भी जरूरत नहीं; क्योंकि तुम भीतर मौजूद ही हो। दूसरे को जानना हो तो तोड़कर जानना पड़ेगा, मारकर जानना पड़ेगा; क्योंकि उसके भीतर प्रवेश का और कोई रास्ता नहीं है। स्वयं को जानना हो तो तोड़ने और मारने का कोई सवाल नहीं; वहां तो तुम मौजूद ही हो। स्वयं को जानना हो तो सिर्फ आंख बंद कर लेनी काफी है। आंख बंद करने का नाम ध्यान है। बाहर से ध्यान हट जाये, भीतर चलने लगे तो तर्क, वितर्क हो जाता है।

वितर्क का ही दूसरा नाम विवेक है—होश, अवेयरनेस। और यह विवेक या वितर्क संश्लेषण की प्रक्रिया है। जैसे-जैसे तुम भीतर आते हो, वैसे-वैसे तुम इकट्ठे होते जाते हो, ऐसा समझो कि एक वर्तुल है, बड़ी उसकी परिधि है। वर्तुल के मध्य में उसका केंद्र हैं। अगर तुम परिधि पर दो बिंदु बनाओ तो दूर होंगे, फिर दो बिंदुओं से तुम दो रेखाएं खींचना शुरू करो केंद्र की तरफ, तो जैसे-जैसे दोनों रेखाएं केंद्र के करीब आयेंगी, वैसे-वैसे पास आने लगेंगी — और पास, और पास। और जब केंद्र पर दोनों आ जायेंगी तो एक ही रेखा रह जायेगी, दो नहीं; केंद्र पर मिल जायेंगी। अगर इन्हीं दो रेखाओं को तुम परिधि के बाहर फैलाते चले जाओ तो ये दूर होती जायेंगी—और दूर, और दूर, और दूर। अनंत आकाश में, इनकी अनंत दूरी हो जायेगी।

तुम्हारे भीतर से जब तुम बाहर की तरफ जाते हो तो चीजें एक दूसरे से दूर होती जाती हैं, फासला बढ़ता जाता है। इसलिए हजार तरह के विज्ञान पैदा हो गये हैं, होंगे ही; क्योंकि फासला बड़ा होता जाता है। रोज नये विज्ञान पैदा हो रहे हैं; क्योंकि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, और फासला हो जाता है। अब वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं; क्योंकि वे कहते हैं कि एक विज्ञान की भाषा दूसरे की समझ में नहीं आती। और

अब ऐसा एक भी आदमी पृथ्वी पर नहीं जो सभी विज्ञान को समझता है; जो सभी के बीच कोई संश्लेषण कर ले। ऐसे तो बहुत कठिन हो गया मामला।

एक ही विज्ञान को जानना असंभव जैसा है, तो दुनिया में ज्ञान बहुत है, लेकिन संश्लेषण बिलकुल खो गया है। और, धर्म एक है, उनके नाम कितने ही अलग हों; क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर की तरफ आता है, फासला कम होने लगता है। केंद्र पर सब चीजें जुड़ जाती हैं। केंद्र परम संश्लेषण है—अल्टीमेट सिंथीसिस।

वितर्क अर्थात विवेक से आत्मज्ञान होता है। तोड़ो मत ! बाहर मत जाओ ! दूसरे पर ध्यान मत रखो ! भीतर ध्यान लाओ ! जोड़ो ! धीरे-धीरे सरकते आओ केंद्र की तरफ; उस जगह पहुंच जाओ, जहां तुम्हारे प्राणों का मध्यबिंदु है। वहां ठहर जाओ; महाऊर्जा उत्पन्न होगी। वह जो हम प्रकाश देखते हैं—बुद्ध और महावीर में; वह जो हम आनंद देखते हैं—कृष्ण में, मीरा में, चैतन्य में—वह किस बात का आनंद है ? वह रोशनी किस बात की खबर है ? वे उस जगह पहुंच गये, जो अनंत ऊर्जा का स्रोत है। अब वे दरिद्र नहीं हैं। अब वे दीन नहीं हैं। अब वे किसी से मांग नहीं रहे हैं। अब वे सम्राट हो गये हैं। उनका सम्राट होना तुम्हारी भी संभावना है। लेकिन, एक-एक कदम उठाना जरूरी है।

विस्मय—स्व में स्थिति की धारणा, वितर्क से स्वयं तक पहुंचने का उपाय, और चौथा सूत्र है—लोकानंदः समाधिसुखम्—अस्तित्व का आनंद भोगना समाधि-सुख है। और, जब तुम स्वयं में पहुंच गये, ठहर गये तो तुम अस्तित्व की गहनतम स्थिति में आ गये। वहां सघनतम अस्तित्व है; क्योंकि वहीं से सब पैदा हो रहा है। तुम्हारा केंद्र तुम्हारा ही केंद्र नहीं है, सारे लोक का केंद्र है।

हम परिधि पर ही अलग-अलग हैं। मैं और तू का फासला शरीरों का फासला है। जैसे ही हम शरीर को छोड़ते और भीतर हटते हैं, वैसे-वैसे फासले कम होने लगते हैं। जिस दिन तुम आत्मा को जानोगे, उसी दिन तुमने परमात्मा को भी जान लिया। जिस दिन तुमने अपनी आत्मा जानी उसी दिन तुमने समस्त की आत्मा जान ली; क्योंकि वहां केंद्र पर कोई फासला नहीं। परिधि पर हममें भेद हैं। वहां भिन्नताएं हैं। केंद्र में हममें कोई भेद नहीं। वहां हम सब एक अस्तित्वरूप हैं।

शिव कहते हैं : उस अस्तित्व को स्वयं में पाकर समाधि का सुख उपलब्ध होता है।

समाधिसुखम्—इस शब्द को समझ लेना जरूरी है। तुमने बहुत-से सुख जाने हैं—कभी भोजन का सुख, कभी स्वास्थ्य का सुख, कभी प्यास लगी तो जल से तृप्ति

का सुख, कभी शरीर-भोग का सुख, संभोग का सुख—तुमने बहुत सुख जाने हैं। लेकिन, इन सुखों के संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है और वह यह कि इन सुखों के साथ दुख जुड़ा हुआ है। अगर तुम्हें प्यास न लगे, तो पानी पीने की तृप्ति भी न होगी। प्यास की पीड़ा को तुम झेलने को राजी हो, तो पानी पीने का मजा तुम्हें आयेगा। दुख पहले है, और दुख लंबा है और सुख क्षणभर है; क्योंकि जैसे ही कंठ से पानी उतरा, तृप्ति हो गयी। फिर भूख, फिर प्यास ! भूख न लगे, भूख की पीड़ा न हो तो भोजन की कोई तृप्ति नहीं।

इसलिए, दुनिया में एक बड़ी दुर्घटना घटती है—जिनके पास भूख है, उनके पास भोजन नहीं; वे भोजन का मजा ले सकते थे; उन्हें भोजन में सुख आता, क्योंकि वे बड़ा दुख झेल रहे हैं भूख का। और जिनके पास भूख नहीं है, उनके पास भोजन है; वे भोजन का सुख ले नहीं पाते; भोजन से दुख ही मिलता उनको उलटा।

जब तक तुम्हें प्यास लगती है, तभी तक तुम्हें पानी की तृप्ति है। लेकिन तुम ऐसा जीवन जी सकते हो, जिसमें प्यास न लगे। धूप में मत जाओ, श्रम मत करो, आराम से घर में रहो—प्यास नहीं लगेगी। तब तुम सोचते हो, अब खूब मजे से पानी पियो और सुख भोगो तो तुम पाओगे कि अब पानी में कोई सुख नहीं। जिस आदमी ने दिनभर श्रम किया है, उसे ही रात सोने का सुख मिलेगा। अब यह बड़ी कठिन बात हो गयी। अगर रात सोने का सुख चाहिए तो दिन में मजदूर जैसी जिंदगी चाहिए। कठिनाई यह है कि दिन तो तुम चाहते हो एक अमीर सम्राट जैसा, और रात की नींद मजदूर जैसी—यह नहीं हो सकता।

बाहर के जगत में सुख और दुख जुड़े हैं। इसलिए जिस दिन तुम्हारे पास महल आ जायेगा, उसी दिन नींद खो जायेगी। जिस दिन तुम शैया का इंतजाम कर लोगे सुखद, उसी दिन तुम पाओगे कि करवट बदलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं। और देखो मजदूर को। वह सो रहा है वृक्ष के नीचे। कंकड़-पत्थरों का भी उसे पता नहीं है। मच्छर भी काट रहे हैं, उनका भी उसे कुछ पता नहीं है। गरमी है, पसीना बह रहा है—उसका भी उसे कुछ पता नहीं। यह सब गौण है। उसने दिनभर इतनी पीड़ा झेल ली है कि रात का सुख अर्जित कर लिया।

दुख की कीमत चुकानी पड़ती है सुख पाने के लिए, संसार में। यहां हर सुख के साथ दुख जुड़ा है। और आदमी यहीं ही एक मजबूरी में उलझा हुआ है। वह चाहता है कि सुख बचे और दुख कट जाये; पर यह नहीं हो सकता। यही हमने हजारों साल

से कोशिश की है कि दुख कट जाये और सुख बच जाये। हम जो कर रहे हैं कोशिश, वह संभव नहीं हो पाती। निश्चित ही दुख कट जाता है, लेकिन उतना ही सुख कट जाता है। दुख हम चाहते नहीं, सुख हम चाहते हैं; इसलिए बड़ी झंझट है।

समाधि-सुख का क्या अर्थ है : जिसके साथ दुख बिलकुल नहीं है। समाधि-सुख किसी प्यास की तृप्ति नहीं है। समाधि-सुख किसी भूख में लिया गया भोजन नहीं है। समाधि-सुख श्रम करके रात में ली गयी निद्रा का सुख नहीं है। समाधि-सुख के साथ दुख का कोई भी संबंध नहीं है। वही अंतर है सांसारिक सुख और आध्यात्मिक सुख में। समाधि-सुख सिर्फ होने का आनंद है। उसके साथ कोई तृषा, कोई तृष्णा, कोई दुख नहीं जुड़ा है। वह सिर्फ होने का आनंद है।

इसलिए शिव कह रहे हैं, लोकानंद : अस्तित्व का आनंद है। तुम हो—बस, इतनी ही बात आनंदपूर्ण है। इसमें कोई तृषा और पीड़ा और इस सबका कोई संबंध नहीं है। फिर ध्यान रहे कि आत्मा की न तो कोई प्यास है, न कोई भूख है। इसलिए वहां कोई भूख और प्यास और उनकी तृप्ति से होनेवाला कोई सुख तो हो नहीं सकता। सारी भूख-प्यास शरीर की है। इसलिए शरीर के सुख, दुख से जुड़े ही रहेंगे। जो आदमी भी शरीर के सुख लेना चाहता है, उसे दुखों की तैयारी रखनी चाहिए। और जितनी वह दुख की तैयारी रखेगा, उतने ही शरीर के सुख ले सकता है। आत्मा का सुख शुद्धतम सुख है; वहां दुख का कोई उपाय नहीं है। लेकिन, वह केंद्र पर घटता है; परिधि पर तो तुम शरीर हो।

शरीर परिधि है। वह तुम्हारा घेरा है घर का, वह तुम नहीं हो। वह तुम्हारा बाहरी वर्तुल है। केंद्र पर तुम आत्मा हो। वहां एक नये सुख का आविर्भाव होता है। वहां सुख सिर्फ होने का सुख है—सिर्फ होना मात्र। वहां दुख की कोई खाई नहीं है और वहां सुख का कोई शिखर नहीं है। वहां ऊंचाइयां-निचाइयां नहीं हैं। वहां पाना-खोना नहीं है। वहां दिन-रात नहीं है। वहां श्रम-विश्राम नहीं है। वहां तुम सिर्फ हो। वहां शाश्वत होना है। उस शाश्वत होने की एक दशा है, जो बड़ी रसपूर्ण है। उस रस में कभी विघ्न नहीं पड़ता। इसलिए, उसे संत 'सनातन', 'शाश्वत' कहते हैं, 'नित्य' कहते हैं। उस रस में कभी भी बाधा नहीं आती। कबीर ने कहा है कि वहां अमृतरस झरता ही रहता है—एक-सा, एकरस।

यहां भी वर्षा होती है; लेकिन उस वर्षा के लिए गरमी का होना जरूरी है। जब गरमी से तुम उत्तप्त हो जाते हो, पृथ्वी पर दरार पड़ जाती है सब तरफ, वृक्ष

चीख-पुकार करने लगते हैं, सब तरफ त्राहि-त्राहि मच जाती है गरमी से—तब वर्षा होती है। तुम कहोगे कि ऐसा बेहूदा नियम क्यों है। ऐसा क्यों नहीं कि वर्षा हो और त्राहि-त्राहि न हो; लेकिन, तब तुम्हें पूरी व्यवस्था समझनी पड़ेगी, गणित समझना पड़ेगा। यह त्राहि-त्राहि मचे तो ही बादल निर्मित होते हैं। जब भयंकर धूप पड़ती है, तो पानी भाप बनता है। जब पानी भाप न बने तो वर्षा नहीं हो सकती। तो जब पानी भाप बन जाएगा, आकाश में बादल सघन होंगे—जब बादल इतने सघन हो जायेंगे, तो उनको बरसना ही पड़ेगा, तभी वर्षा होगी। तो, वर्षा के पहले भयंकर गरमी जरूरी है।

आत्मा के जगत में विपरीतता नहीं है; वहां द्वंद्व नहीं है। इसलिए उसे 'निर्द्वंद्व', 'अद्वैत'—इन शब्दों से पुकारते हैं। वहां एक है, वहां दो नहीं है। पर, तब तुम्हें समझना बहुत कठिन हो जायेगा कि वहां किस तरह का सुख होगा; क्योंकि ऐसा तो तुम्हें कोई सुख पता नहीं है, जिसके साथ दुख न जुड़ा हो।

कोई पूछ रहा था सिग्मंड फ्रायड से कि विक्षिप्तता की क्या परिभाषा है और विक्षिप्तता पर लोग कैसे पहुंच जाते हैं। सिग्मंड फ्रायड ने बड़ा अदभुत उत्तर दिया। उसने कहा कि विक्षिप्तता और सफलता, इनकी एक ही परिभाषा है और जो ढंग सफलता तक पहुंचने का है, वही ढंग विक्षिप्तता तक पहुंचने का है। क्योंकि, जब तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम तन जाते हो। जब तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम लड़ते हो। जब तुम सफल होना चाहते हो तो तुम्हारे रात-दिन चिंता से भर जाते हैं। जब तुम सफल होना चाहते हो, तो प्रतिपल तुम भयभीत होते हो कि पता नहीं, जीत पाओ, न जीत पाओ। तुम अकेले ही नहीं हो सफलता के लिए, करोड़ों प्रतिद्वंद्वी हैं। तब तुम्हारी रात-दिन चिंता, पीड़ा, तनाव...तुम कंपते ही रहते हो कि पता नहीं क्या होगा, क्या नहीं होगा। और यही तो पागल होने का भी रास्ता है। तो जिनको तुम सफल कहते हो, अगर तुम उन्हें बहुत गौर से देखो, तुम उन्हें उसी तनाव की और बेचैनी की अवस्था में पाओगे, जिनमें तुम पागलों में पाते हो।

ऐसा हुआ कि जब रूस में ख्रुश्चेव प्रधान मंत्री था तो एक पागलखाना देखने गया। कुछ जरूरी बात उसे याद आ गयी। तो उसने अपने सेक्रेटरी को फोन करना चाहा; लेकिन बड़ी मुश्किल थी—वह लड़की जो आपरेटर होगी बीच में, वह कोई ध्यान ही नहीं दे रही थी। ध्यान न देने का कारण भी था, जो पीछे साफ हुआ। ख्रुश्चेव ने बार-बार उसे कहा कि शीघ्र नंबर दो, तो उस लड़की ने कोई फिक्र ही नहीं की। तब ख्रुश्चेव ने

कहा की लड़की, तू समझती है, मैं कौन हूं ? जो कि सदा ही सफल, पद पर, धन पर पहुंचे आदमी की धारणा रही है—भीतर वह पूरे वक्त, चौबीस घंटे कहता रहता है, पता है, मैं कौन हूं; चाहे बोले न बोले, भीतर वह यही बोलता रहता है कि पता है, मैं कौन हूं; क्योंकि इसी के लिए तो सारा गंवाया है, इसी पता करवाने के लिए। आखिर नहीं रहा गया और उसने कहा कि लड़की, पता है, मैं कौन हूं ! मैं ख्रुश्चेव बोल रहा हूं—प्रधानमंत्री।

उस लड़की ने कहा, 'मुझे पता नहीं कि आप कौन है ; लेकिन मुझे पता है कि आप कहां से बोल रहे हैं—पागलखाने से।'

लेकिन, सभी प्रधान मंत्री वहीं से बोल रहे हैं। और कोई जगह है भी नहीं, जहां से वे बोले।

ख्रुश्चेव एक बार लंदन आया। किसी ने उसे बहुमूल्य कपड़ा भेंट किया था। कपड़ा इतना कीमती था कि वह चाहता था कि दुनिया का श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ दर्जी उसे बनाए। मास्को में भी उसने पुछवाया—जो अच्छे-से-अच्छादर्जी था। वह चाहता था कि एक कोट भी बन जाये, एक बंडी भी बन जाये, एक पैंट भी बन जाये। पर उस दर्जी ने कहा क्रि मुश्किल है, तीन चीजें मुश्किल हैं। दो कोई भी बन सकती हैं। कपड़ा इतना कीमती था कि वह चाहता था कि पूरा सूट ही बने। तो वह लंदन ले आया। लंदन के दर्जी ने उसको देखा तो उसने कहा, 'ठीक है; एक पैंट, एक कोट और बंडी तो बन ही सकती हैं, कुछ कपड़ा भी बचेगा। आपके बच्चे के लिए भी बन सकता है।'

तो ख्रुश्चेव बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, 'क्या ? मैंने अपने दर्जी को पूछा मास्को में, हद कर दी उस बेईमान ने। वह कह रहा था कि इसमें, बस दो ही चीजें बन सकती हैं।'

तो लंदन के दर्जी ने कहा कि आप उस पर नाराज न हों। मास्को में आप बहुत बड़े आदमी हैं, ज्यादा कपड़ा लगेगा; लंदन में आप ना-कुछ हैं।

आदमी पूरा जीवन जिन-जिन सुखों की खोज में—सफलताओं की, महत्वाकांक्षाओं की खोज में—होता है, उनके साथ-साथ, उतने दुख झेलने की तैयारी में से गुजरना पड़ता है और दुख तोड़ जाते हैं। इसके पहले कि तुम सफल होओ, तुम पहले ही करीब-करीब असफल हो जाते हो। संसार में सफल कोई होता ही नहीं, क्योंकि, यहां सफलता की कीमत में इतनी गहरी विक्षिप्तता झेलनी पड़ती है, इतना पागलपन झेलना पड़ता है कि जब तक सफलता हाथ में आती है, हाथ में आने योग्य

नहीं रह जाती।

समाधि का सुख बिलकुल भिन्न है; वहां मूल्य तुम्हें चुकाना नहीं है। क्योंकि, जो तुम पाने चले हो, वह अभी मौजूद है—इसी वक्त; वह कोई भविष्य नहीं है कि जिसके लिए तुम्हें यात्रा करनी पड़े, चलना पड़े, मेहनत करनी पड़े। वह अभी मौजूद है। इसी वक्त मौजूद है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है। वह तुम्हारी स्वभाव-सिद्ध संपदा है। उसकी कीमत में कोई दुख नहीं है। लेकिन, तब उसका स्वाद कैसा होगा ?

तुमने जो भी सुख जाने हैं, उनमें से किसी से भी उसके स्वाद का पता नहीं चल सकता; क्योंकि उन सब में दुख मिश्रित है। तुमने जो-जो अमृत जाना है, चखा है, उस सब में जहर पड़ा हुआ है; क्योंकि शरीर के साथ यह होगा ही। शरीर में जन्म और मृत्यु दोनों जुड़े हैं; अमृत और जहर दोनों पड़े हैं। शरीर से तुम जो भी सुख जानोगे, उसमें दुख रहेगा ही। लेकिन आत्मा सिर्फ अमृत है। उसकी कोई मृत्यु नही। वह शाश्वत है। वहां विपरीत नहीं है। वह सिर्फ जीवन है—शुद्ध जीवन।

इसलिए तुमने जो भी सुख चखे हैं, उनकी तिक्तता, उनकी कड़वाहट छोड़ दो, उनकी तिक्तता को बिलकुल हटा दो, तो तुम कल्पना शायद थोड़ी-सी कर पाओ। तुमने जो भी सुख जाने हैं, उन सब में से, उनका विपरीत जो दुख का हिस्सा है, वह लग कर दो, तो थोड़ी-सी तुम्हें झलक कल्पना में आ सकती है। लेकिन, वह झलक भी पक्की खबर न देगी; क्योंकि परिधि पर सिर्फ झलकें मिलती हैं; क्योंकि तुम कितना ही सोचो, जो तुमने नहीं चखा है, उसके तुम प्रत्यय और धारणा न बना सकोगे; चखना ही पड़ेगा।

ये सूत्र बड़े हैं। विस्मय से भरो। मुड़ो स्व की ओर। स्वयं में ठहरो, ताकि महा ऊर्जा तुम्हें उपलब्ध हो जाये। जीवन तुम्हारा हो—परम जीवन; विवेक से आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाओ—जागृति से, परम जागृति से, निद्रा को तोड़कर और अस्तित्व का आनंद भोग सकोगे तब तुम। समाधि-सुख तुम्हारा है।

समाधि-सुख के संबंध में कुछ बातें और। एक—जीवन में जो भी सुख तुम भोगते हो, वह बहुत-सी बातों पर निर्भर करेगा; तुम्हारी योग्यता-अयोग्यता, शिक्षा-अशिक्षा, शक्ति-सामर्थ्य, परिवार-संबंध—सब पर निर्भर करेगा। तुम अकेले नहीं हो वहां। अगर गरीब के घर में पैदा हुए हो तो उसी सुख को पाने में तुम्हें जीवनभर गंवाना पड़ेगा; अमीर घर में पैदा हुए हो, जल्दी पहुंच जाओगे। अगर बुद्धिमान हो, चालाक हो, होशियार हो गणित में तो जल्दी पहुंच जाओगे; अगर बुद्धू हो, काफी

भटकोगे; पहुंच जाओ यह संदिग्ध है। शरीर रुग्ण है, मुश्किल पड़ेगा; शरीर स्वस्थ है, जल्दी पहुंच जाओगे। यह सब सांयोगिक है, हजार बातों पर निर्भर है।

लेकिन, समाधि-सुख किसी बात पर निर्भर नहीं है, अनकंडीशनल है, बेशर्त है। न तुम्हारी बुद्धि पर, न तुम्हारे शरीर पर, न तुम्हारी योग्यता-अयोग्यता पर, न तुम्हारी शिक्षा-परिवार पर, सुंदर-कुरूप, स्त्री-पुरुष—किसी बात पर निर्भर नहीं; शूद्र-ब्राह्मण, हिंदू-मुसलमान—किसी बात पर निर्भर नहीं; जवान-वृद्ध—किसी बात पर निर्भर नहीं। बेशर्त सुख है; क्योंकि वह तुम्हारी संपदा है। वह तुम्हारे पास है ही। तुम उसे लेकर ही पैदा हुए हो। तुमने उस तरफ ध्यान नहीं दिया, बस इतनी ही बात है। तुमने उसे विस्मरण किया है, तुमने खोया नहीं है। सिर्फ आंख लौटाओ, मुड़ो पीछे की तरफ और अपने को देख लो।

तो, ऐसा कुछ नहीं कि बुद्धिमान ज्यादा समाधि-सुख पा लेंगे, बुद्धू वंचित रह जायेंगे—ऐसा कुछ भी नहीं है। बेपढ़े-लिखे भी वहां पहुंच जाते हैं। कबीर भी वहां पहुंच जाता है—निपट गंवार। बुद्ध भी वहां पहुंचते हैं। और, जब दोनों पहुंच जाते हैं, तो जरा भी फर्क नहीं है।

समाधि-सुख जीवन का स्वरूप है। तुम्हारी बाहरी परिधि काली है या गोरी, स्वस्थ या सुंदर, रुग्ण-गैर रुग्ण; तुम्हारी बुद्धि में बहुत-से शब्द भरे हैं कि थोड़े; शास्त्र तुमने ज्यादा जाने कि कम—इस सबसे कोई भी संबंध नहीं। तुम्हारा होना पर्याप्त है। तुम हो, इतना काफी है।

इसलिए, समस्त ध्यान, शुद्ध होने की खोज है। जहां तुम शरीर को भी भूल जाओगे, मन को भी भूल जाओगे—वहीं तुम्हें आत्मा का समाधि-सुख, अस्तित्व का आनंद उपलब्ध होना शुरू हो जायेगा। किसी भांति बस इतना ही करो कि थोड़ी देर को शरीर तुम्हें स्मरण न रहे, मन स्मरण न रहे। जैसे ही शरीर और मन का विस्मरण होगा, आत्मा का स्मरण होगा। जब तक तुम्हें शरीर और मन का स्मरण रहेगा, आत्मा का स्मरण न रहेगा। क्योंकि शरीर और मन बाहर हैं, आत्मा भीतर है। तुम दोनों की तरफ एक साथ न देख सकोगे; एक की तरफ ही देख सकोगे।

इस समाधि शिविर में, तुमने अगर इतना ही किया कि थोड़ी देर को, एक क्षण को भी, शरीर और मन भूल जायें, तो तुम्हें समाधि-सुख का स्वाद मिल जायेगा। और, एक बार स्वाद मिल जाये, बस काफी है। फिर तुम्हारी जिंदगी दूसरी हो गयी। पहला स्वाद ही कठिन है। एक दफा गर्दन मुड़ जाये, फिर तो तुम जान लिये तरकीब, फिर

तुम्हारे हाथ में है। फिर तुम जहां भी गर्दन मोड़ लोगे, वहीं तुम देख लोगे। पहले गर्दन का मोड़ना ही सारा श्रम लेता है।

एक बार कुंजी हाथ में आ गयी, फिर तुम मालिक हो। फिर जब चाहा तब। तब तुम मजे से संसार में घूमो, तुम्हारे समाधि-सुख को कोई छीन न सकेगा। तुम दुकान पर बैठो, तुम समाधि-सुख में रहोगे। तुम बाजार में रहो तुम समाधि-सुख मे रहोगे। एक बात घटना शुरू होगी कि बाहर जो तुम्हारी सुखों को दौड़ है, वह अपने-आप क्षीण होती जायेगी; क्योंकि, जब महान सुख हाथ में आ जाये, तो क्षुद्र सुखों की चिंता कौन करता है ! जब हीरे-जवाहरात हाथ में आ जायें, तो कंकड़-पत्थर आदमी अपने-आप फेंक देता है, उन्हें फिर त्यागना नहीं पड़ता।

इसलिए, मैं निरंतर कहता हूं कि ज्ञानी कभी कुछ त्यागता नहीं; जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है। अज्ञानी त्यागते हैं, क्योंकि त्याग उन्हें कष्टपूर्ण है। उन्हें सार्थक का तो कोई पता नहीं और व्यर्थ को छोड़ने की कोशिश करते हैं। मन पकड़ता है; क्योंकि, मन कहता है कि इसको छोड़ दे रहे हो, जो हाथ में है और जो हाथ में नहीं है, उसका क्या भरोसा ! वह है भी या नहीं, यह भी संदिग्ध है।

तो, मैं तुमसे कुछ भी त्यागने को नहीं कहता; मैं तुमसे सिर्फ उसका स्वाद लेने को कहता हूं। वह स्वाद तुम्हारे जीवन में महा त्याग हो जायेगा। उस स्वाद के बाद तुम्हें खुद ही दिखायी पड़ जायेगा कि क्या व्यर्थ है; और, जो व्यर्थ है, उसे कोई भी नहीं पकड़ता। उसे तो लोग अपने-आप ही छोड़ने लगते हैं।

सुना है मैंने, बंगाल में एक संत हुए—युक्तेश्वर गिरि। एक धनी समृद्ध व्यक्ति उनके पास आया और कहने लगा, 'आप महात्यागी हैं !' गिरि खिलखिलाकर हंसने लगे और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, 'देखो ! यह आदमी खुद ही महात्यागी है और मुझको महात्यागी कहता है। तू मुझको मत फंसा ?' आदमी चौंका। उसने तो प्रशंसा में कहा था। शिष्य भी चौंके; क्योंकि गिरि त्यागी थे, इसमें कोई संदेह ही न था। शिष्यों ने कहा, 'हम समझे नहीं। वह आदमी ठीक ही कहता है।' गिरि ने कहा, 'ऐसे समझो कि हीरा पड़ा है और पत्थर पड़ा है; यह आदमी पत्थर पकड़े है और मैं हीरा पकड़े हूं। यह मुझको त्यागी कहता है।'

कौन त्यागी है ? महावीर त्यागी हैं कि तुम ? बुद्ध त्यागी हैं कि तुम ? तुम ही त्यागी हो, क्योंकि कचरे को पकड़े हो। समाधि-सुख को छोड़ रहे हो और व्यर्थ क्षुद्र, परिधि पर घटनेवाली दुखमिश्रित घटनाएं—जहां कुछ भी शुद्ध नहीं हैं, जहां सभी अशुद्ध है,

जहां सभी बासा है, उच्छिष्ट है—जिसे तुम पकड़े बैठे हो। संसारी महात्यागी है; लेकिन संसारी संन्यासियों को त्यागी समझते हैं। उनको लगते हैं संन्यासी त्यागी। सच में तो वे दया करते हैं कि बेचारे ! सब छूट गया ! सब छोड़ दिया, कुछ भोगा नहीं ! सम्मान भी करते हैं भीतर, गहरे मन में दया भी करते हैं कि नासमझ हैं, बिना भोगे सब छोड़ दिया। कुछ तो भोग लेते। उन्हें पता ही नहीं कि वे किससे कह रहे हैं। संन्यासी को महाभोग उपलब्ध हुआ है। अस्तित्व ने उसे महाभोग में आमंत्रित कर लिया है।

तुमसे मैं छोड़ने को नहीं कहता; तुमसे मैं जानने को कहता हूं, स्वाद लेने को कहता हूं। वही स्वाद तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे, जो व्यर्थ है, उसका कटना हो जायेगा। व्यर्थ छूट ही जाता है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता।

आज इतना ही।

चित्त के अतिक्रमण के उपाय

चौथा प्रवचन

दिनांक 14 सितंबर, 1974,
प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

चित्तं मंत्र :
प्रयत्नः साधकः ।
गुरुः उपायः ।
शरीरं हविः ।
ज्ञानमन्नम् ।
विद्यासंहारे तदुत्थस्वप्नदर्शनम् ।

चित्त ही मंत्र है। प्रयत्न ही साधक है। गुरु उपाय है। शरीर हवि है। ज्ञान ही अन्न है। विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होते हैं।

चित्त ही मंत्र है।

मंत्र का अर्थ है : जो बार-बार पुनरुक्त करने से शक्ति को अर्जित करे; जिसकी पुनरुक्ति शक्ति बन जाये। जिस विचार को भी बार-बार पुनरुक्त करेंगे, वह धीरे-धीरे आचरण बन जायेगा। जिस विचार को बार-बार दोहराएंगे, जीवन में वह प्रगट होना शुरू हो जायेगा। जो भी आप हैं, वह अनंत बार कुछ विचारों के दोहराए जाने का परिणाम है।

सम्मोहन पर बड़ी खोजें हुईं। आधुनिक मनोविज्ञान ने सम्मोहन के बड़े गहरे तलों को खोजा है। सम्मोहन की प्रक्रिया का गहरा सूत्र एक ही है कि जिस विचार को भी वस्तु में रूपांतरित करना हो, उसे जितनी बार हो सके, दोहराओ। दोहराने से उसकी लीक बन जाती है; लीक बनने से मन का वही मार्ग बन जाता है। जैसे नदी बह जाती है, अगर एक गढ़ा खोदकर राह बना दी जाये, नहर बन जाती है—वैसे ही अगर मन में एक लीक बन जाये—किसी भी विचार की तो वह विचार परिणाम में आना शुरू हो जाता है।

फ्रांस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ—इमाइल कुए। उसने लाखों लोगों को केवल मंत्र के द्वारा ठीक किया। लाखों मरीज सारी दुनिया से कुए के पास पहुंचते थे। और उसका इलाज बड़ा छोटा था। वह सिर्फ मरीज को कहता था कि तुम यही दोहराए चले जाओ कि तुम बीमार नहीं हो, स्वस्थ हो, स्वस्थ हो रहे हो। रात सोते समय दोहराओ, सुबह उठते समय दोहराओ, दिन में जब स्मृति आ जाये तब दोहराओ। बस, एक विचार को दोहराते रहो कि मैं स्वस्थ हूं, मैं निरंतर स्वस्थ हो रहा हूं। चमत्कार मालूम होता है कि कठिन-से-कठिन रोग के मरीज सिर्फ इस पुनरुक्ति से ठीक हुए। कुए के पास सारी दुनिया से लोग पहुंचने लगे। लेकिन बात तो बहुत छोटी है।

साधारणतः भी जब आप ठीक होते हैं बीमारी से, तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि

उसमें दवा का काम तो दस प्रतिशत होता है, नब्बे प्रतिशत तो पुनरुक्ति का काम होता है। दवा को दिन में चार बार लेते हैं, आठ बार लेते हैं। जब भी दवा को लेते हैं, तभी मन में यह भाव आता है कि अब मैं ठीक हो जाऊंगा; ठीक दवा मिल गयी है।

होम्योपैथी की गोलियों में कुछ भी नहीं है; लेकिन उससे उतने ही लोग ठीक होते हैं जितने ऐलोपैथी से। अच्छा डाक्टर अगर पानी भी दे दे तो आप ठीक हो जायेंगे; क्योंकि सवाल दवा का नहीं है, अच्छे डाक्टर पर भरोसा होता है। भरोसा पुनरुक्ति बन जाता है। आप जानते हैं कि अच्छे डाक्टर ने इलाज किया है। इसलिए जो डाक्टर आप से कम फीस लेता है, वह शायद आपको ठीक न कर पाये। इसलिए, जो डाक्टर आप से ज्यादा फीस लेता है, वही आपको ठीक कर पायेगा; क्योंकि जब ज्यादा जेब आपकी खाली होती है, तो भरोसा बढ़ता है—लगता है कि बड़ा डाक्टर है। और आप जैसे बड़े मरीज़ को बड़ा डाक्टर चाहिए। पुनरुक्ति...।

मनोवैज्ञानिक एक प्रयोग किये हैं, जिसे वे पलेसिबो (Placebo) कहते हैं—झूठी दवा। और बड़ी हैरानी मालूम हुई। एक बीमारी के मरीज हैं पचास; पच्चीस को वास्तविक दवा दी गयी और पच्चीस को सिर्फ पानी दिया गया। लेकिन पता किसी को भी नहीं है कि किसको पानी दिया गया, किसको दवा दी गयी। मरीजों को पता नहीं। वे सभी दवा मानकर चल रहे हैं। हैरानी हुई कि जितने दवा से ठीक हुए, उतने ही पानी से भी ठीक हुए। प्रतिशत बराबर वही रहा। इसलिए, जब कभी पहली बार कोई दवा खोजी जाती है तो उससे बहुत मरीज ठीक होते हैं। फिर धीरे-धीरे यह संख्या कम हो जाती है। इसलिए, हर दवा दो-तीन साल से ज्यादा नहीं चलती। क्योंकि जब पहली दफा दवा खोजी जाती है तो बड़ा भरोसा पैदा होता है कि अब खोज ली गई असली दवा। सारी दुनिया में मरीज उससे प्रभावित होते हैं। फिर धीरे-धीरे भरोसा कम होने लगता हैं; क्योंकि कभी कोई मरीज उससे ठीक भी नहीं होता। कभी कोई जिद्दी मरीज मिल जाता है, तो सुनता ही नहीं दवा की, न डाक्टर की। उसके कारण दूसरे मरीजों का भरोसा भी क्षीण होने लगता है। धीरे-धीरे दवा का प्रभाव खो जाता है। इसलिए हर दो साल में नयी दवाएं खोजनी पड़ती है।

दवाओं का प्रभाव, विज्ञापन ठीक से किया जाये, तो ही होता है। तो हर अखबार, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन—सब तरफ से प्रचार होना चाहिए। प्रचार ज्यादा कारगर है, जितनी दवा के तत्व, उससे ज्यादा। क्योंकि, वही प्रचार

आपको सम्मोहित करेगा। वही प्रचार मंत्र बन जाता है। अखबार खोला और 'ऐस्प्रो', रेडियो खोला और 'ऐस्प्रो', टेलीविजन पर गये और 'ऐस्प्रो', बाजार में निकले और बोर्ड, 'ऐस्प्रो'—जो कुछ भी करें, ऐस्प्रो पीछा करती है। वह सिरदर्द से भी बड़ा सिरदर्द बन जाती है; फिर वह सिरदर्द को हरा देती है।

पुनरुक्ति शक्ति पैदा करती है। मंत्र का अर्थ है : किसी चीज को बार-बार दोहराना। यह सूत्र कह रहा है : चित्त ही मंत्र है—चित्तं मंत्रः। यह कहता है, और किसी मंत्र की जरूरत नहीं; अगर तुम चित्त को समझ लो तो चित्त की प्रक्रिया ही पुनरुक्ति है। तुम्हारा मन कर क्या रहा है जन्मों-जन्मों से—सिर्फ दोहरा रहा है। सुबह से सांझ तक तुम करते क्या हो—रोज वही दोहराते हो, जो तुमने कल किया था, जो परसों किया था, वही तुम आज कर रहे हो; वही तुम कल भी करोगे, अगर न बदले। और तुम जितना वही करते जाओगे उतनी ही पुनरुक्ति प्रगाढ़ होती जायेगी और तुम झंझट में इस तरह फंस जाओगे कि बाहर आना मुश्किल हो जायेगा।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि सिगरेट नहीं छूटती। सिगरेट मंत्र बन गयी है। उन्होंने इतनी बार दोहराया है—दिन में दो पैकेट पी रहे हैं। इसका मतलब हुआ कि चौबीस बार दोहरा रहे हैं; बीस बार दोहरा रहे हैं, बार-बार दोहराया है और सालों से दोहरा रहे हैं; आज अचानक छोड़ देना चाहते हैं। लेकिन जो चीज मंत्र बन गयी, उसको अचानक नहीं छोड़ा जा सकता। तुम छोड़ दोगे इससे क्या फर्क पड़ता है; पूरा मन मांग करेगा। पूरा शरीर उसको दोहरायेगा। वह कहेगा—चाहिए। उसी को तुम तलफ कहते हो। तलफ का मतलब हुआ कि जिस चीज को तुमने मंत्र बना लिया, उसे अचानक छोड़ना चाहते हो—यह नहीं हो सकता। तलफ का मतलब है कि जो चीज मंत्र बन गयी है, उसके विपरीत मंत्र से तोड़ना होगा।

रूस में पावलव ने इस पर बहुत काम किया। और पावलव अकेला आदमी है, जिसने तलफ वाले मरीजों को ठीक करने में सफलता पायी। अगर आप सिगरेट पीने के रोगी हो गये हैं छोड़ना चाहते हैं और नहीं छूटती तो पावलव मंत्र का प्रयोग करता था। उसके मंत्र जरा तेज थे। वह आपको सिगरेट देगा और जैसे ही आप सिगरेट हाथ में लेंगे, आपको बिजली का शाक लगेगा; झनझना जायेगी पूरी तबीयत, सिगरेट हाथ से छूट जायेगी। ऐसा सात दिन आपको पावलव भरती रखेगा अपने अस्पताल में और जब भी आप सिगरेट पियेंगे, तब बिजली का शाक लगेगा। सात दिन में मंत्र सिगरेट से ज्यादा गहरा हो जायेगा। सिगरेट का नाम ही सुनकर आपको कंपकंपी आने लगेगी।

पीने का रस तो दूर, एक वैराग्य का उदय हो जायेगा। पावलव ने हजारों मरीज विपरीत

मंत्र से ठीक किये। और पावलव कहता है कि जो लोग भी आदतों से ग्रस्त हो गये हैं, जब तक उनको विपरीत आदतें न दी जायें, जो पहली आदत से ज्यादा मजबूत हों तब तक कोई छुटकारा नहीं।

तुम्हारा जीवन जैसा भी है, तुम्हारे मन का ही परिणाम है। और तुम दोहराये चले जाते हो। तुम क्रोध से बाहर भी होना चाहते हो, लेकिन तुम रोज क्रोध को दोहराये चले जाते हो। जितना दोहराते हो उतना मजबूत हो रहा है। कितनी बार तुम कसमें खाते हो कि अब नहीं करूंगा और कसमें टूट जाती हैं और क्रोध फिर करते हो। उपद्रव और भी बढ़ गया। इससे तो बेहतर था कि कसम तुमने न खायी होती; क्योंकि अब यह दोहरा मंत्र हो गया। अब तुम जानते हो कि क्रोध कसम से ज्यादा बड़ा है, ज्यादा ताकतवर है। कसमों का कोई मूल्य नहीं है। तुम कितना ही व्रत लो, तुम्हारे व्रत दो कौड़ी के हैं, क्रोध ज्यादा सबल है। यह भी सम्मोहन बैठ गया। अब तुम जब कसम भी लोगे, व्रत भी लोगे तब भी तुम जानते हो भीतर कि यह सधनेवाली नहीं है। तुम भीतर दोहरा रहे हो, उसी समय भी कि यह होगा नहीं; मैं ले तो रहा हूं, लेकिन यह होगा नहीं।

भूलकर भी व्रत मत लेना, अगर उसे पूरा न कर सको। उससे तो बेहतर है कि तुम अपनी एक ही आदत से भरे रहना। व्रत लेकर और तोड़ना बहुत महंगा धंधा है; क्योंकि तोड़ने की भी आदत बन रही है। फिर तुम जीवन में कभी भी व्रत न ले पाओगे। तथाकथित धार्मिक गुरुओं ने तुम्हें बहुत अधार्मिक बनाया है; क्योंकि वे सस्ते में व्रत दे देते हैं। तुम मंदिर गये, तुम साधु के पास गये, मुनि के पास गये और वह कहता है कि कोई व्रत लो। उसके प्रभाव में, मंदिर की शांति में और फिर अहंकार में कि जब साधु कह रहा है तो यह कहना कि मैं कोई भी व्रत नहीं ले सकूंगा, बड़ी दीनता मालूम पड़ती है। तो तुम कहते हो कि आज से सिगरेट छोड़ देंगे।

मेरे एक मित्र हैं। उनका दिमाग जरा खराब है; लेकिन आपसे बेहतर हैं। वे एक मुनि के पास गये—जैन हैं—तो मुनि ने कहा कि कोई व्रत लो तो उन्होंने कहा कि अच्छी बात है, ले लिया। मुनि ने कहा कि क्या लिया। उन्होंने कहा कि आज से बीड़ी पीया करेंगे। दिमाग उनका खराब है; लेकिन व्रत का उन्होंने पालन किया है। वे तब तक बीड़ी पीते नहीं थे। और मैं आपको कहता हूं कि वे ज्यादा फायदे में रहे बजाय उस आदमी के, जिसने नियम लिया कि मैं बीड़ी नहीं पीऊंगा और फिर बीड़ी पीनी शुरू कर

दी। उसका व्रत भी टूट गया। उसकी आत्मग्लानि बढ़ गयी। कम-से-कम वे सफल

तो हुए। दिमाग उनका खराब हो; पर आपसे बेहतर हैं। कम-से-कम इतना तो है कि व्रत पूरा किया है।

इससे, जब भी व्रत टूटता है तो आत्मग्लानि पैदा होती है, अपराध पैदा होता है। और जितनी आत्मग्लानि पैदा होती है, अपराध पैदा होता है, उतना तुम दीन होते जाते हो। और आत्मा तो उसको मिलेगी जो सम्राट है, जो दीन नहीं है। तुम आत्मा से दूर हटते जाते हो।

मन का स्वरूप समझो, तो यह सूत्र समझ में आ जायेगा—मन की सारी कला पुनरुक्ति है। मन मंत्र है। जो-जो तुमने दोहराया है, वही तुम्हारी आदत बन गयी है। जो-जो तुम दोहराते रहोगे, वही तुम्हारे जीवन में आता रहेगा। जन्मों-जन्मों से तुमने एक ही बात दोहरायी है, वही बात तुम्हें बार-बार उपलब्ध हो जाती है। और, तुम गलत को दोहराने से बंधे हो।

क्या करना है ? पहली बात—गलत को तोड़ने को जल्दी मत करना। बेहतर यह होगा कि गलत को तोड़ने की बजाय, तुम सही को करने की कोशिश करना। नया मंत्र सीखना। तुम सिगरेट पीते हो, कोई हर्जा नहीं; तुम ध्यान सीखना। सिगरेट ध्यान में जरा भी बाधा नहीं है। तुम ध्यान सीखना। तुम ध्यान के मंत्र को सघन करना। जिस दिन ध्यान के मंत्र में तुम सफल हो जाओगे, उस दिन तुम्हें आत्म-गौरव उपलब्ध होगा। उस आत्म-गौरव और ध्यान की सफलता में सिगरेट को छोड़ना आसान हो जायेगा; क्योंकि तुमने एक विधायक मंत्र पूरा कर लिया।

नकारात्मक मत बनना, अन्यथा तुम मुश्किल में पड़ोगे। पश्चाताप, पाप, पीड़ा और उदासी पकड़ लेगी। तुम्हारे साधु, जो मंदिरों में बैठे हैं, सब उदास हैं। उनके जीवन में कोई हंसी नहीं है, कोई खुशी नहीं है, कोई प्रसन्नता, कोई उत्फुल्लता नहीं है; क्योंकि उन्होंने नकारात्मक मंत्रों का उपयोग किया है। निगेटिव उनकी खोज है। क्या-क्या गलत है, वह उन्होंने छोड़ा है।

मैं तुमसे कहता हूं कि गलत को छोड़ने की जल्दी मत करना; तुम ठीक को पकड़ने की जल्दी करना। जिस दिन ठीक तुम्हें पकड़ जायेगा, गलत को छोड़ना बहुत आसान हो जायेगा। तुम बीमारी से मत लड़ना; तुम स्वास्थ्य को पाने की कोशिश करना। वही कुए अपने मरीजों को कह रहा है। वह कह रहा है कि 'मैं स्वस्थ हो रहा हूं'—तुम यही भाव दोहराओ।

उलटा, विपरीत भी तुम कर सकते हो। तुम्हारे सिर में दर्द है, तुम यह कह सकते हो कि नहीं, मुझे सिरदर्द नहीं है। लेकिन जितनी बार तुम यह कहोगे, उतनी ही बार तुम 'सिरदर्द' शब्द को भी दोहरा रहे हो। और जितनी बार तुम कहोगे कि 'सिरदर्द नहीं है', अगर सिरदर्द है तो तुम्हारे कहने से क्या होगा ! भीतर तो तुम जानते हो कि तुम्हारा कहना झूठ है। ऊपर तुम कितना ही कहो कि सिरदर्द नहीं है; लेकिन सिरदर्द हो रहा है। भीतर तो तुम यही कहोगे कि हो रहा है। यह कुए कहता है तो दोहरा रहे हैं; लेकिन सिरदर्द हो रहा है। कुए के कहने से तुम्हारा सिरदर्द नहीं मिटेगा; तुम्हारा सिरदर्द तो तुम्हारी भीतरी प्रक्रिया से ही मिटेगा। न, नकारात्मक शब्द पकड़ना ही मत।

इसलिए, मैं कहता हूं कि संसार को छोड़ने की कोशिश मत करना; परमात्मा को पाने की कोशिश करना। इसलिए, मैं कहता हूं, त्याग की दिशा में मत जाना; परम भोग की खोज करना। क्या गलत है, उस पर आंख मत गड़ाना; क्योंकि गलत को छोड़ने के लिए भी तो गलत को देखना पड़ता है, बार-बार; और जितना तुम देखते हो, उतना ही मंत्र दोहराया जा रहा है। और, जिस चीज को भी तुम देखते रहते हो, उससे तुम सम्मोहित हो जाते हो।

दुनियाभर में बहुत खोजबीन चली है—कार के ऐक्सीडेंटों के बाबत; क्योंकि अब कार के ऐक्सीडेंट से उतने आदमी मर रहे हैं, जितने युद्धों में भी नहीं मर रहे हैं। तो दूसरे महायुद्ध में एक साल में जितने आदमी मरे, उससे दुगने आदमी सिर्फ कार के ऐक्सीडेंट से मर रहे हैं सारी दुनिया में। बहुत बड़ी संख्या है। कुछ करना जरूरी है। और बहुत-सी बातें प्रकाश में आयी हैं। उसमें एक बात तो यह प्रकाश में आयी है कि कार के ऐक्सीडेंट अक्सर रात बारह बजे और तीन बजे के बीच में होते हैं। पचास प्रतिशत ऐक्सीडेंट, दुर्घटनाएं रात बारह बजे और तीन बजे के बीच में होती हैं; क्योंकि वह समय निद्रा का समय है और मन तंद्रा में हो जाता है, होश खो जाता है। उस होश के खोये क्षण में सम्मोहन बिलकुल आसान है। और ड्राईवर सम्मोहित हो जाता है; क्योंकि कार की पुनरुक्त होती आवाज, वही आवाज बार-बार दोहर रही है। रास्ते पर आंख गड़ी है, वही रास्ता सैंकड़ों मील तक दिखायी पड़ रहा है। और, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि रास्तों पर जो बीच में सफेद लकीर डाली जाती है, उसके कारण हजारों लोग मर रहे हैं। क्योंकि उस लकीर को देखते, देखते—ड्राईवर उसको देखता रहता है और सम्मोहित हो जाता है। फिर वह होश में नहीं है; वह नशे में है।

बारह और तीन के बीच वैसे ही नींद का वक्त, कार की एक-ही-सी गूंजती आवाज

ऊब पैदा करती है निद्रा लाती है, मन बंध जाता है। फिर एक ही रास्ता और रात में बेरौनक; क्योंकि न आसपास के वृक्ष दिखायी पड़ते हैं, न पहाड़ दिखायी पड़ते हैं, सिर्फ रास्ता दिखायी पड़ता है। और फिर बीच में पड़ी सीधी लकीर...।

एक छोटा-सा प्रयोग करके देखना। एक मुर्गी को टेबल पर रखना। एक सीधी लकीर खींच देना। मुर्गी को गर्दन झुकाकर लकीर पर लगा देना, ताकि लकीर उसको दिखायी पड़ने लगे। फिर तुम उसे छोड़ देना। मुर्गी वहीं रुकी रहेगी। फिर वह हटेगी नहीं; वह सम्मोहित हो गयी। वह घंटों वैसी बैठी रहेगी। वह लकीर से पकड़ गयी; लकीर ने उसे पकड़ लिया।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ड्राईवर को लकीर पकड़ लेती है बीच में। इसलिए वे कहते हैं, रास्ते सीधे मत बनाओ; रास्ते में भेद होना चाहिए, ताकि तंद्रा टूटे और एक-सी पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। वे यह भी सुझाव देते हैं कि कार की आवाज भी बीच-बीच में थोड़ी बदले तो ठीक होगा। बदलाहट से तंद्रा टूटेगी और सैकड़ों दुर्घटनाएं कम हो जायेंगी।

तुम्हारी जिंदगी की भी दुर्घटनाएं सैकड़ों कम हो सकती हैं। एक तो गलत पर तुम नजर मत बांधो; क्योंकि जिसको तुम देखोगे, वह तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होता जाता है। तुम गलत पर नजर बांधने के आदी हो। तुम्हारे भीतर जो-जो बुरा है, उसी पर तुम ध्यान देते हो। क्रोधी अक्सर क्रोध पर ध्यान देता है कि कैसे छुटकारा पाऊं; हालांकि वह सोचता है कि मैं छुटकारा पाने के लिए ध्यान दे रहा हूं। लेकिन उसे पता नहीं कि जितना तुम क्रोध पर ध्यान दे रहे हो, उतना ही तुम क्रोध की लकीर से सम्मोहित हो जाओगे। कामी कामवासना पर ध्यान लगाये रखता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया—सौ साल की उम्र का हो गया। पत्रकार उसके घर आये, उसकी भेंट लेने; क्योंकि वह अकेला आदमी था, जो उस इलाके में सौ साल का हो गया था। उन्होंने कई प्रश्न पूछे। उनमें एक प्रश्न यह भी था कि तुम्हारा स्त्रियों के संबंध में क्या खयाल है। नसरुद्दीन ने कहा कि यह बात ही मत पूछो मुझसे। तीन दिन पहले ही मैंने उनके संबंध में सोचना बंद कर दिया।

सौ साल का आदमी, वह भी अभी तीन दिन पहले तक उनके संबंध में ही सोच रहा था। स्त्री पकड़े रहेगी; क्योंकि तुम उससे छूटना चाहते हो। वह तुम्हारा नकारात्मक मंत्र बन गया। तुम जिससे छूटना चाहते हो, उससे तुम छूट न पाओगे। गलत को देखने अगर तुम लग गये तो तुम गलत पर ध्यान कर रहे हो।

महावीर ने ध्यान के चार रूप कहे है—दो गलत, दो सही। दुनिया में किसी भी आदमी ने गलत को ध्यान नहीं कहा है; महावीर ने कहा है। मनोवैज्ञानिक उनसे राजी होंगे। उन्होंने कहा है कि गलत ध्यान भी ध्यान तो है ही; जैसे क्रोधी ध्यानमग्न हो जाता है, क्योंकि क्रोध में सारी दुनिया मिट जाती है। क्रोध में चित्त एकाग्र हो जाता है। इसलिए, क्रोध मे बड़ी शक्ति आ जाती है।

तुमने कभी खयाल किया—क्रोधी आदमी अपने से दुगने ताकतवर आदमी को उठाकर फेंक देगा क्रोध में। होश में न होता, क्रोध में न होता तो पच्चीस दफा सोचता कि इस आदमी से झंझट लेनी कि नहीं, दुगना ताकतवर है। क्रोध में आदमी बड़ी-से बड़ी चट्टान सरका देता है; होश में सोच भी नहीं सकता। क्रोध में आदमी कुछ भी कर लेता है; क्रोध में सारी शक्ति जग जाती है। क्या होता है ? बंटती हुई शक्ति जो सब तरफ जा रही थी, वह एकाग्र हो जाती है। जैसे सूरज की किरणें इकट्ठी हो जायें तो आग पैदा हो जाती है, ऐसा क्रोध में चित्त इकट्ठा हो जाता है, आग पैदा हो जाती है। महावीर ने उसको भी ध्यान कहा है।

महावीर ने कहा है : आर्द्र और रौद्र, दो गलत ध्यान हैं। दुख में भी आदमी ध्यानमग्न हो जाता है। कोई मर गया—तब तुम रोते हो, चीखते हो, चिल्लाते हो—बस एक पर ही ध्यान अटक जाता है।

गलत ध्यान से बचना। और, तुम सभी गलत ध्यान में लगे हो। तुम्हारे जीवन की तकलीफ ही यही हैं, मूल पीड़ा और बीमारी यही है कि तुमने अपनी आंखें गलत पर जमा ली हैं। क्या-क्या गलत है, उसे छोड़ना है; और तुम सोच रहे हो कि छोड़ने के लिए ही तुम यह कर रहे हो। इस ध्यान के कारण ही तुम नहीं छोड़ पा रहे हो।

मैं तुमसे कहता हूं कि संसार की फिक्र ही छोड़ दो; तुम परमात्मा पर ध्यान लगाओ। तुम क्रोधी हो—सारी दुनिया क्रोधी है—क्रोध पर आंखें मत गड़ाओ; करुणा पर आंखें गड़ाओ। तुम, जो सही है, उसको ध्यान में लाओ और जैसे-जैसे सही में शक्ति बढ़ेगी, गलत से शक्ति विसर्जित हो जायेगी। क्योंकि, शक्ति तो एक ही है, उसे तुम दोनों तरफ नहीं लगा सकते। अगर तुमने शांत होने की चेष्टा पर ध्यान लगा दिया तो जब तुम अशांत होना चाहोगे, तब तुम पाओगे कि वह शक्ति तुम्हारे पास है; वह शांति की तरफ बह गयी। और, जिसने शांति का स्वाद ले लिया, वह अशांत होना क्यों चाहेगा। अशांत तो वही होता है, जिसने शांति का स्वाद नहीं लिया। जिसने परमात्मा का रस नहीं लिया, वही संसार में डूबता है, लिप्त होता है।

इसे बहुत ठीक से खयाल में ले लो।

नकार से बचना। नहीं से बचना। बुरे को छोड़ने की फिक्र ही मत करना; क्योंकि छोड़ने में ही तुम सम्मोहित हो जाओगे और बुरे को तुम कभी भी न छोड़ पाओगे। जिसको भी हम छोड़ना चाहते हैं, उसमें एक पकड़ आ जाती है।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक होटल में मेहमान हुआ। मैनेजर ने कहा : 'हम दे न सकेंगे कमरा। कमरा तो खाली है; लेकिन उसके नीचे एक आदमी ठहरे हुए हैं, वे बहुत उपद्रवी हैं। जरा-सी भी आवाज ऊपर हो गयी, तो वे बखेड़ा खड़ा कर देंगे। उनकी वजह से ऊपर का कमरा हमने खाली ही छोड़ दिया है।

उस आदमी ने कहा कि चिंता आप न करें, मैं तो बाजार में दिनभर उलझा रहूंगा। रात कोई ग्यारह-बारह बजे लौटकर सो जाऊंगा। तीन बजे की मुझे गाड़ी पकड़नी है। तीन घंटे मुश्किल से मैं इस कमरे में रहूंगा। कोई कारण नहीं है मेरे द्वारा उपद्रव होने का। फिर मैं ध्यान भी रखूंगा। आपने बता दिया तो ठीक किया।

वह आदमी रात बारह बजे थका-मांदा बाजार में काम करके लौटा। बिस्तर पर बैठा। एक जूता छोड़कर उसने पटका, फर्श पर गिरा तो उसे खयाल आया कि कहीं उस आदमी की नींद न टूट जाये। उसने दूसरा चुपचाप रखा और सो गया। कोई पंद्रह मिनट बाद नीचे के आदमी ने आकर दस्तक दी। दरवाजा खोला तो वह आदमी क्रोध से कंप रहा था। यह घबड़ा गया कि रात, अंधेरा, अब क्या किया जाये ! उसने कहा कि क्या भूल हो गयी; मैं तो सो गया था। उस आदमी ने कहा : 'भूल ! दूसरे जूते का क्या हुआ ? पहला गिरा, मैंने कहा कि आ गये। फिर दूसरे का क्या हुआ ? मैं सो ही नहीं पा रहा हूं। वह दूसरा जूता सिर पर लटका हुआ है। तो पूछ लूं; पता चल जाये, निश्चिंतता हो।'

सबने दूसरा जूता लटका लिया है—वह नकार का है। यह छोड़ना है, यह छोड़ना है, यह बुरा है—इतनी बुराइयां है कि जीवन छोटा मालूम पड़ता है, तुम छोड़ न पाओगे। जगह-जगह बुराई है, कोने-कोने में बुराई है, सारा जीवन बुराई से भरा है। और तुम्हारे साधु-संत तुम्हें सिर्फ अपराध से भरते हैं; क्योंकि वे तुमसे कहते हैं कि यह गलत, यह गलत, यह गलत। उनसे सही की तो तुम खबर ही न पाओगे; क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक गलत न छूटेगा, तब तक सही तुम्हें मिलेगा भी कैसे ? और उनकी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। वे यह कह रहे हैं कि जब तक अंधेरा न जायेगा, तब तक प्रकाश जलेगा कैसे !

और, मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुमने उनकी बात सुन ली, वह कितनी ही तर्कयुक्त मालूम पड़ती हो, तो तुम भटक जाओगे जन्मों-जन्मों तक। उन्हीं की बात से तुम भटके हुए हो। तुम्हें शैतानों ने नहीं भटकाया है; तुम्हारे तथाकथित संतों ने भटकाया है। क्योंकि, बात तर्कयुक्त लगती है कि जब तक गलत न छूटेगा; ठीक कैसे मिलेगा !

लेकिन कभी तुमने कोशिश की है अंधेरे को हटाने की ? पहले अंधेरा हट जाये, फिर तुम दीया जलाओगे तो फिर तुम कभी न जला पाओगे। मैं तुमसे कहता हूं, तुम दीया जलाना। अंधेरे की तुम बात ही मत करो; क्योंकि दीया जलते ही अंधेरा हट जाता है। तुम प्रकाश लाओ; अंधेरे पर ध्यान मत करो। दुनिया में कोई अंधेरे को कभी नहीं हटा पाया। बुराई कभी नहीं हटायी जा सकती; भलाई लायी जा सकती है। संसार कभी नहीं छोड़ा जा सकता; आत्मा पायी जा सकती है। और आत्मा के पाते ही संसार छूट जाता है। हम उसे पकड़े ही इसलिए हैं कि उससे बेहतर हमें दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक बेहतर न दिखाई पड़ जाये, तब तक तुम उसे छोड़ोगे भी कैसे ? तुम छोड़ना भी चाहोगे, तो भी तुम छोड़ न पाओगे। तुम लड़ोगे, परेशान होओगे; तुम अपने को थका लोगे, मिटा लोगे; लेकिन कहीं पहुंचोगे नहीं। तुम्हारी जिंदगी एक व्यर्थ की दौड़धूप हो जायेगी। फिर तुम उतर आओगे शरीर में, फिर वही चक्र शुरू हो जायेगा। इससे जो बच गया—बुराई पर ध्यान देने से—वह भलाई को उपलब्ध हो जाता है।

चित्त मंत्र है—चाहे बुराई के लिए उपयोग कर लो, चाहे भलाई के लिए। पुनरुक्ति शक्ति बन जाती है। तुमसे क्रोध होता है, स्वीकार कर लो। कितनी बार क्रोध होता है ? तुम क्रोध का पश्चात्ताप भी मत करो। तुम क्रोध से लड़ो भी मत। जितनी बार क्रोध हो, उतनी बार करुणा के कृत्य भी करो। जितनी बार लोगों को तुमसे हानि पहुंचती हो, उतनी बार लोगों को तुम लाभ भी पहुंचाओ। तुम जरा लोगों को लाभ पहुंचाने का रस भी लो। बुराई के लिए अपने को दंड मत दो; भलाई का पुरस्कार भोगो। बुराई के लिए अपने को कष्ट मत दो; थोड़ा भला करो—उसका स्वाद लो। अगर तुमसे किसी के प्रति गाली निकल गयी है, तो जाकर किसी की प्रशंसा करो; किसी के गुण भी गाओ। गाली का रस तुमने काफी लिया है, अब किसी की गुणग्राहकंता का रस भी लो।

कांटों से मत उलझो, वे हैं; ध्यान फूलों पर दो। एक दफा कांटों से तुम उलझ गये, तो फूलों तक तुम पहुंच ही न पाओगे।

कांटे बहुत हैं। और जब तक तुम पहुंचोगे, तब तक तुम इतने लहूलुहान हो जाओगे

कि फूल भीगे। और फूलों का भी। स्पर्श है, वह तुम्हें पुलकित न करेगा। तुम घावों से भर गये होओगे। फूल भी कष्ट देंगे; क्योंकि घाव अगर पहले से ही लगा हो तो फूल भी पीड़ा देगा।
धयान मत दो; ध्यान फूल पर दो। और अगर तुम फूल के रस में डूब गये तो तुम एक दिन पाओगे कि कांटे हैं ही नहीं क्योंकि फूल के रस में जो डूब जाये, उसे कांटा भी चुभ नहीं सकता। असली सवाल फूल के रस में डूबने का है; विस्मय-विमुग्ध हो जाने का है। असली बात परमात्मा की शराब पी लेने की है, तब तुम्हें इस संसार की शराबें आकर्षित न करेंगी। अन्यथा तुम लड़ोगे उन्हीं से और उन्हीं से पराजित होओगे।

बुराई से जो लड़ता है, वह बुराई से पराजित होता है। बुराई से लड़नेवाला मन बुराई को मंत्र बना लेता है; क्योंकि चित्त मंत्र है। चित्त की इस प्रक्रिया को समझो कि चित्त दोहराता है।

तुमने कभी खयाल किया? एक सात दिन अपने चित्त का निरीक्षण करो, लिखो—चित्त जो-जो दोहराता है। और तुम पाओगे एक वर्तुलाकार चित्त का भ्रमण है। अगर तुम ठीक से निरीक्षण करोगे तो तुम पाओगे—जैसे रात आती है, दिन आता है, सुबह होती है, सांझ होती है, ऐसे ही चित्त में क्रोध का बंधा हुआ समय है; प्रेम का बंधा हुआ समय है; कामवासना का बंधा हुआ समय है; लोभ का बंधा हुआ समय है। ठीक उसी समय पर लोभ तुम्हें पकड़ता है, जैसे भूख पकड़ती है; लेकिन तुमने कभी निरीक्षण नहीं किया। अन्यथा तुम अपना अट्ठाइस दिन का कलेंडर बना सकते हो और तुम लिख सकते हो कि सोमवार की सुबह मुझसे सावधान! पत्नी-बच्चे घर में जान सकते हैं; सोमवार की सुबह पिताजी से जरा दूर रहना। और, इसका उपयोग हो सकता है; क्योंकि सोमवार की सुबह अगर ठीक से निरीक्षण तुमने किया कुछ दिन तक, तो तुम पकड़ लोगे वह बिंदु, जहां वर्तुल की तरह तुम्हारा मन घूमता है। शरीर ही वर्तुलाकार नहीं है, मन भी वर्तुलाकार है।

इस जगत में सभी गतियां वर्तुलाकार हैं सभी सर्कुलर हैं। चांद-तारे गोल घूमते हैं। जमीन गोल घूमती है। सब चीजें गोल घूमती हैं। मौसम गोल घूमते हैं। तुम्हारे मन की ऋतुएं भी गोल घूमती हैं। जैसे स्त्रियों को मासिक-धर्म होता है, ठीक अट्ठाइस दिन में वर्तुल पूरा होता है। अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुषों के भीतर भी वैसी ही रासायनिक प्रक्रिया होती है अट्ठाइस दिन में जैसी स्त्रियों की; क्योंकि शरीर कुछ बहुत भिन्न नहीं है। तुमने खयाल किया कि जब स्त्रियों को मासिक-धर्म होता है, तो वे ज्यादा

चिड़चिड़ी, ज्यादा झगड़ैल, क्रोधी, उदास, परेशान, बेचैन हो जाती हैं। हिंदू बहुत होशियार थे। वे तीन-चार दिन उन्हें अलग ही कमरों में बंद कर देते थे। क्योंकि उस समय उनसे कुछ आशा करनी ठीक नहीं; उनके शरीर में इतनी रासायनिक प्रक्रिया हो रही है कि उस रासायनिक प्रक्रिया में होश रखना उन्हें मुश्किल होगा। वे बेहोश हो जायेंगी।

लेकिन, ठीक अट्ठाईस दिन पर हर पुरुष को भी ऐसा ही होता है। पुरुष का भी मासिक धर्म है। बाहर रक्त-स्राव नहीं होता; लेकिन भीतर रस-ग्रंथियों में रक्त-स्राव होता है। इसलिए दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन हर अट्ठाईसवें दिन पर तुम भी उदास, बेचैन, परेशान हो जाते हो।

तुम थोड़ा निरीक्षण करो। तब तुम पाओगे कि तुम्हारे मन का एक वर्तुल है, जो अट्ठाईस दिन में पूरा होता है, चार सप्ताह में पूरा होता है। और, उस वर्तुल में तुम धीरे-धीरे निरीक्षण की प्रक्रिया को प्रगाढ़ करोगे तो ठीक-ठीक बिंदु खोज लोगे कि कब क्या होता है। तब तुम बड़े हैरान होओगे। तब तुम पाओगे कि तुम क्रोधित किसी और के कारण नहीं होते; तुम क्रोधित तुम्हारे भीतरी कारणों से होते हो, दूसरा तो सिर्फ बहाना है। तब तुम दूसरे पर जिम्मेवारी भी न डालोगे। तब तुम क्रोधित होओगे तो तुम दूसरे से क्षमा मांगोगे कि मुझे माफ करना, अब मेरी दशा, मौसम ठीक नहीं। और यह संयोग की बात है कि तुम सामने पड़ गये, कोई दूसरा पड़ता तो उस पर यह उपद्रव होता।

आत्म-निरीक्षण से तुम इस बात को सहज ही समझ लोगे कि मन एक वर्तुल में घूम रहा है। वह एक मंत्र है। और अगर तुम इसे न समझे तो तुम उस वर्तुल में भटकते ही रहोगे। इसलिए हिंदुओं ने संसार को चक्र कहा है—वह घूमता है। और तुम वही-वही कर रहे हो बार-बार। तुम यह भी मत सोचना कि तुम कुछ नया कर रहे हो, सभी लोग वही कर रहे हैं। जब पहली दफा तुम प्रेम में पड़ते हो तो तुम सोचते हो कि संसार में शायद ऐसी अनूठी घटना कभी घटी नहीं। रोज घट रही है। वही सारे लोग करते रहे हैं। वही पशु-पक्षी कर रहे हैं, पौधे कर रहे हैं, आदमी कर रहा है। कुछ प्रेम तुम्हें ही घट गया है, ऐसा नहीं है; सभी को वैसा ही घटा है। क्रोध भी सभी को वैसा ही घटा है।

इस वर्तुल के बाहर सिर्फ एक चीज है—वह ध्यान है, जो अपने-आप नहीं घटती। बाकी सब अपने-आप घटेगा, तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम चक्के पर बैठे भर

रहो, चक्का अपने-आप घूम रहा है, तुम उसमें बंधे हुए घूमते रहोगे। सिर्फ एक घटना है जो इस वर्तुल के बाहर है कि तुम छलांग लगाकर इस चक्र के बाहर निकल जाओ—वह ध्यान है। वह अपने-आप नहीं घटता है। वह कभी किसी बुद्ध को घटता है।

पश्चिम के बहुत बड़े इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने हिसाब लगाया कि अब तक केवल छह आदमी इस चक्र के बाहर हुए हैं—पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। छह न हुए हों, साठ हुए हों, संख्या कुछ बहुत बड़ी नहीं है। वह एक अनहोनी घटना है। न तो प्रेम, न क्रोध, न लोभ—ये सामान्य घटनाएं हैं; सभी को घट रही हैं; जानवरों को घट रही हैं। इससे तुम आदमी नहीं हों। तुम्हारे जीवन में आदमी होने का सूत्र तो उसी दिन घटेगा, जिस दिन तुम इस चित्त के मंत्र के बाहर हो जाओ; चित्त के वर्तुलाकार भ्रमण के बाहर हो जाओ। यह चित्त का चक्र टूट जाये और तुम इसके बाहर हो जाओ—वह ध्यान है।

ध्यान वर्तुलाकार नहीं है। ध्यान एक स्थिति है; मन एक गति है। ध्यान ठहराव का नाम है; मन भटकाव का नाम है। और, भटकाव भी कुछ नयी जगहों पर नहीं, वही जगह फिर-फिर, वही जगह फिर-फिर। कोल्हू के बैल की तरह तुम घूम रहे हो। सचेत होकर देखोगे तो समझ में आ जायेगा कि यह कोई सिद्धांत नहीं है, यह तथ्य है। यह कोई दर्शन-शास्त्र का सिद्धांत नहीं है; तुम्हारे मन का वर्तुलाकार भ्रमण, तुम्हारे मन का मंत्र की भांति होना—यह तुम्हारे जीवन का तथ्य है।

जिन्होंने जीवन को समझने की कोशिश की है, उन्होंने इसका आविष्कार किया है। यह कोई विचार से निर्णीत सिद्धांत नहीं है; अनुभव से पाया गया तथ्य है। तुम भी इसे अनुभव से पा सकते हो। मैं कहता हूं, तुम्हें इसलिए मानने की जरूरत नहीं। शिव कहें, इसलिए मानने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे पास आंखें हैं। आंख बंद करके मन को जरा कुछ दिनों तक देखते रहो, तब तुम हैरान हो जाओगे। तब तुम पाओगे कि तुम इस चाक से बंधे हो। और, सारी प्रकृति इसी चाक से बंधी है। तुम्हारी मनुष्यता की घोषणा इसमें नहीं है, तुम्हारी गरिमा इसमें नहीं है; तुम्हारी गरिमा इसके बाहर उतर जाने में है। उसी क्षण तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो या शिवत्व को उपलब्ध हो जाते हो।

चित्त मंत्र है। पुनरुक्ति चित्त का स्वभाव है—रिपीटीशन। इसलिए चित्त के जगत में कभी कोई नयी चीज नहीं घटती। चित्त के जगत में कभी भी कोई मौलिक तत्व नहीं घटता; वहां सब बासा और पुराना है—सब उच्छिष्ट ! तुम उसी-उसी की जुगाली

करते हो। भैंस को देखा है जुगाली करते! भोजन कर लेती है, फिर उसको निकाल कर मुंह में जुगाली करती रहती है। चित्त जुगाली कर रहा है। तुम जो भी ले लेते हो भोजन की तरह चित्त में, फिर चित्त उसकी जुगाली करता रहता है। पढ़ो एक किताब, फिर चित्त में वह चलने लगेगा। मुझे सुनकर जाओगे, फिर चौबीस घंटे वह चित्त में चलने लगेगा। एक चक्र शुरू हो गया। चित्त फिर उसे चबायेगा, पचायेगा, पुनरुक्त करेगा; लेकिन चित्त में नया कभी नहीं घटता। ओरिजनल—मौलिक चित्त में कभी नहीं घटता; और, आत्मा मौलिक तत्व है। परमात्मा परम मौलिकता है। वह नवीनता है। उससे ज्यादा ताजा और कुछ भी नहीं। चित्त से वह उपलब्ध न होगा। चित्त के मंत्र को तोड़ना पड़ेगा।

ये सूत्र ठीक से समझना। चित्त ही मंत्र है और प्रयत्न साधक है—दूसरा सूत्र।

प्रयत्न का अर्थ है: इस चित्त के चक्र के बाहर निकलने की चेष्टा। जो निकल गया, वह सिद्ध है; जो निकलने की चेष्टा कर रहा है, वह साधक है। और महत प्रयत्न करना होगा, तभी तुम निकल पाओगे। उतना ही प्रयत्न करना होगा, जितना चित्त को बांधने में तुमने किया है। लेकिन, बड़ी कठिनाई यह है कि उसी चित्त से तुम देखते हो। इसलिए, तुम जो देखते हो, चित्त उसे अपने ही रंग में रंग देता है। यह बड़ी कठिनाई है।

मैं तुमसे बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो; लेकिन तुम नहीं सुन रहे हो, तुम्हारा चित्त बीच में खड़ा है। मैं जो भी कहूंगा, चित्त अपना रंग उसपर फेंकेगा और उसको अपने अनुकूल बदल लेगा; उसका अर्थ बदल जायेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन शराब पिये एक बस में सवार हुआ; एक बूढ़ी औरत भी, जिसके बाल सब सफेद हो गये थे। उसे बड़ी दया आई। मुल्ला अभी जवान था; मुंह से शराब की बदबू आ रही थी। तो उस बूढ़ी औरत ने उससे कहा, 'बेटे, तुम्हें होश है या नहीं? तुम सीधी नरक की यात्रा पर जा रहे हो।' मुल्ला उचककर खड़ा हो गया। उसने कहा, 'रोको भाई, मैं गलत बस में सवार हो गया हूं।'

वह जो चित्त है, अगर शराब में डूबा है तो हर चीज को अपने रंग में रंग लेगा। वे समझे कि यह बस नरक जा रही है। तुम्हारा चित्त चौबीस घंटे यही कर रहा है। इसलिए, बड़ी-से-बड़ी जटिल बात है—वह यह कि चित्त को अलग करके सुनने की चेष्टा। वही श्रावक है। वही सम्यक श्रवण है कि चित्त को तुम हटा दो और सीधा सुनो।

प्रयत्न साधक है। चेष्टा करनी पड़ेगी। महत चेष्टा करनी पड़ेगी। आलस्य में पड़े

रहने से तुम बाहर न हो पाओगे इस वर्तुल के। कैसे कोई पड़ा-पड़ा वर्तुल के बाहर हो

पायेगा ? पड़ा-पड़ा तो वर्तुल घूमता ही रहेगा, चक्र घूमता ही रहेगा और डर के कारण कि कहीं तुम गिर न जाओ, तुम उसे जोर से पकड़े रहोगे।

अगर तुमने कभी जंगल में बहेलियों को देखा है तोतों को पकड़ते तो बहेलिये बड़ी सीधी तरकीब का उपयोग करते हैं। वही तरकीब तुम्हारा चित्त तुम्हारे लिए कर रहा है। वे रस्सी बांध देते हैं। तोते उसपर आकर बैठते हैं, वजन के कारण उलटे होकर लटक जाते हैं। रस्सी पर बैठा नहीं जा सकता। तोता रस्सी पर आकर बैठता है, वजन के कारण उलटा हो जाता है, उलटा लटककर घबरा जाता है। घबराकर रस्सी को जोर से पकड़ लेता है कि कहीं गिर न जाऊं—अब मुश्किल में पड़ा। अगर छोड़े रस्सी को तो डर लगता है गिर पड़ूंगा। कुछ पकड़ने की जरूरत नहीं, वे अपने-आप पकड़े गये। वह बहेलिया आकर उनको पकड़कर ले जायेगा। यह तोता भूल ही गया कि मेरे पास पंख है; गिरने का कोई कारण नहीं, कोई भय नहीं। लेकिन, एक दफा रस्सी में उलटे लटककर तुमको भी यह भय हो जाता है कि चक्के से अगर उतरे तो क्या होगा—खो जायेंगे, भटक जायेंगे !

हैमिंग्वे के एक पात्र ने एक उपन्यास में कहा है कि दुख मुझे स्वीकार है खालीपन की बजाए—आई विल चूज सफरिंग दैन नथिंगनेस—ना-कुछ मैं न चुनूंगा; इससे तो दुख चुन लेना बेहतर है। खाली होना तुम पसंद न करोगे। नरक भी ठीक है; कम-से-कम भरे तो हो, वह तोता लटका है। डर रहा है कि कहीं सब न खो जाये। शक उसे भी हो रहा है कि फंस गये। लेकिन फंसा होना ठीक है कम से कम गिरने से। इस चाक को तुम्हीं पकड़े हुये हो। चाक तुम्हें नहीं पकड़े हुये है। मन तुम्हें नहीं पकड़े हुये है। अगर मन तुम्हें पकड़े होता तो फिर बुद्ध और महावीर पैदा नहीं हो सकते ; क्योंकि वह उनको भी पकड़े रहता। वे भागते क्या होता ! मन उनको पकड़े रहता। मन उनका पीछा करता। नहीं, मन तुम्हें नहीं पकड़े है, मन को डर के कारण तुमने ही पकड़ा हुआ है। और तुम इतने जोर से पकड़े हो और फिर भी तुम जाते हो संत और साधुओं के पास पूछने कि मन से छुटकारा कैसे हो। मन से छुटकारे के लिए किसीसे पूछने की कोई जरूरत नहीं। इतना ही समझ लेना जरूरी है कि तुमने पकड़ा है। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे जीवन के लिये और कोई जिम्मेवार नहीं है। पर पकड़ना अब सुविधापूर्ण हो गया है क्योंकि तुम सदा से पकड़े हो। आदत हो गई है, उसमें कुछ श्रम नहीं लगता। छोड़ने में श्रम लगेगा। अगर तुमने मुट्ठी जन्मों-जन्मों से बांध रखी है, तो खोलना मुश्किल

होगा। जड़ हो गयी हैं अंगुलियां। हाथ बंध गया है। बस, इतनी ही बात है। थोड़े-से प्रयत्न की जरूरत है कि मांसपेशियां फिर सजग हो जायें, खून फिर हाथ, अंगुलियों में दौड़ने लगे और तुम खोलने में समर्थ हो जाओ। जिसे बांधा है, वह खुल सकता है, इतना तो पक्का है। नहीं तो बांधते कैसे ? मुट्ठी बंधती है, क्योंकि खुल सकती है। कभी खुली ही रही होगी, तभी बंधी है; फिर कभी खुल सकती है। लेकिन, अगर बहुत दिन तक बांधकर रखी तो खोलना मुश्किल हो जाता है। बस, इतनी ही अड़चन है। प्रयत्न की इसलिए जरूरत है।

प्रयत्न का अर्थ है : चित्त को छोड़ने के लिए श्रम करना होगा। और, चित्त बार-बार तुम्हें समझाएगा कि क्या कर रहे हो, क्या पागलपन कर रहे हो; क्योंकि तुमने छोड़ा कि चित्त मरा।

प्रयत्न साधक है। तुम जब तक साधक न होओगे, तुम प्रयत्न न करोगे। प्रयत्न तुम थोड़ा-बहुत करते भी हो; लेकिन वह हमेशा आधा-आधा है। और आधे मन से किये गये प्रयत्न का कोई अर्थ नहीं। वह ऐसा है, जैसे एक हाथ से चाक को पकड़े है और दूसरे से छोड़ा है। फिर इससे पकड़ा और उससे छोड़ा। उससे कुछ हल न होगा। नहीं; आधे-आधे से कोई प्रयोजन नहीं है।

एक व्यापारी ने अपनी पत्नी को सांझ कहा कि एक बड़ा ग्राहक आ रहा है, लाखों रुपयों का सौदा होना है तो मैं जाता हूं; ताजमहल में भोजन पर निमंत्रण दिया है। वह गया। रात—आधी रात—पीये, खाये-पीये हुए लौटा। पत्नी ने कहा, 'कुछ हुआ ?' उसने कहा, 'फिफ्टी-फिफ्टी, आधा-आधा।' पत्नी ने कहा, 'चलो, कुछ तो हुआ !' फिर पत्नी ने सोचा कि मतलब क्या है आधे-आधे का। तो उसने पूछा, जब वह सोने ही जा रहा था—वह पति, कि फिफ्टी-फिफ्टी का मतलब ? तो उसने कहा, 'मैं तो पहुंचा, वह ग्राहक नहीं आया।'

तुम जब भी आधे-आधे हो, बस ऐसा ही है। कुछ होगा नहीं; वह फिफ्टी है नहीं। और, सब जगह तुम आधे-आधे हो; पूरे तुम कहीं भी नहीं हो। जहां तुम पूरे हो जाते हो, वहीं जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। तब तुम उबलते हो। तब तुम सौ डिग्री पर वाष्पीभूत होते हो। तब पानी भाप बनता है। तब तुम नीचे की तरफ नहीं बहते, जैसा कि पानी बहता है; तब भाप की तरह ऊपर उठते हो। तब तुम्हारी दिशा अधोगामी नहीं रह जाती; ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

प्रयत्न साधक है। तुम्हें आलस्य छोड़ना पड़ेगा।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि सुबह का ध्यान जरा मुश्किल है; सुबह छह बजे आने में कठिनाई होती है। तुम समझ ही नहीं रहे हो कि तुम क्या कह रहे हो। अगर तुम्हें छह बजे उठने में कठिनाई हो रही है, तो तुम्हें मन के बाहर आने में तो भयंकर कष्ट होगा। अगर छह बजे उठने में तुम्हें इतनी मुश्किल मालूम पड़ रही है, तो जीवन के चाक से छलांग तुम कैसे लगाओगे ? एक छोटी-सी आदत कि तुम सुबह छह बजे नहीं उठते रहे हो, बस दो-चार दिन आलस्य पकड़ेगा। पर आलस्य को तुम जीतने देते हो और आलस्य की कीमत पर ध्यान को खोने को तुम तैयार हो, तो ध्यान का तुम्हारे मन में कोई मूल्य ही नहीं है। अगर मूल्य होता तो यह सवाल तुम उठाते न।

कोई आता है वह कहता है कि चार ध्यान में तो थकान होती है; अगर दो छोड़ दें ? तुम चार ही छोड़ सकते हो। क्योंकि चार में थकान होती है, दो में आधी होगी; लेकिन होगी तो। और, मैं जानता हूं कि अगर मैं तुम्हारे मन को सुविधा दूं कि दो छोड़ दो तो कल तुम आओगे कि एक ही करें तो ? क्योंकि वही मन...! क्योंकि दो में भी तो थकोगे ही।

अगर तुम उस सूत्र को मानकर चलते हो तो तुम आज नहीं कल आलस्य में डूबना ही पसंद करोगे; क्योंकि कुछ भी करने में श्रम तो होगा। ध्यान रहे—जीवन श्रम है, मृत्यु विश्राम है। तो अगर मरना हो तब कुछ करने की जरूरत नहीं। अगर जीना हो तो कुछ करना पड़ेगा। और, अगर विराट जीना हो तो विराट उद्यम करना होगा। अगर परमात्मा को पाना हो तो ऐसा छोटा-छोटा प्रयास काम नहीं करेगा। तुम्हारा पूरा जीवन ही प्रयास बन जाये, तुम रत्ती-रत्ती दांव पर लगा दो अपने को; कुछ भी तुमने बचाया तो तुम चूक जाओगे। यहां पूरा ही दांव लगेगा, तो ही तुम बच सकते हो। इसलिए थोड़े-से लोग उपलब्ध हो पाते हैं। कोई कारण नहीं, सिवाय आलस्य के।

तुम ध्यान भी करते हो तो तुम ऐसे करते हो कि कहीं पैर में चोट न लग जाये; कि कहीं किसी का धक्का न लग जाये; कि ऐसा करें कि थक भी न जायें। तुम कर ही क्यों रहे हो ? तुमसे कहा किसने ? लेकिन, तुम साफ भी नहीं हो। तुम ऐसे धुंधलके में जीते हो यहां सब अंधेरा-अंधेरा है। तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि तुम यहां आ कैसे गये। कैसे चले आये तुम ? कोई आ रहा था, तुम साथ आ गये; सोचा कि चलो देखें, दूसरे क्या कर रहे हैं।

तुम ऐसे ही धक्के खा रहे हो। और ऐसा अनंत जन्मों से चल रहा है। लेकिन धक्कों से कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता। मंजिल कोई संयोग नहीं है कि तुम किसी भी भांति

पहुंच जाओगे। मंजिल एक गंतव्यपूर्ण यात्रा है। मंजिल एक दिशा की तरफ सारे जीवन की धारा को लेकर चलने का श्रम है। मंजिल एक संकल्प है। संकल्प करते ही तुम्हारा मन एक धारा में आ जाता है; शक्ति इकट्ठी हो जाती है। तो ऊर्जा तुममें महान है। तुम जितना सोचते हो कि इतनी कम शक्ति है कि इतने जल्दी थक जाओगे, तो तुम गलती में हो।

मनुष्य के शरीर में शक्ति के, ऊर्जा के तीन तल हैं। एक तल ऊपर का है, जो रोजमर्रा काम के लिए है; जैसे तुम जेब-खर्च के लिए खीसे में कुछ रुपये डाल रखते हो। वह तुम्हारी पूरी संपदा नहीं है; कुछ जेब-खर्च के लिए है कि बाजार गये तो कुछ सामान वगैरह लाना है—कुछ रुपये।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा गांव से गुजर रहा था। बाहर अंधेरा था। चार आदमियों ने पकड़कर उसपर हमला कर दिया। उसने इस भयंकर ढंग से लड़ाई की कि चारों को पछाड़ दिया। बामुश्किल वे चार उसपर कब्जा कर पाये—बामुश्किल! और, जब उसके खीसे में हाथ डाला तो केवल सात पैसे थे। तो उन्होंने कहा, 'हद कर दी, नसरुद्दीन! सात पैसे के लिए...? नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं नहीं समझा कि तुम सात पैसे के लिए लड़ रहे हो। बायें पैर के जूते में पांच सौ रुपये छिपा रखे हैं।' लेकिन, तब उन्होंने भी हिम्मत न की—उसका बायां जूता खोलने को; क्योंकि जिसने सात पैसे के लिए ऐसा भयंकर श्रम किया...। उन्होंने कहा, 'नमस्कार! फिर कभी...।'

वह जो तुम्हारी रोजमर्रा की ऊर्जा है, वह सात पैसे से ज्यादा नहीं है। वह रोज के काम के लिए है—उठना, बैठना भोजन करना, पचाना, सोना, कामधाम; ऊपर का अंग है; खीसे में पड़े हुए पैसे हैं। जब तुम ध्यान शुरू करते हो, वह चुक जाती है। जल्दी चुक जाती है; क्योंकि, ध्यान उसने कभी किया नहीं। एक नया क्रम शुरू हो गया। अगर तुम उसकी ही बात मानकर रुक गये, तो तुम कभी ध्यान न कर पाओगे। उसकी तुम सुनो मत। अगर तुम किये ही गये तो जल्दी ही तुम पाओगे कि दूसरे तल की ऊर्जा संलग्न हो गयी।

कई दफा तुम्हें अनुभव भी होता है—तुम बैठे हो रात,सोने जा रहे थे, ऐसी नींद आ रही थी कि पलक खुलते नहीं खुलती थी कि तत्क्षण घर में आग लग गयी। फिर तुम सो पाते हो? फिर तुम कहते हो, मुझे नींद आ रही है? नहीं, नींद तिरोहित हो जाती है। कहां से यह ऊर्जा आई? अभी तुम झपकी खा रहे थे और तुमसे कोई कहता कि गीता पढ़ो तो तुम कहते हो, नहीं भाई, मुश्किल है। लेकिन घर में आग लग गयी!

तो गीता छोड़ सकते थे लेकिन घर में आग लग गई अब तुम दौड़ रहे हो, भाग रहे हो, बुझा रहे हो और आग भी बुझ जायेगी, तो भी इस रात तुम सोनेवाले नहीं। अब तुम जागे ही रहोगे; कितनी ही कोशिश करो सोने की, नींद न आयेगी। क्या हुआ ? दूसरा तल, जो रोजमर्रा शक्ति का नहीं है—संरक्षित तल—टूट गया। उसके टूट जाने के कारण तुम इतनी ऊर्जा से भर गये हो कि सबकी नींद खो गयी।

अगर तुमने ध्यान का प्रयोग जारी रखा और तुम थके न, तो जल्दी ही दूसरी ऊर्जा उपलब्ध होगी। उसके उपलब्ध होते ही तुम पाओगे कि कितना ही ध्यान करो, शरीर थकनेवाला नहीं है। कुछ भीतर खर्च होनेवाला नहीं है। यह भी दूसरा तल है।

एक तीसरा तल है। यह दूसरा तल तुम्हारा खजाना है, यह भी चुक सकता है; लेकिन इतनी आसानी से नहीं, जितनी आसानी से पहला तल चुकता है। यह भी एक दिन चुकेगा। महत उपाय तुम करते रहोगे ध्यान के तो एक दिन यह भी चुकेगा। और, तब तीसरा तल टूटता है। वह तल तुम्हारा नहीं; वह तल परमात्मा का है, वह कभी भी नहीं चुकता। लेकिन, अगर तुमने आलस्य किया तो तुम दूसरे तल पर ही नहीं पहुंचोगे; तीसरे पर तो पहुंचने का कोई सवाल नहीं।

परमात्मा परम ऊर्जा है; तुम्हारे भीतर ही छिपा है।

पहला तल तुम्हारे मन का, दूसरा तल तुम्हारी आत्मा का, तीसरा तल परमात्मा का। मन को चुकाओ तो आत्मा की ऊर्जा उपलब्ध होगी। आत्मा को भी चुका दो तो परमात्मा की ऊर्जा उपलब्ध होगी—जो शाश्वत है; जिसके फिर चुकने का कोई उपाय नहीं। फिर तुम विराट के साथ एक हो गये।

इसलिए शिव कहते हैं : प्रयत्न साधकः। प्रयत्न सतत गहरा, और गहरा प्रयत्न साधक है। उस समय तक प्रयत्न करते जाना है, जब तक कि तीसरा तल न टूट जाये, तुम उस परम ऊर्जा को उपलब्ध न हो जाओ। फिर तुम सिद्ध हो। फिर विश्राम किया जा सकता है। उसके पूर्व विश्राम आत्मघात है।

तीसरा सूत्र है : गुरु उपाय है।

यह जो जीवन की खोज है, तुम अकेले न कर पाओगे; क्योंकि अकेले तो तुम अपने वर्तुल में बंद हो। तुम्हें उसके बाहर दिखाई भी नहीं पड़ता। उसके बाहर कुछ है, इसकी खबर भी तुम्हें नहीं है। तुम जो हो—अपनी खोल में बंद—तुम समझते हो, यही जीवन है। यह खबर तुम्हें बाहर से किसी को देनी पड़ेगी, जिसने इससे विराट जीवन को जाना हो। तुम अपने घर में कैद हो। तुम्हें पता भी नहीं कि घर के बाहर खुला

आकाश है, चांद-तारे हैं, यह तो कोई जो चांद-तारों को देखकर आया हो और तुम्हें घर में दस्तक दे और कहे कि बाहर आओ, कब तक भीतर बैठे रहोगे।

पहले तो तुम यही पूछोगे कि बाहर जैसी कोई चीज भी है ? यही तो लोग पूछते हैं कि परमात्मा जैसी कोई चीज है; आत्मा जैसी कोई चीज है ? और तुम चाहते हो कि सिद्ध कर दे कोई घर के भीतर बैठे हुए कि आकाश है। कैसे सिद्ध करेगा ? घर के भीतर बैठे, आकाश है—यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? तुम्हें चलना पड़ेगा साथ। वह जो कह रहा है कि आकाश है, उसके पीछे तुम्हें दो-चार कदम उठाने पड़ेंगे; क्योंकि आकाश दिखाया जा सकता है, सिद्ध नहीं किया जा सकता है; सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। और, अगर कोई आकाश को सिद्ध करना चाहेगा घर के छप्पर के भीतर, तो तुम उसको हरा सकते हो; क्योंकि तुम कहोगे—कहां की बातें कर रहे हो, छप्पर है। यहां तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता; दीवालें हैं। क्या प्रमाण है कि बाहर कुछ है ? तुम थोड़ा-सा आकाश भीतर लाकर मुझे दिखा दो। तो आकाश कोई वस्तु तो नहीं जो कि भीतर लायी जा सके; कि आकाश का एक टुकड़ा काटकर हम भीतर ले जायें; तुम्हें दिखा दें नमूना ताकि फिर तुम बाहर जा सको। नहीं, परमात्मा का कोई खंड लाकर तुम्हें दिखाया नहीं जा सकता; तुम्हें जाना होगा।

इसलिए, गुरु उपाय है। गुरु का केवल इतना ही अर्थ है : जिसे अनुभव हुआ हो, जिसने जाना हो, जो कारागृह से छूट गया हो—वही तुम्हें खबर दे सकता है कि तुम कारागृह में हो; और, वही तुम्हें खबर दे सकता है कि छूटने का उपाय है; और वही तुम्हें रास्ता बता सकता है कि आओ मेरे पीछे, इस कारागृह में भी द्वार है, जहां से बाहर निकला जा सकता है। इस कारागृह में ऐसे भी द्वार हैं, जहां के संतरी सोये हुए हैं। इस कारागृह में ऐसे भी द्वार हैं, जहां के संतरी बड़े सजग हैं और अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, तो तुम और मुसीबत में पड़ जाओगे, अभी कम-से-कम तुम कारागृह में मुक्त हो। अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, जहां संतरी सजग हैं, जहां मुख्य-द्वार है—तो तुम काल-कोठरी में डाल दिये जाओगे; तो कारागृह और छोटा हो जायेगा। और, ध्यान रहे—नकार से निकलने की कोशिश में तुम काल-कोठरी में गिर जाओगे।

अगर तुम लड़े बुराई से, तो तुम और भी बुराई में फेंक दिये जाओगे। वह मुख्य द्वार है; लेकिन वहां से कोई कभी निकल नहीं सकता। कोई कभी निकला नहीं। क्योंकि, मुख्य-द्वार पर पहरा देना पड़ता है, मुख्य-द्वार पर सब सुरक्षा रखनी पड़ती है।

लेकिन इस कारागृह में ऐसे द्वार भी हैं जो गुप्त हैं, ऐसे द्वार भी हैं जहां कोई पहरा नहीं है, क्योंकि, उस तरफ कोई कैदी ध्यान ही नहीं देता। कैदी भी ध्यान देता है—मुख्य-द्वार की तरफ।

मैंने सुना है, एक कारागृह में—फ्रांस में ऐसा हुआ, क्रांति के दिनों में कि कारागृह के कैदियों ने बगावत कर दी। कैदी बगावत न करें तो ठीक है। कोई दो हजार कैदी थे और कोई बीस संतरी थे, कभी भी छूट सकते थे। बीस संतरियों की औकात क्या! बगावत नहीं की थी, क्योंकि, कैदी कभी इकट्ठे नहीं होते। कैदी एक-दूसरे के भी दुश्मन होते हैं। साथ होने के लिए इतनी भी सरलता नहीं होती। मित्रता बनाने का उपाय नहीं होता; एक-दूसरे के शत्रु होते हैं। इसलिए बीस संतरी काफी थे। फिर बगावत कर दी, कैदी इकट्ठे हो गये।

उन्होंने बगावत कर दी तो जो प्रधान जेलर था, वह घबड़ाया। उसने कहा कि क्या करें! उसने पहला काम यह किया कि बीस संतरियों से कहा, 'मुख्यद्वार की फिक्र छोड़ दो। तुम जाकर छोटी खिड़कियों और दरवाजों पर खड़े हो जाओ।' संतरियों ने कहा भी कि यह निर्णय बड़ा गलत है। उस जेलर ने कहा, 'तुम फिक्र मत करो। मुख्य-द्वार बिलकुल छोड़ दो।'

मुख्य-द्वार खाली छोड़ दिया गया। वहां एक भी संतरी न था, लेकिन कोई कैदी भाग न सका; क्योंकि, छोटे द्वारों पर पहरा लगा दिया गया। जिनपर कभी पहरा न था, उनपर पहरा लगवा दिया गया। और जहां सदा पहरा था, वहां से बिलकुल हटा दिया गया। अगर चाहते तो सभी कैदी बाहर निकल जाते।

पीछे, उस जेलर से उसके संतरियों ने पूछा कि हम समझे नहीं, तरकीब काम कर गयी। तो उसने कहा कि बगावत का मतलब है कि कोई बाहर का आदमी भीतर पहुंच गया। इन कैदियों में कोई खुला आदमी बाहर से भीतर पहुंच गया है—कोई आदमी जो जानता है। और, जो भी जानता है, वह छोटे द्वारों से निकलने की चेष्टा करवायेगा। जो नहीं जानता, वह हमेशा मुख्य-द्वार से निकलने की कोशिश करेगा। तो कल तक हम मुख्य-द्वार पर पहरा दे रहे थे; क्योंकि, सब अज्ञानी थे भीतर, अब लगता है कि कोई गुरु पहुंच गया।

जीवन में बुराई से लड़कर निकलने का द्वार मुख्य मालूम होता है। तुम्हारा मन कहता है कि पहले बुराई को मिटाओ, तभी तो साधुता उपलब्ध होगी; पहले गलत को छोड़ो तभी तो ठीक के लिए राह बनेगी; पहले संसार को बाहर निकालो, तभी तो

परमात्मा का सिंहासन खाली होगा। यह मुख्य द्वार है। गुरु तुम्हें इससे निकलने को न कहेगा; क्योंकि , इससे कोई कभी नहीं निकल पाता। वहां पहरा भयंकर है और जो आदमी वहां से निकलने की कोशिश करता है, वह और छोटी काल-कोठरी में डाल दिया जाता है।

मेरे देखे, तुम्हारे साधु-संत तुम से भी बुरे कारागृहों में बंद हैं। तुम्हारे पास आंखें नहीं हैं, इसलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। गृहस्थ तो परेशान हैं ही, तुम्हारे साधु तुमसे भी बुरी तरह परेशान हैं। तुम्हारे पास कम-से-कम छोटा-सा आंगन भी है, जिसमें तुम थोड़ी स्वतंत्रता अनुभव करते हो; उनका आंगन भी छिन गया है। वे जेल के भीतर हैं; लेकिन, जेल के भीतर जो स्वतंत्रता साधारण कैदी को मिलती है, वह भी उनको नहीं है। वे चौबीस घंटे काल-कोठरी में बंद हैं।

मेरे पास साधु-संन्यासी आते हैं; उनका मन बिलकुल ही रुग्ण और विक्षिप्त है।

एक जैन मुनि ने मुझे कहा है कि साठ साल का हो गया हूं, चालीस साल से मुनि हूं; लेकिन निरंतर मन में यह शक बना रहता है कि मैंने कहीं भूल तो नहीं की; कहीं ऐसा तो नहीं है कि साधारण संसारी आनंद भोग रहा है और मैं नाहक कष्ट पा रहा हूं। यह संदेह उठाना बुद्धिमान आदमी के लिए स्वाभाविक है। यह आदमी नासमझ नहीं है, यह आदमी समझदार है। यह संदेह उठना स्वाभाविक है; क्योंकि इसको दिखाई पड़ रहा है कि पाया तो मैंने कुछ भी नहीं; ये चालीस साल क्रोध, काम, लोभ—इनसे ही लड़ने में बीत गये, मिला तो कुछ नहीं। और, क्रोध मिट गया हो, ऐसा भी नहीं है; सिर्फ छिप गया है।

तो, दूसरों से तुम छिपा सकते हो, खुद से कैसे छिपाओगे ? खुद तो तुम्हें पता है कि दबाकर बैठे हो। सज्जन मालूम पड़ते हो, अपराध नहीं करते हो; लेकिन अपराधी भीतर मौजूद है, कभी भी कर सकता है; और, किसी भी क्षण मौका मिल जाये तो करेगा। एक कारागृह और छोटा हो गया है। थोड़ी बाहर स्वतंत्रता थी घूमने की, वह भी छिन गयी है; कालकोठरी है।

प्रमुख द्वार से जो निकलने की कोशिश करेगा, वह और भी बंध जायेगा। लेकिन, गुप्त द्वार हैं; पर गुप्त द्वार गुरु बता सकता है। चाबियां हैं, जिनसे गुप्त द्वार खुल जाते हैं। जो बाहर जा चुका है, वही तुम्हें बाहर ले जा सकता है।

शास्त्र तुम्हें साथ दे सकते हैं कि तुम कारागृह में ही पढ़ते रहो; लेकिन तुम्हें बाहर नहीं ले जा सकते; क्योंकि, शास्त्रों का अर्थ कौन करेगा ? तुम ही करोगे। शास्त्रों से

समझेगा कौन ? तुम ही समझोगे। तुम अपने हिसाब से समझोगे। तुम ही अगर समझदार होते, तो शास्त्र की कोई जरूरत न थी। तुम समझदार नहीं हो, यह पक्का है। और, शास्त्र से जब नासमझ अर्थ निकालता है तो और झंझटों में पड़ जाता है। नहीं, तुम्हें जीवित शास्त्र चाहिए। गुरु का अर्थ है : जीवित शास्त्र। जीवित व्यक्ति को खोजो, जो तुम्हें राह दे सके।

शिव कहते हैं : गुरु उपाय है; इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। और, तुमने अगर अपने ही हाथ से चेष्टा की सुलझाने की तो उलझ जाने का ज्यादा डर है; क्योंकि मन बड़ा सूक्ष्म यंत्र है। अक्सर होता है कि हम ही सुलझा लेंगे। अक्सर होता है कि तुम्हारी घड़ी बंद हो गयी तो दिल होता है, खोलकर और ठीक कर लें। सभी का दिल होता है। और, जितना नासमझ आदमी हो, उतना जल्दी दिल होता है। छोटा बच्चा तो बिलकुल खोलकर बैठ ही जायेगा; क्योंकि उसे यह लगता ही नहीं कि इसमें ऐसी अड़चन क्या है। चलती थी, अभी नहीं चलती; जरा देखें खोलकर। घड़ी कोई बहुत जटिल यंत्र नहीं है। लेकिन, अगर तुमने सुधारने की कोशिश की तो तुम्हारी हालत वैसी हो जायेगी, जैसे—

मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन घड़ीसाज की दुकान पर गया। उसने अपनी घड़ी जो कि खंड खंड थी, टुकड़े-टुकड़े थी, वह उसकी टेबल पर रखी। उस आदमी ने चौंककर पहले तो घड़ी को देखा—घड़ीसाज ने, फिर नसरुद्दीन को देखा। नसरुद्दीन ने कहा कि हैरान मैं हूं कि यह मेरे हाथ से गिर गयी। उस घड़ीसाज ने कहा कि हैरान मैं हूं कि तुमने उसे उठाया क्यों। अब इसमें कुछ किया नहीं जा सकता। और, यह गिरने से नहीं बिगड़ी है। नसरुद्दीन ने कहा कि थोड़ी मैंने सुधारने की जरूर कोशिश की। उसने कहा, 'इसे ले जाओ। अब इसे सुधारा नहीं जा सकता।'

घड़ी बिलकुल साधारण यंत्र है, कोई जटिल नहीं है; मन बहुत जटिल यंत्र है। तुम्हें मन की जटिलता का पता ही नहीं। मन से जटिल इस जगत में कुछ भी नहीं है।

तुम्हारे मस्तिष्क में कोई सात करोड़ कोष्ठ हैं और प्रत्येक कोष्ठ, एक-एक कोष्ठ एक करोड़ सूचनाओं को संगृहीत कर सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस जगत के जितने पुस्तकालय हैं, एक आदमी के मस्तिष्क में कंठस्थ कराये जा सकते हैं। एक-एक सैल एक-एक करोड़ सूचनाओं को संगृहीत कर सकता है। सात करोड़ सैल हैं। तुम्हारी छोटी-सी इस खोपड़ी में इस पृथ्वी पर जितना ज्ञान है, वह सब संगृहीत किया जा सकता है। इतनी छोटी-सी खोपड़ी है, मुश्किल से कोई डेढ़ किलो वजन है

और सात करोड़ तंतु हैं, जो आंख से नहीं देखे जा सकते, तंतु बहुत बारीक हैं।

इसलिए, मस्तिष्क का आपरेशन अभी तक रुका रहा। अब मस्तिष्क का आपरेशन शुरू हुआ है। लेकिन, तब भी खतरा है; क्योंकि काटने तुम कुछ जाओ, हजार दूसरे तंतु कट जाते हैं, इतना सब सूक्ष्म है। यंत्र तो डालोगे, औजार तो भीतर ले जाओगे, औजार भीतर-बाहर ले जाने में ही लाखों तंतु कट जाते हैं। औजार ले जाने की भी जरूरत नहीं है; तुम सिर्फ शीर्षासन ही करते रहो आधा घंटा रोज, तुम्हारी खोपड़ी खराब हो जायेगी। तुम शीर्षासन करनेवाले लोगों को बहुत बुद्धिमान कभी न पाओगे; क्योंकि इतना खून का प्रवाह है कि छोटे तंतुओं को तोड़ देता है, जैसे बाढ़ आ जाये।

आदमी का मस्तिष्क विकसित ही इसलिए हुआ कि वह खड़ा हो गया और सिर की तरफ खून की धारा कम हो गयी। जानवरों का मस्तिष्क विकसित नहीं हुआ; क्योंकि उनकी खोपड़ी और उनका शरीर एक ही तल में है। तो उनके पास मोटे स्नायु हैं; पतलें स्नायु नहीं है। आदमी की सारी प्रतिष्ठा और खूबी यह है कि वह खड़ा हो गया। खड़े होने से, गुरुत्वाकर्षण की धारा उसके खून को नीचे की तरफ खींचती है और फेफड़े को पंप करना पड़ता है, खून तब सिर तक पहुंचता है। बहुत कम खून पहुंच पाता है। इसलिए सूक्ष्म तंतु विकसित हो गये। अगर बाढ़ आये तो बड़े-बड़े झाड़ बह जायेंगे, छोटे-छोटे पौधों का क्या! तो इतने सूक्ष्म तंतु हैं कि खून की जरा-सी गति ज्यादा हो जाये तो नष्ट हो जाते हैं।

इस सात करोड़ के सूक्ष्म जाल में, तुम अगर खोलकर बैठ गये खुद ही तो इसकी आशा करना असंभव है कि इससे कुछ लाभ होगा, हानि निश्चित है। और बहुत लोग खोलकर अपने मस्तिष्क को बैठ जाते हैं—अपने ही मन से ध्यान करने लगते हैं, आसन लगाने लगते हैं, कुछ किताब से इकट्ठा कर लेते हैं, कुछ सुन लेते हैं, हवा से बातें पकड़ लेते हैं—कुछ करने लगते हैं। उससे सिवाय नुकसान के कभी कोई लाभ नहीं होता।

एक बौद्ध भिक्षु को मेरे पास लाया गया। वह तीन साल से सो नहीं सका। सब तरह के इलाज किये गये, लेकिन नींद नहीं आती। सब ट्रेंकुलाइजरों को उसने हरा दिया। नींद आती ही नहीं, कुछ भी उपाय काम नहीं कर पा रहे हैं। और तीन साल तक जो न सोये, उसकी हालत तुम समझ सकते हो—वह बिलकुल विक्षिप्त अवस्था है।

मैंने उससे जो पूछा, वह कोई किसी डाक्टर ने उससे पूछा ही नहीं। डाक्टरों ने उसकी चिकित्सा शुरू कर दी; जांच-पड़ताल की शरीर की—खून का दबाव, हृदय

की स्थिति—सारा सब जांच-पड़ताल करके इलाज शुरू किया। और, वह उसकी बीमारी ही नहीं। वे सज्जन एक ध्यान कर रहे हैं। एक प्राचीन परंपरा है बौद्धों की—विपश्यना; वे विपश्यना ध्यान कर रहे हैं। वह ध्यान उन्होंने शास्त्र से सीधा पढ़ लिया। क्योंकि गुरु तो एक-एक शिष्य को खयाल में रखेगा या अगर वह कोई सामूहिक पद्धति विकसित करता है, तो वह समूह को ध्यान में रखेगा। लेकिन, शास्त्र तो आपका ध्यान नहीं रख सकते कि कौन पढ़ेगा। कोई भी पढ़ेगा और शास्त्र हजारों साल तक जीते हैं।

तो, बहुत पुरानी 'विपश्यना' की पद्धति है, वह उन्होंने पढ़ ली और उस पर प्रयोग शुरू कर दिया। फिर उसमें उन्हें रस आया; क्योंकि पद्धति बड़ी कीमती है, बुद्ध ने खुद उपयोग किया है। लेकिन, तुम्हें पता नहीं कि जब रस आ जाये तो कहां रुकना; क्योंकि, रस भी ज्यादा हो जाये तो ज़हर हो जाता है। तो रस उन्हें इतना आया कि वे चौबीस घंटे उसे भीतर साधने लगे।

जब तुम कोई चीज भीतर चौबीस घंटे साधोगे तो नींद खो जायेगी; क्योंकि, भीतर अगर इतना प्रयत्न चलाओगे तो नींद के आने की संभावना नहीं है। फिर उन्होंने वर्षों तक यह प्रयोग किया तो जिन तंतुओं से नींद आती है, वे तंतु टूट गये। तो अब नींद का कोई उपाय नहीं। क्योंकि डाक्टर भी साथ दे सकता है, अगर तंतु मौजूद हों; तो ट्रेंकुलाइजर जाकर उन तंतुओं को शिथिल कर दे और आप सो जायेंगे। लेकिन तंतु ही टूट गये, तो डाक्टर भी क्या करेगा!

तो, मैंने उनको कहा कि तुम सालभर के लिए सब तरह का ध्यान छोड़ दो। तुमसे जितना आलस्य बन सके, आलस्य करो। ध्यान की बात ही मत करना। शास्त्र मत पढ़ना। सोना जितना सो सको। लेटना, विश्राम करना; खूब खाओ, खूब पीओ। सालभर के लिए परम संसारी हो जाओ।

उन्होंने कहा कि आपसे ऐसी आशा न थी। आप और ऐसे शब्द कह रहे हैं? भ्रष्ट कर रहे हैं आप? मैंने कहा कि तुम अगर भ्रष्ट समझते हो तो तुम समझो। सालभर यह करो, फिर मेरे पास आना। ठीक तीन महीने बाद वे ठीक हो गये। अब उन्हें नयी पद्धति देनी पड़ी। और, पद्धति को भी सोचकर देना जरूरी है कि कितना तुम कर सकोगे। और फिर क्रमशः गति बढ़नी चाहिए। और, पूरे चित्त की व्यवस्था का ध्यान रखना जरूरी है।

इसलिए शिव कहते हैं: गुरु उपाय है। तुम खुद अपने उपाय मत बन जाना;

अन्यथा तुम बिगाड़ कर लोगे। पहले तो जीवित पुरुष को खोजना ही कठिनाई है; क्योंकि किसी जीवित पुरुष को गुरु मानने में बड़ी बेचैनी है; अहंकार को चोट लगती है। इसलिए शास्त्रों में लोग ज्यादा रस लेते हैं; क्योंकि शास्त्र से कोई अहंकार को चोट नहीं लगती। शास्त्र को उठाकर फेंक दो, तो भी शास्त्र कुछ नहीं कर सकता; जहां रखो सम्हालकर, वहां रखा रहता है, कुछ नहीं कर सकता। तुम गुरु के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते; तुम्हारे अहंकार को वहां झुकना पड़ेगा। वहां तुम्हें झुकना पड़ेगा। शास्त्र के सामने भी तुम झुकते हो, वह भी तुम्हारी मौज है; मालिक तुम ही रहते हो। जब दिल जाये, बदल दो और शास्त्र को कह दो, चलो हटो। तो, शास्त्र कुछ न कर पाएगा, लेकिन गुरु जीवित है। वहां झुकना पड़ेगा और जीवित व्यक्ति के सामने झुकने में अहंकार को बड़ी चोट लगती है।

इसलिए लोग पहले किताब देखते हैं; जब थक जाते हैं किताबों से, तब गुरु को खोजते हैं। और, अक्सर ऐसा हो जाता है कि किताबें उन्हें इतना बिगाड़ देती हैं कि उनकी आंखें ऐसी विकृत हो जाती है शब्दों से कि फिर वे गुरु को पहचान ही नहीं पाते।

तुम अगर गुरु के पास भी जाते हो तो तुम किताब की पहचान लेकर जाते हो। तुमने किताब में पढ़ लिया कि गुरु कैसा होना चाहिए। कोई किताब नहीं बता सकती कि गुरु कैसा होना चाहिए। कोई भी किताब किसी गुरु के संबंध में बता सकती है। अगर कबीर के संबंध में किसी ने किताब लिखी है तो वह कबीर के संबंध में बताती है कि कबीर ऐसे गुरु थे। अब दुबारा कबीर थोड़े ही होंगे। जो लक्षण हैं, वे कबीर के हैं, गुरु के नहीं है। अगर तुम कबीरपंथी हो और कबीर की किताब से भर गये हो, तो तुम वह कबीरपंथी गुरु किसी गुरु में खोजोगे तो वह गुरु अब तुम्हें कभी नहीं मिलनेवाला है। क्योंकि कबीर दुबारा पैदा नहीं होंगे।

दिगंबर जैन हैं, वह तब तक गुरु न मानेगा किसी को, जब तक वह नग्न न खड़ा हो। महावीर की मौज थी कि वे नग्न खड़े हुए, वह मेरी मौज नहीं है। अब वह महावीर को खोज रहा है, जो अब नहीं हैं। और बड़े मजे की बात है—जब महावीर थे, तब हो सकता है तब यही आदमी दिक्कत में था; क्योंकि वे नंगे खड़े थे। तब उस समय जो किताबें प्रचलित थीं, उनमें ये लक्षण नहीं थे। खुद महावीर के पहले के जो तीर्थंकर हैं, वे भी वस्त्रधारी थे। जैन-तीर्थंकर भी वस्त्रधारी थे। तो खुद जैन भी महावीर को स्वीकार करने को राजी नहीं था; क्योंकि नंगा खड़ा होना, यह बात बेहूदी है। तब जो शास्त्र था, वह कहता था कि गुरु नग्न तो होगा ही नहीं, क्योंकि यह तो अशोभन है।

तो महावीर को इनकार किया। जब महावीर मर गये और शास्त्र बन गये तो वह महावीर को ढो रहा है। अब अगर पार्श्वनाथ मिल जायें कपड़े पहने हुए तो यह आदमी कैसे चल सकता है गुरु की तरह।

ध्यान रहे—जो भी शास्त्र हैं, वे किसी एक गुरु के संबंध में कह रहे हैं और वह गुरु दुबारा नहीं होता। गुरु तो अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं। इसलिए तुम्हारी आंखें अगर शास्त्रों से भरी हैं तो तुम जीवित गुरु को कभी न पहचान पाओगे; क्योंकि, शास्त्र उसकी खबर दे रहे हैं, जो हो चुका और कभी न होगा। जो लोग महावीर को मानते हैं, वे बुद्ध के पास जायेंगे तो इनकार कर देंगे; कहेंगे—होंगे महात्मा, होंगे; लेकिन भगवान नहीं है, क्योंकि वस्त्र पहने हुए हैं।

एक जैन सज्जन हैं। उन्होंने एक किताब लिखी है। भले आदमी हैं; लेकिन, भले होने से कुछ समझ तो होती नहीं। बुरे नासमझ होते हैं; भले भी नासमझ होते हैं। यहां नासमझी इतनी गहरी है कि भलेपन से कुछ फर्क नहीं पड़ता। भले आदमी हैं, इसलिए एक तरह का सदभाव रखते हैं सभी धर्मों के प्रति। तो, उन्होंने एक किताब लिखी है—भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। वे लेखक हैं। पूना में लोग उन्हें जानते हैं। वे ही मुझे पहली दफा पूना ले कर आये थे। गांधी के पुराने भक्त हैं, तो गांधी ने उनको भाव चढ़ा दिया कि सभी एक हैं। तो, किताब लिख दी, लेकिन, भीतर तो जैन-बुद्धि हैं। मैं उनके घर मेहमान था तो मैंने पूछा कि और तो मेरी समझ में आया; लेकिन फर्क काहे रखा कि भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। वे बोले : 'ऐसा है कि भगवान तो महावीर ही हैं। ज्यादा-से-ज्यादा इतना हम स्वीकार कर सकते हैं कि बुद्ध महात्मा हैं, लेकिन भगवान नहीं। क्यों ? क्योंकि सवस्त्र हैं; भगवान तो निर्वस्त्र होते हैं !

बस, तब दिक्कत खड़ी हो जाती है। और, ऐसा नहीं कि यह कोई जैन के साथ दिक्कत है, सभी के साथ वही दिक्कत खड़ी होगी, । इसलिए, जैन कभी राम को भगवान नहीं मान सकता; सीता के साथ खड़े हैं, यह बात अड़चन की है। जैनी यह सोच ही नहीं सकता कि भगवान होकर और भैरवी क्यों साथ हैं ? भगवान तो सब छोड़ देगा। जब मुक्त ही हो गया, तो यह स्त्री क्यों है ? इसलिए, सीता जैसी बहुमूल्य स्त्री भी जैन को खो जाती है, उसकी बुद्धि में नहीं पकड़ती।

कृष्ण को तो वे नरक में डाल देते हैं; क्योंकि एक नहीं, सोलह हजार स्त्रियां हैं। तो इनसे ज्यादा योग्य और कोई है नहीं नरक के। तो जैनियों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया है, डर के कारण ; क्योंकि जाति के सब वणिक हैं, तो भयभीत भी हैं। हिंदुओं से भय

भी खाते हैं कि कहीं झगड़ा-झांसा खड़ा न हो जाये और शायद इसलिए अहिंसा को मानते हैं।

अक्सर भीरु लोग अहिंसा को मानते हैं; क्योंकि हिंसा को मानने के लिए थोड़ी बहुत लड़ाई-झगड़े की हिम्मत चाहिए। न मारेंगे, न मारे जायेंगे। इसलिए, सिद्धांत ठीक है कि किसी को मत मारो और जीने दो और जीओ। मगर जीने की इच्छा है; वह कोई दूसरे से प्रयोजन नहीं है। तो डर के मारे एक दूसरी तरकीब भी लगाई है, वह यह कि कृष्ण को नरक में डाल दिया और फिर भय के कारण—क्योंकि नरक में तो डालना जरूरी है, सिद्धांत में कहीं आते नहीं—मगर भय के कारण कि हिंदुओं के बीच जीना है तो यह भी स्वीकार कर लिया है कि अगले कल्प में वे पहले तीर्थंकर होंगे। समझौता हो गया। यह बनिया की वृत्ति जो है...गणित। अब हिंदू नाराज भी नहीं हो सकते—चलो कोई हर्जा नहीं। अपना सिद्धांत भी संभाल गया, झगड़े से भी बच गये।

गुरु को अगर तुमने शास्त्र से खोजा तो तुम कभी न खोज पाओगे; क्योंकि जब तक शास्त्र लिखे जाते हैं, तब तक जिसके लिए लिखे गए, वह तिरोहित हो जाता है। और, हर गुरु पृथक, भिन्न, अपने ही ढंग का है। उस जैसा तुम दूसरा नहीं खोज सकते। दोबारा महावीर नहीं खोजे जा सकते, न कृष्ण खोजे जा सकते हैं, न बुद्ध और तुम उन्हीं को खोज रहे हो, इसलिए भटक रहे हो। और जब वे थे, तब तुम किसी और को खोज रहे थे। तुम चूकते ही चले जाते हो।

गुरु को खोजना हो तो शास्त्र को अलग रख आना। गुरु को खोजना हो तो किसी व्यक्ति की सन्निधि पाने की कोशिश करना; उसके सत्संग में बैठना और अपने सिद्धांत लेकर मत जाना। अपने नापने-जोखने के इंतजाम लेकर मत जाना। सीधे हृदय को हृदय से मिलने देना, बुद्धि को बीच में मत आने देना। अगर तुमने बुद्धि बीच में आने दी, तो हृदय का मिलन न होगा और तुम गुरु को न पहचान पाओगे। गुरु की पहचान आती है हृदय से, बुद्धि से नहीं। और, जब भी तुम बुद्धि को हटाकर हृदय से देखोगे, तत्क्षण कोई चीज घट जाती है। अगर तुम्हारा मेल हो सकता है इस गुरु से तो तत्क्षण मेल हो जायेगा, एक क्षण भी देरी न लगेगी। तुम पाओगे कि तुम उसमें पिघल गये, वह तुम में पिघल गया। उस दिन से तुम उसके अभिन्न अंग हो गये। उस दिन से तुम उसकी छाया हो गये; उसके पीछे चल सकते हो। हृदय से खोजा जाता है, गुरु के बिना कोई उपाय नहीं।

शरीर हवि है। और, ध्यान रखना—यह जिसे तुम शरीर कहते हो, जिसे तुमने समझ रखा है कि मैं सब कुछ इस शरीर में ही हूं—यह शरीर हवि से ज्यादा नहीं है। जैसे यज्ञ में आहुति डालनी पड़ती है, ऐसे ही ध्यान में तुम्हें धीरे-धीरे इस शरीर को खो देना होगा। बाकी आहुतियां व्यर्थ हैं। कोई घी डालने से, गेहूं डालने से, कुछ हवि नहीं होती। अपने को ही डालना पड़ेगा, तभी तुम्हारी जीवन -अग्नि जलेगी। इस पूरे शरीर को दांव पर लगा देना। इसे बचाने की कोशिश की तुमने अगर, तो यह यज्ञ जलेगा ही नहीं, अग्नि पैदा ही नहीं होगी। तुम अपने पूरे शरीर को दांव पर लगा देना। शरीर हवि है।

ज्ञान ही अन्न है। और, तुम अभी तो भोजन से जीते हो। भोजन शरीर में जाता है; शरीर के लिए जरूरी है। बोध, ज्ञान, ध्यान, अवेयरनेस—वह भोजन है आत्मा का। अभी तक तुमने शरीर को ही खिलाया-पिलाया; आत्मा तुम्हारी भूखी मर रही है। आत्मा तुम्हारी अनशन पर पड़ी है जन्मों से; शरीर परिपुष्ट हो रहा है, आत्मा भूखी मर रही है।

ज्ञान अन्न है आत्मा का। तो जितने तुम जाग्रत हो सको, ज्ञानपूर्ण हो सको—ज्ञान का मतलब पांडित्य नहीं है, ज्ञान का अर्थ है : होश—जितने तुम जाग्रत हो सको, तुरीय जितना तुममें सघन हो सके, तुम जितने होशपूर्ण और विवेकपूर्ण हो सको, उतनी ही तुम्हारी आत्मा में जीवनधारा दौड़ेगी। तुम्हारी आत्मा करीब-करीब सूख गयी है। उसको तुमने भोजन ही नहीं दिया। तुम भूल ही गये हो कि उसको भोजन की कोई जरूरत है।

शरीर तुम्हारा भोजन कर रहा है, आत्मा उपवासी है। इसलिए अनेक धर्मों ने उपवास का उपयोग किया। शरीर को उपवास कराना थोड़े दिन और आत्मा को भोजन दो। विपरीत करो प्रक्रिया को; लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम शरीर को भूखा मारो। शरीर को उसकी जरूरत दो ; लेकिन, तुम्हारे जीवन की सारी चेष्टा शरीर को भरने में ही पूरी न हो जाये। तुम्हारे जीवन की चेष्टा का बड़ा अंश ज्ञान को जन्माने में लगे; क्योंकि, वही तुम्हारी आत्मा का भोजन है। ज्ञान ही अन्न है।

विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होता है। और, अगर यह ज्ञान तुम्हारे भीतर न गया और तुम्हारे भीतर की ज्योति को ईंधन न मिला तो फिर तुम्हारे जीवन में स्वप्न पैदा होते हैं। तब तुम्हारे जीवन में वासनाएं पैदा होती हैं। तब तुम्हारा जीवन अंधेरे में भटकता है। तब तुम कल्पना में जीते हो। तब तुम तृष्णा में जीते हो। तब बस तुम सोचते ही रहते

हो।

मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि इस वर्ष कहां जाने के इरादे हैं; क्योंकि अक्सर वे यात्रा पर जाते हैं। तो उन्होंने कहा कि मैं तीन वर्ष में एक ही बार यात्रा पर जाता हूं। मैंने पूछा, 'तो बाकी दो वर्ष क्या करते हैं ?' तो उन्होंने कहा, 'एक वर्ष तो पिछली यात्रा जो की, उसको सोचने में, उसका रस लेने में बिताते हैं। और एक वर्ष अगली यात्रा की योजना बनाने में बिताते हैं।'

फिर भी मुल्ला नसरुद्दीन कम-से-कम तीन साल में एक बार यात्रा पर जाते हैं, तुम एक बार भी नहीं गये। तुम्हारा आधा जीवन अतीत के सोचने में जाता है और आधा भविष्य को सोचने में; यात्रा तो कभी शुरू ही नहीं होती। या तो तुम स्मृति में भटकते रहते हो, जो कि स्वप्न है मरा हुआ और या तुम कल्पना में भटकते रहते हो, जो कि स्वप्न है भविष्य का, जो अभी जन्मा नहीं है। तुम दोनों में कटे हो और मध्य में है वर्तमान—वहां है जीवन; उससे तुम वंचित रह जाते हो।

ज्ञान तुम्हें जगायेगा—अभी और यहीं, इसी क्षण के प्रति। ज्ञान तुम्हें वर्तमान में लायेगा, अतीत खो जायेगा; खो ही गया है, तुम व्यर्थ ही उस राख को ढो रहे हो। भविष्य अभी आया नही; तुम उसे ला भी नहीं सकते। जब आयेगा, तब आयेगा। वर्तमान अभी मौजूद है। जो मौजूद है, वही सत्य है। स्वप्न का अर्थ है : जो मौजूद नहीं है, उसमें भटकना।

यह सूत्र ध्यान रखना—विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होते हैं। जब तुम्हारे भीतर ज्ञान नहीं होता, आत्मा जाग्रत नहीं होती, तो तुम सपनों में खोते हो। अतीत और भविष्य सब कुछ हो जाते हैं, वर्तमान ना-कुछ; और, वर्तमान ही सब कुछ है। जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे अतीत कम, भविष्य कम, वर्तमान ज्यादा होगा। जिस दिन तुम पूरे जागोगे, उस दिन सिर्फ वर्तमान रह जाता है। उस दिन न कोई भविष्य है, न कोई अतीत है। और जब अतीत नहीं, भविष्य नहीं, तो चित्त के सारे रोग, सारी पुनरुक्तियां, सारे वर्तुल नष्ट हो जाते हैं। तब तुम यहां हो—शुद्ध, निर्मल, निर्दोष, ताजे; जैसे सुबह की ओस। तब तुम यहां हो—जैसे कमल का फूल। इस क्षण में अगर तुम पूरे-पूरे मौजूद हो जाओ, तो तुम परमात्मा हो।

इस क्षण में तुम बिलकुल मौजूद नहीं हो; इसलिए तुम शरीर हो, मन हो; लेकिन आत्मा नहीं। ध्यान सिर्फ इसी बात की चेष्टा है कि तुम्हें खींचकर अतीत से यहां ले आये, भविष्य से खींच कर यहां ले आये। तुम न तो आगे जाओ, न पीछे जाओ; तुम

यहीं खड़े हो जाओ। यहीं, अभी, इसी क्षण में परिपूर्ण रूप से शांत, सजग होकर खड़े हो जाना ध्यान है। उससे ही विद्या का जन्म है। उससे ही तुम्हें जीवन का चरम उत्कर्ष और जीवन की चरम समाधि और आनंद उपलब्ध होगा। उसे जिसने खोया, सब खोया। उसे जो पा लेता है, वह सब पा लेता है।

आज इतना ही।

संसार के सम्मोहन और सत्य का आलोक

पांचवां प्रवचन

दिनांक 15 सितंबर, 1974,
प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

आत्मा चित्तम्।
कलादीनां तत्वानामविवेको माया।
मोहावरणात् सिद्धिः।
मोहजयादनत्ताभोगात्सहज विद्याजयः।
जाग्रद् द्वितीय करः।

आत्मा चित्त है। कला आदि तत्वों का अविवेक ही माया है। मोह आवरण से युक्त को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता है। स्थायी रूप से मोह जय होने पर सहज विद्या फलित होती है। ऐसे जाग्रत योगी को, सारा जगत मेरी ही किरणों का प्रस्फुरण है—ऐसा बोध होता है।

आत्मा चित्तमा—आत्मा चित्त है—यह सूत्र अति महत्वपूर्ण है।

सागर में लहर दिखाई पड़ती है; लहर भी सागर है। लहर कितनी ही विक्षुब्ध हो, लहर कितनी ही सतह पर हो, उसके भीतर भी अनंत सागर है। क्षुद्र भी विराट को अपने में लिये है। कण में भी परमात्मा छिपा है। तुम कितने ही पागल हो गये हो, तुम्हारा मन कितना ही उद्विग्न हो; कितने ही रोग, कितनी ही व्याधियों ने तुम्हें घेरा हो—फिर भी तुम परमात्मा हो। इससे कोई भेद नहीं पड़ता कि तुम सोये हो, बेहोश हो; बेहोशी में भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर बेहोश है। सोये हुए भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर सो रहा है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि तुमने बहुत पाप किये हैं; बहुत पापों का विचार किया है—वे विचार भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर कर रहा है। वे पाप भी परमात्मा के माध्यम से ही हुए हैं।

आत्मा चित्तम् का अर्थ है कि तुम्हारा चित्त तुम्हारी आत्मा की ही एक परिणति है। यह बहुत महत्वपूर्ण है समझना, अन्यथा तुम चित्त से लड़ना शुरू कर दोगे। और, जो भी चित्त से लड़ेगा, वह हार जाएगा। विजय का मार्ग है : चित्त को स्वीकार कर लेना कि वह भी परमात्मा का है। संघर्ष में भी, व्यर्थ की, द्वंद्व की, द्वैत की स्थिति में भी, लहर भी सागर है—इस प्रतीति के साथ ही मन की विकृतियां क्षीण होनी शुरू हो जाती हैं।

जिस दिन भी तुम यह समझ पाओगे कि क्षुद्र में विराट छिपा है, क्षुद्र की क्षुद्रता खोनी शुरू हो जाएगी। उसकी सीमा तुम्हारी मानी हुई है। छोटे-से कण की भी कोई सीमा नहीं है। वह भी असीम का ही भाग है। सीमा तुम्हारी आंखों के कारण दिखाई पड़ती है। जैसे ही तुम देख पाओगे कि सीमा में भी असीम छिपा है, सीमा खो जाएगी।

यह जीवन की गहनतम प्रतीति है कि जिस दिन भी व्यक्ति अपने चित्त में भी परमात्मा को देखने लगता है; अपनी बुराई में भी उसी को देखता है; अपनी भटकन में

भी उसके ही चरण-चिन्हों को पाता है, उसी दिन से भटकन बंद हो जाती है। भटकन का अर्थ है कि तुमने अपने को परमात्मा से अलग माना है। उस अलगपन में ही तुम्हारा सारा पाप है, तुम्हारी सारी विकृति है। तुमने अपने को भिन्न माना है, यही तुम्हारा अहंकार है।

और, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अहंकार के संबंध में पापी और पुण्यात्मा में रत्तीभर भी भेद नहीं होता। पापी भी अहंकार से भरा होता है उतना ही, जितना, जिसे हम पुण्यात्मा कहते हैं, वह अहंकार से भरा होता है। उनके कृत्य होंगे अलग; लेकिन उनकी प्रतीति एक ही है—दोनों ही अपने को भिन्न मान रहे हैं। एक अपने को बुरा मान रहा है, एक अपने को भला मान रहा है; लेकिन, दोनों अपने को भिन्न मान रहे हैं। और जब तक तुम भिन्न मानोगे, तब तक तुम भिन्न बने रहोगे। भिन्न तुम हो नहीं; तुम्हारी मान्यता ने ही तुम्हें संकीर्ण किया है। तुम्हारी धारणा ने ही तुम्हें बांधा है। तुम अपने ही खयाल में, अपने ही खयाल के कारागृह में कैद हो। अन्यथा, चारों तरफ खुला आकाश है और कहीं कोई दीवाल नहीं। किसी ने तुम्हें रोका नहीं, किसी ने कोई बाधा खड़ी नहीं की।

तुम्हारी अस्मिता कैसे गल जाये ?

आत्मा चित्तम्—इसका अर्थ है कि तुम तुम नहीं हो; तुम परमात्मा हो। तुम बड़े विराट से जुड़े हो। तुम छोटी लहर नहीं, पूरे सागर हो। इस विराट की प्रतीति से तुम्हारा अहंकार खो जाएगा। और जहां अहंकार नहीं, वहां पाप का कोई उपाय नहीं है। एक ही पाप है कि मैं पृथक हूं। और, यह पृथकता का भाव, जिसे हम साधु कहते हैं, उसमें भी बना रहता है।

मैंने सुना है कि एक हठ-योगी मरा। स्वर्ग पहुंचा। द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुला और पहरेदार ने कहा, 'स्वागत है। भीतर आएं !' हठ-योगी ठिठक गया। उसने कहा, 'अगर ऐसा स्वर्ग में सभी का स्वागत हो रहा है—क्योंकि, न तुमने पूछा पता-ठिकाना; न तुमने पूछा कृत्य; न तुमने पूछा कि कौन हो; क्या किया, पुण्य कि पाप; कुछ भी पूछा नहीं और सीधा अगर इस तरह का स्वागत है ऐरे-गैरे, नत्थू-खैरे का तो यह स्वर्ग मेरे लिए नहीं। न आरक्षण किया, न कोई रिजर्वेशन, न कोई पूछताछ; सीधा स्वागत ! तो फिर यह मेरी धारणा का स्वर्ग नहीं।'

यह अहंकार पुण्य से भरा है, पाप से नहीं। साधना की है इसने, बड़ी सिद्धियां पायी होंगी; लेकिन, सब सिद्धियां व्यर्थ हो गयीं। सभी सिद्धियों ने अहंकार को ही भरा

है—यह असिद्धि हो गयी।

बर्नाड शॉ को नोबेल प्राइज़ मिली। एक छोटा-सा, लेकिन बड़ा कीमती क्लब यूरोप में है। वह केवल सौ व्यक्तियों को सदस्यता देता है पूरी पृथ्वी पर; चुने हुए लोगों को है, जिनकी बड़ी महिमा है, नोबेल पुरस्कार जिन्होंने पाये हैं या कोई और बड़ी जिनकी उपलब्धि है—बड़े चित्रकार, मूर्तिकार, साहित्यकार; पर केवल सौ, उससे ज्यादा संख्या क्लब की नहीं होती। जब एक सदस्य मरता है, तब कोई नया व्यक्ति प्रवेश करता है। लोग जीवनभर प्रतीक्षा करते हैं कि उस क्लब की सदस्यता मिल जाए।

जब बर्नाड शॉ को नोबेल प्राइज़ मिली, तो उस क्लब की सदस्यता का निमंत्रण उसके पास आया और क्लब ने कहा, 'हम गौरवान्वित होंगे तुम्हें अपना सदस्य बनाकर।' बर्नाड शॉ ने उत्तर में लिखा, 'जो क्लब मुझे सदस्य बनाकर गौरवान्वित होता है, वह मेरे योग्य नहीं है। वह मुझसे कुछ नीचा है। मैं उस क्लब का सदस्य बनना चाहूंगा, जो मुझे सदस्य बनाने को राजी न हो।'

अहंकार हमेशा दुर्गम को खोजता है, कठिन को खोजता है; और जीवन बिलकुल सरल है। इसलिए, अहंकार जीवन से वंचित रह जाता है। और, परमात्मा से सरल कुछ भी नहीं है। इसलिए, अहंकार उस द्वार पर जाता ही नहीं। वह द्वार खुला ही हुआ है। वहां स्वागत है ही, बिना पूछे कि तुम कौन हो। अगर परमात्मा के द्वार पर भी पूछा जाता हो कि तुम कौन हो, तब होगा स्वागत, तो वह द्वार सांसारिक हो गया। तुम उस द्वार पर ही खड़े हो। और, तुमने पीठ की है तो अपने ही कारण। द्वार ने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया है। तुम अगर आंख बंद किये हो और द्वार तुम्हें नहीं दिखता तो अपने ही कारण; अन्यथा द्वार सदा खुला है और निमंत्रण सदा तुम्हारे लिए है। 'स्वागत' सदा वहां लिखा है।

आत्मा चित्तम्—इसका अर्थ है कि तुम अपने को पृथक मत मानना, कितने ही बुरे तुम हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम अपनी बुराई किये चले जाना। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम बुरे बने रहना। तुम बने ही न रह सकोगे।

मनस्विद कहते हैं कि व्यक्ति वैसा ही हो जाता है, जैसा वह स्वयं को मानता है। मान्यता ही धीरे-धीरे जीवन बन जाती है। मनस्विद कहते हैं कि अगर आदमी बुरा भी हो तो भी उसे बुरा मत कहना; क्योंकि बुरा कहने से, बार-बार पुनरुक्त करने से कि 'तुम बुरे हो, तुम बुरे हो'—यह मंत्र बन जाता है। और, अगर सब तरफ सभी तरफ लोग

दोहराते हैं कि तुम बुरे हो, तो वह व्यक्ति भी भीतर दोहराने लगता है कि मैं बुरा हूं। न केवल वह दोहराता है, बल्कि जो सबकी अपेक्षा है, उसको सिद्ध करने की कोशिश भी करता है। धीरे-धीरे बुराई की आदत हो जाती है। शायद धर्म के जगत में खोज करने वाले लोग इस सत्य को बहुत पहले पहचान गये थे। उन्होंने तुम्हें जीवन की परम सत्ता को मंत्र बनाने को कहा है—आत्मा चित्तम्।

तुम परमात्मा हो। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा मंत्र है। यह बड़ी-से-बड़ी बात है, जो तुम्हारे संबंध में कही जा सकती है। और, अगर यह तुम्हारा मंत्र बन जाए; और यह तुम्हारे जीवन में ओतप्रोत हो जाए; तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाए इसकी झंकार, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि जो तुमने सोचा, वह तुम होने लगे; जो तुमने धुना भीतर, वह तुम्हारे जीवन में आना शुरू हो गया है।

धर्म की शुरुआत—तुम नहीं हो, परमात्मा है—इस सूत्र से होती है। माना तुम सोये हो; माना कि तुम बहुत अर्थों में बुरे हो; माना कि बहुत भूल-चूक तुमने की है; लेकिन इससे तुम्हारे स्वभाव में कोई भी फर्क नहीं पड़ता। निर्मलता तुम्हारा स्वभाव है। तुम कितना ही बुरा किये हो, इस बात का स्मरण आ जाए कि 'मैं परमात्मा हूं', सब बुराई कट जाएगी। तुम्हें एक-एक बुराई को अलग-अलग काटना हो तो तुम वह भी कर सकते हो; तब जन्मों-जन्मों तक बुराई न कटेगी; क्योंकि अनंत है बुराई और एक-एक बुराई को जो काटने चलेगा, वह कभी भी काट न पाएगा।

जब तुम एक बुराई को काटते हो, तो तुम दस बुराइयां पैदा भी कर रहे हो। एक बुराई काटते हो, निन्यानबे बुराइयां तो तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। वे तुम्हारी एक भलाई को भी रंग देंगी,उसे भी बुरा कर देंगी। इसलिए, तुम पुण्य भी करते हो, तो वह भी पाप जैसा हो जाता है। तुम अमृत भी छूते हो तो जहर हो जाता है; क्योंकि शेष सब बुराइयां उस पर टूट पड़ती हैं। तुम मंदिर भी बनाओ तो भी उससे विनम्रता नहीं आती; उससे अहंकार भरता है। और, अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं ! व्यर्थ से भी अहंकार भरता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक कुत्ता था। न उस कुत्ते की कोई नसल का ठिकाना था; न कोई डील-डौल; देखने में बदशक्ल, कमजोर; हर समय डरा हुआ, भयभीत; पैर झुके हुए, शरीर दुर्बल; लेकिन, नसरुद्दीन उसकी भी तारीफ हांका करता था। मैंने उससे पूछा, 'कुछ इस कुत्ते के संबंध में बताओ भी'।, नाम उसने उसका रखा था—एडोल्फ हिटलर। नसरुद्दीन ने कहा कि हिटलर की नसल का भला कोई

ठीक-ठीक पता न हो; लेकिन, बड़ा कीमती जानवर है। और, एक अजनबी कदम नहीं

रख सकता घर के आसपास, बिना हमें खबर हुए। हिटलर फौरन खबर देता है।

मैंने पूछा कि क्या करता है तुम्हारा हिटलर—क्योंकि उसे देखकर संदेह होता था कि वह कुछ कर सकेगा—भौंकता है, चिल्लाता है, चीखता है, काटता है, क्या करता है ? नसरुद्दीन ने कहा, 'जी नहीं ! जब भी कोई अजनबी आता है, हिटलर फौरन हमारे बिस्तर के नीचे आकर छिप जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि अजनबी आ जाए और हमें पता न हो। मगर उसका भी गुण-गौरव है।'

तुम्हारा अहंकार मुल्ला नसरुद्दीन के हिटलर जैसा है—न तो नसल का कोई पता है...। तुम्हें पता है कि तुम्हारा अहंकार कहां से पैदा हुआ ? जो है ही नहीं, वह पैदा कैसे होगा ? वह भ्रांति है। उसकी नसल का कोई पता नहीं है।

तुम तो परमात्मा से पैदा हुए हो; तुम्हारा अहंकार कहां से पैदा हुआ ? और, कभी तुमने अपने अहंकार को गौर से देखा कि भला नाम तुम एडोल्फ हिटलर रख लिये हो—सभी सोचते हैं; लेकिन उसके पैर बिलकुल झुके हैं...दीन-हीन !

बड़े-से-बड़ा अहंकार भी दीन-हीन होता है। क्यों ? क्योंकि, बड़े-से-बड़ा अहंकार भी नपुंसक होता है। उसमें तो कोई ऊर्जा तो होती नहीं; ऊर्जा तो आत्मा की होती है। ऊर्जा का स्रोत अलग है। इसलिए, अहंकार को चौबीस घंटे सम्हालना पड़ता है। वह अपने पैरों पर खड़ा भी नहीं रह सकता; उसे और पैर हमें उधार देने पड़ते हैं। कभी पद से हम उसे सहारा देते हैं; कभी धन से सहारा देते हैं; कभी पुण्य से सहारा देते हैं, कुछ न बने तो पाप से सहारा देते हैं।

कारागृह में जाकर देखो ! वहां लोग अपने पापों की झूठी चर्चा करते हैं, जो उन्होंने कभी किये ही नहीं। जिसने एक आदमी को मारा है, वह कहता है कि मैंने सैकड़ों का सफाया कर दिया; क्योंकि कारागृह में अहंकार के बड़े होने का वही उपाय है। छोटे-मोटे आदमी वहां बड़े कैदी हैं, जिन्होंने काफी उपद्रव किये हैं। जिन पर एकाध धारा में मुकदमा चला है, उनकी कोई कीमत है ! जिन पर दस-पच्चीस धाराएं लगी हैं; जिन पर सौ-दो-सौ मुकदमे चल रहे हैं; जो रोज अदालत में हाजिर होते हैं—आज इस मुकदमे के लिए, कल उस मुकदमे के लिए—कारागृह में वे ही दादा-गुरु हैं। वहां आदमी झूठे पापों की भी बात करता है, जो उसने कभी नहीं किये।

पुण्य से भी, पाप से भी; धन से, पद से—हर चीज से अहंकार को तुम सहारा देते हो, तब भी वह खड़ा नहीं रहता; मौत उसे गिरा देती है। क्योंकि, जो नहीं है, मौत उसी

को मिटाएगी; जो है, उसके मिटने का कोई भी उपाय नहीं। तुम तो बचोगे; लेकिन, ध्यान रखना—जब मैं कहता हूं 'तुम बचोगे', तो मैं उस तत्व की बात कर रहा हूं, जिसका तुम्हें कोई पता ही नहीं।

जिसे तुम समझते हो तुम्हारा होना, वह तो नहीं बचेगा; वह तुम्हारा अहंकार मात्र है। तुम्हारा नाम, तुम्हारा रूप, तुम्हारा धन, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारी योग्यता—तुमने जो कमाया, वह कुछ भी न बचेगा, उसको छोड़कर भी अगर तुम कुछ हो; अगर थोड़ी-सी भी संधि-रेखा उसकी मिलनी शुरू हो गयी—जो तुम्हारी योग्यता से बाहर है; जो तुमने कमाया नहीं, जिसे तुम लेकर ही पैदा हुए थे; जो पैदा होने के पहले भी तुम्हारे साथ था—वही केवल मृत्यु के बाद तुम्हारे साथ रहेगा।

आत्मा चित्तम्—वही आत्मा खोजने जैसी है। तुम्हारे चित्त में भी उसकी किरण है; अन्यथा चित्त भी नहीं चल सकेगा। पाप भी करोगे तो कौन करेगा ? करने के लिए ऊर्जा चाहिए। वह ऊर्जा उसी से मिलती है। तुम उस ऊर्जा का दुरुपयोग कर रहे हो। लेकिन दुरुपयोग को तुम सदुपयोग में न बदल सकोगे; क्योंकि दुरुपयोग का मूल कारण और जड़ अहंकार में है।

एक ही पाप है और वह है स्वयं को अस्तित्व से पृथक समझना; फिर सभी पाप उसके पीछे छाया की तरह चले आते हैं। एक ही पुण्य है—अस्तित्व के साथ स्वयं को एक समझना। लहर सागर के साथ एक हो जाए, सभी पुण्य उसके पीछे अपने-आप चले आते हैं।

आत्मा चित्त है।

कला आदि तत्वों का अविवेक ही माया है।

यह माया क्या है ? फिर इस चित्त पर अंधकार क्यों है, अगर आत्मा ही चित्त है ? क्यों कला आदि तत्वों का अविवेक ? तुम्हें पता नहीं कि कौन तुम्हारे भीतर कर्त्ता है; कौन है असली कलाकार भीतर तुम्हारे; कौन है मौलिक तत्व, उसका तुम्हें पता नहीं। और, जिसे तुम समझ रहे हो, कि यह कर रहा है, वह है ही नहीं। ना-कुछ को पकड़कर तुम जी रहे हो, इसलिए परेशान हो। पूरी जिंदगी दौड़धूप करके भी परेशानी नहीं मिटती, सिर्फ बढ़ती है और पूरी जिंदगी श्रम करके भी आनंद की एक बूंद भी नहीं मिलती; सिर्फ दुख के पहाड़ बड़े हो जाते हैं। फिर भी आदमी आखिरी दम तक व्यर्थ के पीछे दौड़ता रहता है।

आखिर व्यर्थ में इतना रस क्यों है ? समझने की कोशिश करें। व्यर्थ की एक खूबी

है—

एक आदमी ने एक नया बंगला खरीदा। बगीचा लगाया। फूल के बीज बोये। पौधे भी आने शुरू हुए; लेकिन साथ-साथ घास-पात भी उग गया। वह थोड़ा चिंतित हुआ। उसने पड़ोसी नसरुद्दीन से पूछा कि कैसे पहचाना जाए कि क्या घास-पात है और क्या असली पौधा है। नसरुद्दीन ने कहा, 'सीधी तरकीब है, दोनों को उखाड़ लो। जो फिर से उग आये, वह घास-पात है।'

व्यर्थ की यह खूबी है—उखाड़ो, उखाड़ने से कुछ नहीं मिटता। उखाड़ने में सार्थक तो खो जाएगा, व्यर्थ फिर उग आयेगा। सार्थक को बोओ, तब भी पक्का नहीं कि फसल काट पाओगे; क्योंकि हजार बाधाएं हैं। व्यर्थ को बोओ ही मत तो भी फसल काटोगे; उखाड़-उखाड़कर फेंको कि और-और उग आएगा।

व्यर्थ को बनाने में श्रम नहीं करना पड़ता; सार्थक को बनाने में बड़ा श्रम करना पड़ता है। इसलिए, तुमने व्यर्थ को चुना है। वह अपने से उग रहा है। किसी को चोर होने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती; चोरी घास-पात की तरह उगती है। किसी को कामवासना से भरने के लिए कोई श्रम करना पड़ता है ? कोई प्रार्थना, कोई योग, कोई साधना ? वह घास-पात की तरह उगती है। क्रोध करने के लिए कहीं सीखने जाना पड़ता है ? किसी विद्यापीठ में ? नहीं, वह घास-पात की तरह बढ़ता है। ध्यान सीखना हो तो कठिनाई शुरू होती है। प्रेम सीखना हो तो बड़ी कठिनाई शुरू होती है; मोह बढ़ता है अपने-आप, घास-पात की तरह। प्रेम श्रम मांगता है और प्रेम को अगर लाना हो तो घास-पात को प्रतिक्षण उखाड़कर फेंकना पड़ेगा; घास-पात उस सबको खा जाएगा, जो सार्थक है; उस सब को ढांक लेगा, छिपा लेगा।

व्यर्थ की एक खूबी है कि वह तुमसे श्रम नहीं मांगता; तुम आलसी बने रहो, वह अपने-आप बढ़ता है। वह तुम्हें मृत्यु के आखिरी क्षण तक पकड़े रहेगा।

साधक का अर्थ है : जिसने सार्थक की खोज शुरू कर दी। सार्थक को पाना यात्रा है—पर्वत की तरफ, ऊंचाई की तरफ। व्यर्थ को पाना लुढ़कने जैसा है; जैसे, पत्थर पहाड़ से लुढ़कता हो, वह अपने-ही-आप चला आता है।
गुरुत्वाकर्षण उसे नीचे ले आता है, कुछ करना नहीं पड़ता।

तुमने अब तक जीवन में कुछ नहीं किया है, इसलिए तुम व्यर्थ हो। तुम कहोगे, 'नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैंने धन कमाया, पद-प्रतिष्ठा पर पहुंचा। मैंने बड़ी उपाधियां इकट्ठी की हैं।' तो मैं तुमसे यह कहता हूं कि वह तुमने किया नहीं, वह घास-पात की

तरह अपने आप बढ़ा है। और, अगर गौर से तुम भीतर विश्लेषण करोगे तो तुम्हें भी दिखाई पड़ जाएगा कि धन कमाने के लिए तुमने कुछ किया नहीं; धन की आकांक्षा घास-पात की तरह तुम्हारे भीतर थी, वह बढ़ गयी है। तुम उखाड़कर भी फेंको तो भी बढ़ जाती है। तुमने घर बनाने के लिए कुछ किया नहीं; वह वासना तुम्हारे भीतर घास-पात की तरह बढ़ी है। वह मृत्यु के आखिरी क्षण तक तुम्हें पकड़े रहेगी।

साधक का अर्थ है : जो इस सत्य को समझ जाए कि जो अपने-आप बढ़ रहा है, वह व्यर्थ ही होगा; मुझे कुछ बोना पड़ेगा।

मैंने सुना है कि एक महिला एक मनोवैज्ञानिक के पास गयी और उसने कहा कि अब सहायता की जरूरत है। बहुत दिन टाला, लेकिन अब मुझे कहना ही पड़ेगा; मेरी सहायता करो। उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा, 'क्या है समस्या ?' उसने कहा, 'समस्या मेरी नहीं है, मेरे पति की है। समस्या यह है कि जैसा प्रेम प्रथम दिनों में उन्होंने दिखाया था, अब वह धीरे-धीरे खो गया। और, जैसी प्रगाढ़ वासना उनमें पहले थी, वह धीरे-धीरे क्षीण हो गयी है। पहले वे बाढ़ की तरह थे, अब वे एक सूखी नदी की तरह हुए जा रहे हैं।'

मनोवैज्ञानिक ने भीतर से तो हंसना चाहा, लेकिन बाहर उसने गंभीरता रखी—व्यावसायिक की गंभीरता—और उसने पूछा, 'लेकिन, आपकी उम्र क्या है ?' उस महिला ने कहा, 'बस, केवल बहत्तर वर्ष।'

'और, तुम्हारे पति की उम्र ?'

तो उसने कहा, 'बस, केवल छियासी वर्ष।'

सभी लोग ऐसा सोचते हैं कि 'बस केवल अस्सी-नब्बे; केवल मृत्यु के खिलाफ लगाये हुए हैं। अभी कोई उम्र है; अभी तो जैसे शुरुआत है ! और, मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कब तुम्हें यह लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हुए कि पति की ऊर्जा खो रही है, शक्ति खो रही है, प्रेम-वासना कम हो रही है। पत्नी ने कहा, 'कल रात और आज सुबह फिर।'

अंतिम, मरते क्षण तक कचरा ही पकड़े रखता है; क्योंकि उसके लिए कुछ करने की जरूरत नहीं, वह अपने से उग रहा है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि ध्यान करते हैं, छूट-छूट जाता है; दो दिन चलता है, फिर बंद हो जाता है। ऐसा वासना के साथ नहीं होता। ऐसा क्रोध के साथ नहीं होता। तुम कभी भूलकर भी छोड़ नहीं पाते। उसे तुम पकड़े ही रहते हो। मामला

क्या है ? ध्यान कर-करके छूट जाता है; दो दिन करके फिर भूल जाते हैं। फिर चार-छह महीने में याद आती है। प्रार्थना कर-करके छूट जाती है; और, क्रोध और लोभ और काम और मोह ?

एक तथ्य को समझने की कोशिश करो—क्योंकि, ध्यान तुम्हें करना पड़ता है, इसलिए छूट-छूट जाता है। वे बीज हैं जो बोने पड़ते हैं; उन्हें सम्हालना पड़ेगा और यह सब कचरा अपने-आप उगता है। जो भी अपने-आप चल रहा है, उसे व्यर्थ समझना और जब तक तुम उसी में जीते रहोगे, तब तक तुम्हें कुछ भी न मिलेगा। मौत के समय तुम पाओगे कि तुम खाली हाथ आये और खाली हाथ जा रहे हो। और, यह अविवेक ही माया है। यह मूर्च्छा है—यह भेद न कर पाना कि क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है।

शंकर ने सार्थक और व्यर्थ के विवेक को भी ज्ञान कहा है—जीवन में यह दिखाई पड़ जाये कि यह सार्थक और यह व्यर्थ। वहां दोनों हैं—वहां घास-पात भी हैं और फूल के पौधे भी हैं। तुम्हें ही अपने जीवन के अनुभव से तय करना पड़ेगा कि क्या सार्थक है। सार्थक पर दृष्टि आ जाये तो ब्रह्म पर दृष्टि आ गई और व्यर्थ पर दृष्टि लगी रहे तो माया में भटकन है।

न तुम्हें पता है कि तुम कौन हो; न तुम्हें पता है कि तुम किस दिशा में जा रहे हो; न तुम्हें पता है कि तुम कहां से आ रहे हो, तुम बस रास्ते के किनारे के कचरे से उलझे हुए हो। राह के किनारे को तुम ने घर बना लिया है। और, इतनी चिंताओं से तुम भरे हो—इस व्यर्थ के कचरे के कारण, जो तुम्हारे बिना ही उगता रहा है। तुम्हें इस संबंध में चिंतित होने का कोई भी प्रयोजन नहीं।

अविवेक माया है। अविवेक का अर्थ है : भेद न कर पाना, डिसक्रिमिनेशन का अभाव, यह तय न कर पाना कि क्या हीरा है और क्या पत्थर है। जीवन के जौहरी बनना होगा। जीवन के जौहरी बनने से ही विवेक पैदा होता है।

तुम्हारे पास जीवन है। और, तुम खोजो। और, इसको मैं खोज की कसौटी कहता हूं कि जो अपने-आप चल रहा है, उसे तुम व्यर्थ जानना। और, जो तुम्हारे चलाने से भी नहीं चलता, उसे तुम सार्थक जानना। यह कसौटी है। और, जिस दिन तुम्हारे जीवन में वह चलने लगे, जिसे तुम चलाना चाहते थे और जिसका चलना मुश्किल था, तो उस दिन समझना की फूल आयेंगे। और, जिस दिन उसका उगना बंद हो जाए, जो अपने-आप उगता था, समझना कि माया समाप्त हुई।

मोह-आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं; लेकिन, आत्मज्ञान

नहीं होता। और, यह व्यर्थ इतना महत्वपूर्ण हो गया है जीवन में कि जब तुम सार्थक को भी साधने जाते हो, तब भी सार्थक नहीं सधता, व्यर्थ ही सधता है।

लोग ध्यान करने आते हैं तो भी उनकी आकांक्षा को समझने की कोशिश करो तो बड़ी हैरानी होती है। ध्यान से भी वे व्यर्थ को ही मांगते हैं। मेरे पास वे आते हैं और कहते हैं कि 'ध्यान करना चाहता हूं, क्योंकि शारीरिक बीमारियां हैं। क्या आप आश्वासन देते हैं कि ध्यान करने से वे दूर हो जाएंगी।' अच्छा होता, वे चिकित्सक के पास गये होते। अच्छा होता कि उन्होंने वह आदमी खोजा होता, जो शरीर की चिकित्सा करता। वे आत्मा के वैद्य के पास भी आते हैं तो भी शरीर के इलाज के लिए ही। वे ध्यान भी करने को तैयार हैं, तो भी ध्यान उनके लिए औषधि से ज्यादा नहीं है; और वे औषधि भी शरीर के लिए।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि बड़ी कठिनाई में जीवन जी रहा है, धन की असुविधा है; क्या ध्यान करने से सब ठीक हो जाएगा ? यह मोह का आवरण इतना घना है कि तुम अगर अमृत को भी खोजते हो तो जहर के लिए। बड़ी हैरानी की बात है ! तुम चाहते तोअमृत हो; लेकिन उससे आत्महत्या करना चाहते हो। और, अमृत से कोई आत्महत्या नहीं होती। अमृत पीया कि तुम अमर हो जाओगे; लेकिन तुम अमृत की तलाश में आते हो तो भी तुम्हारा लक्ष्य आत्महत्या का है। धन या देह, संसार का कोई-न-कोई अंग, वह भी तुम धर्म से ही पूरा करना चाहते हो।

सुनो लोगों की प्रार्थनाएं, मंदिरों में जाकर वे क्या मांग रहे हैं; और तुम पाओगे कि वे मंदिर में भी संसार मांग रहे हैं। किसी के बेटे की शादी नहीं हुई है; किसी के बेटे को नौकरी नहीं मिली है; किसी के घर में कलह है—मंदिर में भी तुम संसार को ही मांगने जाते हो। तुम्हारा मंदिर सुपर-मार्केट होगा। वह बड़ी दुकान होगा, जहां ये चीजें भी बिकती हैं; जहां सभी कुछ बिकता है। लेकिन तुम्हें अभी मंदिर की कोई पहचान नहीं। इसलिये तुम्हारे मंदिरों में जो पुजारी बैठे हैं, वे दुकानदार हैं; क्योंकि वहां जो लोग आते हैं, वे संसार के ही ग्राहक हैं। असली मंदिर से तो तुम बचोगे।

मेरे एक मित्र हैं, दांत के डाक्टर हैं। उनके घर में मेहमान था। बैठा था उनके बैठकखाने में एक दिन सुबह तो एक छोटा-सा बच्चा डरा-डरा भीतर प्रविष्ट हुआ। चारों तरफ उसने चौंककर देखा। उसने मुझसे पूछा कि 'क्या मैं पूछ सकता हूं (बड़े फुसफुसाकर) कि डाक्टर साहिब भीतर हैं या नहीं ?' मैंने कहा कि वे अभी बाहर गये हैं। प्रसन्न हो गया यह बच्चा। वह कहने लगा, 'मेरी मां ने भेजा था, दांत दिखाने को।

क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि वे फिर कब बाहर आएंगे ?'

बस, ऐसी तुम्हारी हालत है। अगर मंदिर तुम्हें मिल जाए तो तुम बचोगे। दांत का दर्द तुम सह सकते हो; लेकिन दांत का डाक्टर तुम्हें जो दर्द देगा, वह तुम सहने को तैयार नहीं। हम छोटे बच्चों की भांति हैं।

तुम संसार की पीड़ा सह सकते हो; लेकिन, धर्म की पीड़ा सहने की तुम्हारी तैयारी नहीं है। निश्चित ही धर्म भी पीड़ा देगा। धर्म पीड़ा नहीं देता; तुम्हारे संसार के दांत इतने सड़ गये हैं कि तुम्हें पीड़ा होगी। धर्म पीड़ा नहीं देता; धर्म तो परम आनंद है। लेकिन, तुम दुख में ही जीये हो और तुमने दुख ही अर्जित किया है। तुम्हारे सब दांत पीड़ा से भर गये हैं; इनको खींचने में कष्ट होगा। तुम इतने डरते हो इनको खींचे जाने से कि तुम राजी हो उनकी पीड़ा और जहर को झेलने को। इससे तुम विषाक्त हुए जा रहे हो; तुम्हारा सारा जीवन गलत हुआ जा रहा है। लेकिन तुम इस दुख से परिचित हो।

आदमी परिचित दुख को झेलने को राजी होता है; अपरिचित सुख से भी भय लगता है! यह दांत भी तुम्हारा है। यह दर्द भी तुम्हारा है। इससे तुम जन्मों-जन्मों से परिचित हो। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि अगर ये दांत निकल जाएं, यह पीड़ा खो जाए तो तुम्हारे जीवन में पहली दफा आनंद का द्वार खुलेगा।

तुम मंदिर भी जाते हो तो तुम पूछते हो पुजारी से कि परमात्मा फिर कब बाहर होंगे, कब मैं आऊं? तुम जाते भी हो, तुम जाना भी नहीं चाहते हो। तुम कैसी चाल अपने साथ खेलते हो, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है।

निरंतर मैं देखकर—तुम्हारी समस्याओं को देखकर—मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि तुम्हारी एक मात्र समस्या है कि तुम ठीक से नहीं समझ पा रहे हो कि तुम क्या करना चाहते हो। ध्यान करना चाहते हो, यह भी पक्का नहीं है। फिर ध्यान नहीं होता तो तुम परेशान होते हो। लेकिन जो करने का तुम्हारा पक्का ही नहीं है, वह पूरे-पूरे भाव से करोगे नहीं, आधे-आधे भाव से करोगे। और, आधे-आधे भाव से जीवन में कुछ भी नहीं होता। व्यर्थ तो बिना भाव के भी चलता है। उसमें तुम्हें कुछ भी लगाने की जरूरत नहीं; उसकी अपनी ही गति है। लेकिन, सार्थक में जीवन को डालना पड़ता है, दांव पर लगाना होता है।

यह सूत्र कहता है : मोह-आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता। मोह का आवरण इतना घना है कि अगर तुम धर्म की तरफ भी जाते हो तुम चमत्कार खोजते हो वहां भी। वहां भी अगर बुद्ध खड़े हों तो न

पहचान सकोगे। तुम सत्य साईं बाबा को पहचानोगे। अगर बुद्ध और 'सत्य साईं बाबा' दोनों खड़े हों तो तुम सत्य साईं बाबा के पास जाओगे, बुद्ध के पास नहीं। क्योंकि बुद्ध ऐसी मूढ़ता नहीं करेंगे कि तुम्हें ताबीज दें, हाथ से राख गिराएं; बुद्ध कोई मदारी नहीं हैं। लेकिन तुम मदारियों की तलाश में हो। तुम चमत्कार से प्रभावित होते हो; क्योंकि तुम्हारी गहरी आकांक्षा, वासना परमात्मा की नहीं है; तुम्हारी गहरी वासना संसार की है।

जहां तुम चमत्कार देखते हो, वहां लगता है कि यहां कोई गुरु है। यहां आशा बंधती है कि वासना पूरी होगी। जो गुरु हाथ से ताबीज निकाल सकता है, वह चाहे तो कोहिनूर भी निकाल सकता है; बस गुरु के चरणों में, सेवा में लग जाने की जरूरत है, आज नहीं कल कोहिनूर भी मिलेगा। क्या फर्क पड़ता है गुरु को—ताबीज निकाला, कोहिनूर भी निकल सकता है। कोहिनूर की तुम्हारी आकांक्षा है। कोहिनूर के लिए छोटे-छोटे लोग ही नहीं, बड़े-से-बड़े लोग भी चोर होने को तैयार हैं। जिस आदमी के हाथ से राख गिर सकती है सुनने से, वह चाहे तो तुम्हें अमरत्व प्रदान कर सकता है; बस केवल गुरु-सेवा की जरूरत है!

नहीं, बुद्ध से तुम वंचित रह जाओगे; क्योंकि, वहां कोई चमत्कार घटित नहीं होता। जहां सारी वासना समाप्त हो गयी, वहां तुम्हारी किसी वासना को तृप्त करने का भी कोई सवाल नहीं है। बुद्ध के पास जो महानतम चमत्कार, आखिरी चमत्कार घटित होता है, वह निर्वासना का प्रकाश है वहां; लेकिन तुम्हारी वासना से भरी आंखें वह न देख पाएंगी। बुद्ध को तुम तभी देख पाओगे, तभी समझ पाओगे, उनके चरणों में तुम तभी झुक पाओगे, जब सच में ही संसार की व्यर्थता तुम्हें दिखाई पड़ गयी हो, मोह का आवरण टूट गया हो।

मोह एक नशा है। जैसे नशे में डूबा हुआ कोई आदमी चलता है, डगमगाता है; पक्का पता भी नहीं कि कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है; चलता है बेहोशी में, ऐसे तुम चलते रहे हो। कितना ही तुम सम्हालो अपने पैरों को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी शराबी सम्हालने की कोशिश करते हैं। तुम अपने को भला धोखा दे दो, दूसरों को कोई धोखा नहीं हो पाता। सभी शराबी कोशिश करते हैं कि वे नशे में नहीं है; जितनी कोशिश करते हैं, उतना ही प्रगट होता है। और, यह मोह नशा है।

और जब मैं कहता हूं कि मोह नशा है, तो बिलकुल रासायनिक अर्थों में कहता हूं कि मोह नशा है। मोह की अवस्था में तुम्हारा पूरा शरीर नशीले द्रव्यों से भर जाता

है—वैज्ञानिक अर्थों में भी। जब तुम किसी एक स्त्री के प्रेम में गिरते हो तो तुम्हारे पूरे शरीर का खून विशेष रासायनिक द्रव्यों से भर जाता है। वे द्रव्य वही हैं जो भांग में, गांजे में, एल. एस. डी. में हैं। इसलिए अब जिसके तुम प्रेम में पड़ गये हो, वह स्त्री अलौकिक दिखायी पड़ने लगती है। वह स्त्री फीकी नहीं मालूम होती। जिस पुरुष के प्रेम में तुम पड़ जाओ, वह पुरुष इस लोक का नहीं मालूम पड़ता। नशा उतरेगा, तब वह दो कौड़ी का दिखायी पड़ेगा। जब तक नशा है... !

इसलिए तुम्हारा कोई भी प्रेम स्थायी नहीं हो सकता—क्योंकि नशे की अवस्था में किया गया है। वह मोह का एक रूप है। होश में नहीं हुआ है, बेहोशी में हुआ है। इसलिए हम प्रेम को अंधा कहते हैं। प्रेम अंधा नहीं है, मोह अंधा है। हम भूल से मोह को प्रेम समझते हैं। प्रेम तो आंख है; उससे बड़ी कोई आंख नहीं है। प्रेम की आंख से तो परमात्मा दिखायी पड़ जाता है—इस संसार में छिपा हुआ।

मोह अंधा है; जहां कुछ भी नहीं है वहां सब कुछ दिखायी पड़ता है। मोह एक सपना है। और, जिनको हम योगी कहते हैं, वे भी इस मोह से ग्रस्त होते हैं। सिद्धियां तो हल हो जाती हैं। वे कुछ शक्तियां तो पा लेते हैं। शक्तियां पानी कठिन नहीं है।

दूसरे के मन के विचार पढ़े जा सकते हैं—सिर्फ थोड़ा ही उपाय करने की जरूरत है। दूसरे के विचार प्रभावित किये जा सकते हैं—थोड़ा ही उपाय करने की जरूरत है। आदमी आये—तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मन में क्या खयाल है। थोड़े ही उपाय करने की जरूरत है। यह एक विज्ञान है; धर्म का इससे कुछ लेना-देना नहीं। मन को पढ़ने का विज्ञान है, जैसे किताब को पढ़ने का विज्ञान है। जो अनपढ़ है, वह तुम्हें किताबं को पढ़ते देखकर बहुत हैरान होता है कि क्या चमत्कार हो रहा है ! जहां कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता उसे—काले धब्बे हैं—वहां से तुम ऐसा आनंद ले रहे हो—कविता का, उपनिषद का, वेद का—मंत्रमुग्ध हो रहे हो ! अपढ़ देखकर हैरान होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में अकेला ही पढ़ा-लिखा आदमी था। और, जब अकेला ही कोई पढ़ा-लिखा आदमी हो तो पक्का नहीं कि वह पढ़ा-लिखा है भी कि नहीं। क्योंकि, कौन पता लगाए ? गांव में जिसको भी चिट्ठी—वगैरह लिखवानी होती, वह नसरुद्दीन के पास आता था, वह चिट्ठी लिख देता था। एक दिन एक बुढ़िया आयी। उसने कहा कि 'चिट्ठी लिख दो, नसरुद्दीन !' नसरुद्दीन ने कहा कि 'न लिख सकूंगा, मेरे पैर में बहुत दर्द है।'

बूढ़ी औरत ने कहा, 'हद हो गयी ! पैर की दर्द से चिट्ठी लिखने का संबंध क्या ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'उस विस्तार में मत जाओ। लेकिन, मैं कहता हूं कि पैर में दर्द है, मैं चिट्ठी न लिखूंगा।'

बुढ़िया भी जिद्दी थी। उसने कहा कि 'बिना जाने मैं जाऊंगी नहीं। भले मैं बेपढ़ी-लिखी हूं, लेकिन यह मैंने कभी सुना ही नहीं कि पैर के दर्द से चिट्ठी लिखने का क्या संबंध है।' नसरुद्दीन ने कहा कि 'तू नहीं मानती तो मैं बता दूं—फिर पढ़ने दूसरे गांव तक कौन जाएगा ? मुझ ही को जाना पड़ता है। मेरी लिखी चिट्ठी मैं ही पढ़ सकता हूं। अब मेरे पैर में दर्द है, मैं लिखनेवाला नहीं हूं।'

गैरपढ़ा-लिखा आदमी किताब में खोये आदमी को देखकर चमत्कृत होता है। लेकिन, पढ़ना सीखा जा सकता है; उसकी कला है।

तुम्हारे मन में विचार चलते हैं—तुम देखते हो विचारों को, दूसरा भी उनको देख सकता है; उसकी कला है। लेकिन, विचारों को देखने की उस कला का धर्म से कोई भी संबंध नहीं। न किताब को पढ़ने की कला से धर्म का कोई संबंध है। न दूसरे के मन को पढ़ने की कला से धर्म का कोई संबंध है। जादूगर सीख लेते हैं—वे कोई सिद्ध-पुरुष नहीं है।

लेकिन तुम बहुत चमत्कृत होओगे। तुम गये किसी साधु के पास और उसने कहा कि आओ; तुम्हारा नाम लिया, तुम्हारे गांव का पता बताया और कहा कि 'तुम्हारे घर के बगल में एक नीम का झाड़ है' —तुम दीवाने हो गये ! लेकिन, साधु को नीम के झाड़ से क्या लेना, तुम्हारे गांव से क्या लेना, तुम्हारे नाम से क्या मतलब ? साधु तो वह है जिसे यह पता चल गया है कि किसी का कोई नाम नहीं, रूप नहीं, किसी का कोई गांव नहीं। ये गांव, नाम, रूप —सब संसार के हिस्से हैं। तुम संसारी हो ! वह साधु भी तुम्हें प्रभावित कर रहा है, क्योंकि वह तुमसे गहरे संसार में है। उसने और भी कला सीख ली।

तुम्हारे बिना बताये वह बोलता है। वह तुम्हें प्रभावित करना चाहता है। ध्यान रखो—जब तक तुम दूसरे को प्रभावित करना चाहते हो, तब तक तुम अहंकार से ग्रस्त हो। आत्मा किसी को प्रभावित करना नहीं चाहती। दूसरे को प्रभावित करने में सार भी क्या है ! पानी पर बनायी हुई लकीरों जैसा है।

क्या होगा मुझे—दस हजार लोग प्रभावित हों कि दस करोड़ लोग प्रभावित हों। इससे होगा क्या ? उनको प्रभावित करके मैं क्या पा लूंगा। अज्ञानियों की भीड़ को

प्रभावित करने की इतनी उत्सुकता अज्ञान की खबर देती है। राजनेता दूसरों को प्रभावित करने में उत्सुक होता है—समझ में आता है; लेकिन धार्मिक व्यक्ति क्यों दूसरों को प्रभावित करने में उत्सुक होगा !

जब भी तुम दूसरों को प्रभावित करना चाहते हो, तब एक बात याद रखना कि तुम आत्मस्थ नहीं हो। दूसरे को प्रभावित करने का अर्थ है कि तुम अहंकार-स्थित हो। अहंकार दूसरे के प्रभाव को भोजन की तरह उपलब्ध करता है; उसी पर वह जीता है। जितनी आंखें मुझे पहचान लें, उतना मेरा अहंकार बड़ा होता है। अगर सारी दुनिया मुझे पहचान ले, मेरा अहंकार सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। कोई मुझे न पहचाने—गांव से निकलूं, सड़क से गुजरूं, कोई देखे न, कोई रेकगनीशन नहीं, कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं; किसी की आंख में झलक न आये, लगे ऐसा जैसा कि मैं हूं ही नहीं—बस, वहां अहंकार को चोट है।

अहंकार चाहता है कि दूसरे ध्यान दें। यह बड़े मजे की बात है—अहंकार ध्यान नहीं करना चाहता; दूसरे उस पर ध्यान करें..., सारी दुनिया उसकी तरफ देखे, वह केंद्र हो जाए।

धार्मिक व्यक्ति, दूसरा मेरी तरफ देखे, इसकी फिक्र नहीं करता; मैं अपनी तरफ देखूं—क्योंकि अंततः वही मेरे साथ जाएगा। यह तो बच्चों की बात हुई। बच्चे खुश होते हैं कि दूसरे उनकी प्रशंसा करें। सर्टीफिकेट घर लेकर आते हैं तो नाचते-कूदते आते हैं। लेकिन बुढ़ापे में भी तुम सर्टीफिकेट मांग रहे हो—तब तुमने जिंदगी गंवा दी !

सिद्धि की आकांक्षा दूसरे को प्रभावित करने में है। धार्मिक व्यक्ति की वह आकांक्षा नहीं है। वही तो सांसारिक का स्वभाव है।

यह सूत्र कहता है कि मोह-आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता। वह कितनी ही बड़ी सिद्धियों को पा ले—उसके छूने से मुर्दा जिंदा हो जाए, उसके स्पर्श से बीमारियां खो जाएं, वह पानी को छू दे और औषधि हो जाए—लेकिन उससे आत्मज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। सच तो स्थिति उलटी है कि जितना ही वह व्यक्ति सिद्धियों से भरता जाता है, उतना ही आत्मज्ञान से दूर होता जाता है; क्योंकि जैसे-जैसे अहंकार भरता है, वैसे-वैसे आत्मा खाली होती है और जैसे-जैसे अहंकार खाली होता है, वैसे-वैसे आत्मा भरती है, तुम दोनों को साथ-ही-साथ न भर पाओगे।

दूसरे को प्रभावित करने की आकांक्षा छोड़ दो, अन्यथा योग भी भ्रष्ट हो जाएगा।

तब तुम योग भी साधोगे तो वह भी राजनीति होगी, धर्म नहीं। और राजनीति एक जाल है। फिर येन-केन-प्रकारेण आदमी दूसरे को प्रभावित करना चाहता है। फिर सीधे और गलत रास्ते से भी प्रभावित करना चाहता है। लेकिन प्रभावित तुम करना ही इसलिए चाहते हो, क्योंकि तुम दूसरे का शोषण करना चाहते हो।

मैंने सुना है, चुनाव हो रहे थे और एक संध्या तीन आदमी हवालात में बंद किये गये। अंधेरा था—तीनों ने अंधेरे में एक-दूसरे को परिचय दिया। पहले व्यक्ति ने कहा, 'मैं हूं सरदार संतसिंह। मैं सरदार सिरफोड़सिंह के लिए काम कर रहा था।' दूसरे ने कहा, 'गजब हो गया ! मैं हूं सरदार शैतानसिंह। मैं सरदार सिरफोड़सिंह के विरोध में काम कर रहा था।' तीसरे आदमी ने कहा, 'वाहे गुरुजी की फतह ! वाहे गुरुजी का खालसा ! हद हो गयी ! मैं खुद हूं सरदार सिरफोड़सिंह।'

नेता, अनुयायी, पक्ष के, विपक्ष के—सभी कारागृहों के योग्य हैं। वही उनकी ठीक जगह है, जहां उन्हें होना चाहिए; क्योंकि, पाप की शुरुआत वहां से होती है, जहां मैं दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करना चाहता हूं।

क्योंकि अहंकार न शुभ जानता है, न अशुभ; अहंकार सिर्फ अपने को भरना जानता है। कैसे अपने को भरता है, यह बात गौण है। अहंकार की एक ही आकांक्षा है कि मैं अपने को भरूं और परिपुष्ट हो जाऊं। और, चूंकि अहंकार एक सूनापन है, सब उपाय करके भी भर नहीं पाता, खाली ही रह जाता है। जैसे-जैसे उम्र हाथ से खोती है, वैसे-वैसे अहंकार पागल होने लगता है; क्योंकि अभी तक भर नहीं पाया, अभी तक यात्रा अधूरी है और समय बीता जा रहा है। इसलिए,बूढ़े आदमी चिड़चिड़े हो जाते हैं। वह चिड़चिड़ापन किसी और के लिए नहीं है; वह चिड़चिड़ापन अपने जीवन की असफलता के लिए है। जो भरना चाहते थे, वे भर नहीं पाये। और बूढ़े आदमी की चिड़चिड़ाहट और घनी हो जाती है; क्योंकि उसे लगता है कि जैसे-जैसे वह बूढ़ा हुआ है, वैसे-वैसे लोगों ने ध्यान देना बंद कर दिया है; बल्कि लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह कब समाप्त हो जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया था। मैंने उससे पूछा कि 'क्या तुम कुछ कारण बता सकते हो, नसरुद्दीन। परमात्मा ने तुम्हें इतनी लंबी उम्र क्यों दी ?' तो उसने बिना कुछ झिझककर कहा, 'संबंधियों के धैर्य की परीक्षा के लिए।'

सभी बूढ़े संबंधियों के धैर्य की परीक्षा कर रहे हैं। वे चौबीस घंटे देख रहे हैं कि

ध्यान उनकी तरफ से हटता जा रहा है। मौत तो उन्हें बाद में मिटायेगी, लोगों की पीठ उन्हें पहले ही मिटा देती है। उससे चिड़चिड़ापन पैदा होता है।

तुम सोच भी नहीं सकते कि निक्सन का चिड़चिड़ापन अभी कैसे होगा। सब की पीठ हो गयी, जिनके चेहरे थे। जो अपने थे, वे पराये हो गये। जो मित्र थे, वे शत्रु हो गये। जिन्होंने सहारे दिये थे, उन्होंने सहारे छीन लिये। सब ध्यान हट गया। निक्सन अस्वस्थ हैं, बेचैन हैं, परेशान हैं। कोई भी आदमी जाता है निक्सन के पास तो उससे पहली बात वे यह पूछते हैं कि मैंने जो किया, वह ठीक किया ? लोग मेरे संबंध में क्या कह रहे हैं ?

अभी यह आदमी शिखर पर था, अब यह आदमी खाई में पड़ा है ! यह आदमी तो वही है जो कल था; पद पर था—वही आदमी अभी भी है। सिर्फ अहंकार के शिखर पर था, अब खाई में है; आत्मा तो जहां-की-तहां है। काश ! इस आदमी को उसकी याद आ जाए, जिसका न कोई शिखर होता, न कोई खाई होती; न कोई हार होती, न जीत होती; जिसको लोग देखें तो ठीक, न देखें तो ठीक; जिसमें कोई फर्क नहीं पड़ता; जो एकरस है।

उस एकरसता का अनुभव तुम्हें तभी होगा, जब तुम लोगों का ध्यान मांगना बंद कर दोगे। भिखमंगापन बंद करो। सिद्धियों से क्या होगा ? लोग तुम्हें चमत्कारी कहेंगे। लाखों की भीड़ इकट्ठी होगी; लेकिन लाखों मूढ़ों को इकट्ठा करके क्या सिद्ध होता है कि तुम इन लाखों मूढ़ों के ध्यान के केंद्र हो ! तुम महामूढ़ हो !

अज्ञानी से प्रशंसा पाकर भी क्या मिलेगा ! जिसे खुद ज्ञान नहीं मिल सका, उसकी प्रशंसा मांगकर तुम क्या करोगे ? जो खुद भटक रहा है, उसके तुम नेता हो जाओगे ? उसके सम्मान का कितना मूल्य है ?

सुना है मैंने, एक सूफी फकीर हुआ; फरीद। वह जब बोलता था तो कभी लोग ताली बजाते थे तो वह रोने लगता। एक दिन उसके शिष्यों ने पूछा कि लोग ताली बजाते हैं तो तुम रोते किसलिए हो। तो फरीद ने कहा कि वे ताली बजाते हैं, तब मैं समझता हूं कि मुझसे कोई गलती हो गयी होगी। अन्यथा, वे ताली कभी न बजाते। ये इतने लोग ! जब वे ताली नहीं बजाते, उनकी समझ में नहीं आता, तब मैं समझता हूं कि कुछ ठीक बात कह रहा हूं।

आखिर, गलत आदमी की ताली का मूल्य क्या है ? तुम किसके सामने अपने को 'सिद्ध' सिद्ध करना चाह रहे हो ? अगर तुम संसार के सामने अपने को 'सिद्ध' सिद्ध

करना चाह रहे हो तो तुम नासमझों की प्रशंसा के लिए आतुर हो। तुम अभी नासमझ हो। और, अगर तुम सोचते हो कि परमात्मा के सामने तुम अपने को सिद्ध करना चाह रहे हो कि मैं सिद्ध हूं, तो तुम और महा नासमझ हो; क्योंकि उसके सामने तो विनम्रता चाहिए। वहां तो अहंकार काम न करेगा। वहां पर तो तुम मिटकर जाओगे तो ही स्वीकार हो पाओगे। वहां तुम अकड़ लेकर गये तो तुम्हारी अकड़ ही बाधा हो जायेगी।

इसलिए, तथाकथित सिद्ध परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते। बहुत-सी सिद्धियां उनकी हो जाती हैं, लेकिन असली सिद्धि चूक जाती है। वह असली सिद्धि है—आत्मज्ञान। क्यों आत्मज्ञान चूक जाता है ? क्योंकि सिद्धि भी दूसरे की तरफ देख रही है, अपनी तरफ नहीं। अगर कोई भी न हो दुनिया में, तुम अकेले होओ तो तुम सिद्धियां चाहोगे ? तुम चाहोगे कि पानी को छूऊं और औषधि हो जाए ? मरीज को छूऊं, स्वस्थ हो जाये ? मुर्दे को छूऊं, जिंदा हो जाए ? कोई भी न हो पृथ्वी पर, तुम अकेले होओ तो तुम ये सिद्धियां चाहोगे ? तुम कहोगे, क्या करेंगे; देखनेवाले ही न रहे। देखनेवाले के लिए ही सिद्धियां हैं।

जब तक दूसरे पर तुम्हारा ध्यान है, तब तक अपने पर तुम्हारा ध्यान नहीं आ सकता। और, आत्मज्ञान तो उसे फलित होता है, जो दूसरे की तरफ से आंखें अपनी तरफ मोड़ लेता है।

स्थायी रूप से मोह जय होने पर सहज विद्या फलित होती है।

स्थायी रूप से मोह जय होने पर सहज विद्या फलित होती है—मोह को जय करना है। मोह का क्या अर्थ है ? मोह का अर्थ है : दूसरे के बिना मैं न जी सकूंगा; दूसरा मेरा केंद्र है।

तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी, जिनमें कोई राजा होता है और जिसके प्राण किसी पक्षी में, तोते में, मैना में बंद होते हैं। तुम उस राजा को मारो, न मार पाओगे। गोली आरपार निकल जाएगी, राजा जिंदा रहेगा। तीर छिद जाएगा हृदय में, राजा मरेगा नहीं। जहर पिला दो, कोई असर न होगा। राजा जीवित रहेगा। तुम्हें पता लगाना पड़ेगा उस तोते का, मैना का, जिसमें उसके प्राण बंद हैं। उसे तुम मरोड़ दो, उसकी तुम गर्दन तोड़ दो—उधर राजा मर जाएगा। ये बच्चों कि कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं; बूढ़ों के भी समझने योग्य हैं।

मोह का अर्थ है : तुम अपने में नहीं जीते, किसी और चीज में जीते हो। समझो, किसी का मोह तिजोरी में है। तुम उसकी गर्दन मरोड़ दो, वह न मरेगा। तुम तिजोरी लूट

लो, वह मर गया। उनके प्राण तिजोरी में थे। उनका बैंक-बैलेंस खो जाये—वे मर गये। उन्हें तुम मारो, वे मरनेवाले नहीं। जहर पिलाओ—वे जिंदा रहेंगे।

मोह का अर्थ है : तुमने अपने प्राण अपने से हटाकर कहीं और रख दिये हैं। किसी ने अपने बेटे में रख दिये हैं; किसी ने अपनी पत्नी में रख दिये हैं; किसी ने धन में रख दिये हैं; किसी ने पद में रख दिये हैं—लेकिन, प्राण कहीं और रख दिये हैं। जहां होना चाहिए प्राण वहां नहीं हैं। तुम्हारे भीतर प्राण नहीं धड़क रहा है, कहीं और धड़क रहा है। तब तुम मुसीबत में रहोगे।

यही मोह संसार है; क्योंकि जहां-जहां तुमने प्राण रख दिये, उनके तुम गुलाम हो जाओगे। जिस राजा के प्राण तोते में बंद हैं, वह तोते का गुलाम होगा; क्योंकि तोते के ऊपर सब कुछ निर्भर है। तोता मर जाये तो उसके प्राण गये। तो, वह तोते को संभालेगा।

मैंने सुना है कि एक सम्राट एक बार एक ज्योतिषी पर बहुत नाराज हो गया; क्योंकि ज्योतिषी ने उसके प्रधानमंत्री की भविष्यवाणी की और कहा कि यह कल मर जाएगा। और, कल प्रधानमंत्री मर भी गया। राजा बहुत चिंतित हुआ। और, उसे यह शक भी पकड़ा कि यह भी हो सकता है कि यह प्रधानमंत्री इसके कहने के कारण मर गया। इस पर भाव इतना गहरा हो गया कि मर गया, इसकी बात का प्रभाव इतना हो गया कि मर गया, और अब यह झंझट का आदमी है। यह अगर मुझसे भी कह दे कि कल तुम मर जाओगे, तो बचना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इसका मुझपर भी प्रभाव पड़ेगा।

उसने ज्योतिषी को कारागृह में डाल दिया। ज्योतिषी ने पूछा कि क्यों ? सम्राट ने कहा कि 'तुम खतरनाक हो ! मुझे लगता है कि यह भविष्यवाणी के कारण नहीं मरा, मरनेवाला था इसलिए नहीं मरा; तुमने कहा तो यह बात उसके मन में बैठ गयी, वह सम्मोहित हो गया और मर गया। तुम खतरनाक हो।' उस ज्योतिषी ने कहा कि 'इसके पहले कि तुम मुझे कारागृह में डालो मैं एक बात तुम्हें बता दूं कि तुम्हारा भविष्य भी मैंने निकाला हुआ है।' सम्राट ने बहुत चाहा कि वह भविष्य न सुने; लेकिन ज्योतिषी बोल ही गया। सम्राट ने कहा कि चुप; लेकिन ज्योतिषी ने कहा कि चुप रहने का कोई उपाय ही नहीं। जिस दिन मैं मरूंगा, उसके तीन दिन बाद तुम मरोगे।' बस, अब मुसीबत हो गयी। उस ज्योतिषी को महल में रखना पड़ा। उसकी बड़ी सेवा, चिंता...। उसके राजा हाथ-पैर दबाता; क्योंकि वह जिस दिन मरा, उसके तीन दिन बाद...।

जहां तुम अपने प्राण रख दोगे, उसकी तुम सेवा में लग जाओगे। लोगों को

देखो—वे तिजोरी के पास कैसे जाते हैं। बिलकुल हाथ जोड़े, जैसे मंदिर के पास जाते

हैं। तिजोरी पर 'लाभ-शुभ', 'श्री गणेशाय नमः'... । तिजोरी भगवान है ! उसकी वे पूजा करते हैं।

दीवाली के दिन पागलों को देखो—सब अपनी-अपनी तिजोरी की पूजा कर रहे हैं। वहां उनके प्राण हैं। किस भाव से वे करते हैं, वह भाव देखने जैसा है। दुकानदार हर साल अपनी खाता-बही शुरू करता है, तो स्वस्तिक बनाता है। 'लाभ-शुभ' लिखता है, 'श्री गणेशाय नमः' लिखता है। तुम्हें पता है कि यह गणेश की इतनी स्तुति क्यों करता है? यह गणेश पुराने उपद्रवी हैं।

पुरानी कथा है कि गणेश विघ्न के देवता हैं। दिखते भी इस ढंग से हैं कि उपद्रवी होने चाहिए। एक तो खोपड़ी अपनी नहीं। जिसके पास खोपड़ी अपनी नहीं, वह आदमी पागल है। उससे तुम कुछ भी....कुछ भी असंभव वह कर सकता है। ढंग-डौल उनका देखो—संदिग्ध हैं। चूहे पर सवार हैं। वह चूहा तर्क है; कतरनी की तरह काटता है। तर्क कभी भी भरोसे-योग्य नहीं है। तर्क जहां भी जायेगा, वहां विघ्न उपस्थित करेगा। जिसके जीवन में तर्क घुस जाएगा, उसके जीवन में उपद्रव आ जाएंगे, अराजकता आ जाएगी, सब शांति खो जाएगी।

तो, गणेश पुराने देवता हैं विघ्न के। जहां भी कहीं कुछ शुभ हो रहा हो, वे मौजूद हो जाते हैं। लोग उनसे डरने लगे। डरने के कारण पहले उनको हाथ जोड़ लेते हैं कि कृपा करके आप कृपा रखना,बाकी हम सब संभाल लेंगे। और धीरे-धीरे हालत ऐसी हो गयी कि जो देवता विघ्न का था, लोग उसको मंगल का देवता मानने लगे। पर वे भूल गये हैं कहानी। वह उनका हाथ जोड़ना ठीक ही है कि यहां मत आना। इस तरफ कृपा-दृष्टि रखना।

देखें, तिजोरी के पास किस भाव से भक्त धन की पूजा करता है !

मोह के आवरण का अर्थ होता है कि तुम्हारी आत्मा कहीं और बंद है। वह पत्नी में हो, धन में हो, पद में हो—वह कहीं भी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; लेकिन तुम्हारी आत्मा तुम्हारे भीतर नहीं है—मोह का यह अर्थ है। और शाश्वत, स्थायी रूप से मोह-जय का अर्थ है कि तुमने सारी परतंत्रता छोड़ दी। अब तुम किसी और पर निर्भर होकर नहीं जीते; तुम्हारा जीवन अपने पर निर्भर है। तुम स्वकेंद्रित हुए। तुमने अपने अस्तित्व को ही अपना केंद्र बना लिया। अब पत्नी न रहे, धन न रहे, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा—वे ऊपर की लहरें हैं—तो भी तुम उद्विग्न न हो जाओगे। सफलता रहे

कि विफलता, सुख आये कि दुख—कोई अंतर न पड़ेगा। क्योंकि, अंतर पड़ता था इसलिए कि तुम उन पर निर्भर थे।

मोह-जय का अर्थ है : परम स्वतंत्र हो जाना; मैं किसी पर निर्भर नहीं हूं—ऐसी प्रतीति; मैं अकेला काफी हूं, पर्याप्त हूं—ऐसी तृप्ति। मेरा होना पूरा है, ऐसा भाव मोह-जय है। जब तक दूसरे के होने पर तुम्हारा होना निर्भर है, तब तक मोह पकड़ेगा; तब तक तुम दूसरे को जकड़ोगे कि कहीं छूट न जाये, कहीं खो न जाये रास्ते में; क्योंकि उसके बिना तुम कैसे रहोगे!

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी तो वह औपचारिक रूप से रो रहा था। लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र था, वह बहुत ही ज्यादा शोरगुल मचाकर रो रहा था—छाती पीट रहा है, आंसू बहा रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन से भी न रहा गया। उसने कहा, 'मेरे भाई, मत इतना शोरगुल कर, मैं फिर शादी कर लूंगा। तुम इतने ज्यादा दुखी मत होओ।' वे मित्र जो थे, वे मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी के प्रेमी थे। नसरुद्दीन के प्राण वहां न थे, लेकिन उनके प्राण वहां थे। उसने ठीक ही कहा कि तुम इतना शोरगुल मत करो, मैं फिर शादी करूंगा।

कौन-सी चीज तुम्हें रुलाती है—वही तुम्हारा मोह है। कौन-सी चीज के खो जाने से तुम अभाव अनुभव करते हो—वही तुम्हारा मोह है। सोचना, कौन-सी चीज खो जाए कि तुम एकदम दीन-दीन हो जाओगे—वह तुम्हारे मोह का बिंदु है। और, इसके पहले कि वह खोए, तुम उस पर से अपनी पकड़ छोड़ना, क्योंकि वह खोएगी।

इस संसार में कोई भी चीज स्थिर नहीं है—न मित्रता, न प्रेम—कोई भी चीज स्थिर नहीं है। यहां सब बदलता हुआ है। संसार का स्वभाव प्रतिक्षण परिवर्तन है। यह एक बहाव है—नदी की तरह बह रहा है। यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं। तुम लाख उपाय करो, तो भी कुछ ठहरा हुआ नहीं हो सकता। तुम्हारे उपाय के कारण ही तुम परेशान हो। जो सदा चल रहा है, उसको तुम ठहरना चाहते हो; जो बह रहा है, उसे तुम रोकना चाहते हो, जमाना चाहते हो—वह जमनेवाला नहीं है। वह उसका स्वभाव नहीं है।

परिवर्तन संसार है और वहां तुम चाहते हो कि कुछ स्थायी सहारा मिल जाये, वह नहीं मिलता। इसलिए तुम, प्रतिपल दुखी हो। हर क्षण तुम्हारे सहारे खो जाते हैं।

एक बात खोजने की चेष्टा करना कि कौन-सी चीजें हैं जो खो जायें तो तुम दुखी होओगे। इसके पहले कि वे खोयें, तुम अपनी पकड़ हटाना शुरू कर देना। यह मोह-जय का उपाय है। पीड़ा होगी; लेकिन यह पीड़ा झेलने जैसी है; यह तपश्चर्या है।

कुछ छोड़कर भाग जाने की जरूरत नहीं कि तुम अपनी पत्नी को छोड़कर हिमालय भाग जाना। तुम जहां हो, वहीं रहना। लेकिन पत्नी पर निर्भरता को धीरे-धीरे काटते जाना। कोई जरूरत नहीं कि इससे पत्नी को दुख दो। पत्नी को पता भी नहीं चलेगा; कोई कारण भी नहीं पता चलाने का किसी को।

जीसस ने कहा है कि तुम्हारा बायां हाथ क्या करता है, दायें को पता न चले तो ही तुम ठीक-ठीक साधक हो। क्योंकि दूसरे को पता चलाने की इच्छा भी अहंकार की इच्छा है। तुम पता चलाना चाहते हो दूसरे को कि 'देखो, पत्नी को छोड़ दिया, हिमालय जा रहे हैं! कितना महान कार्य कर दिया!' कुछ भी महान कार्य नहीं। कोई भी पति से पूछो, सभी पति हिमालय जाना चाहते हैं। नहीं जा पाते, यह दूसरी बात है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहुंचा गांव के पागलखाने और उसने द्वार खटखटाया। सुपरिंटेंडेंट ने दरवाजा खोला और कहा कि 'क्या मामला है?' मुल्ला ने कहा, 'क्या कोई आदमी पागलखाने से भाग गया है?' सुपरिंटेंडेंट ने कहा, 'तुम्हें इससे क्या मतलब? और क्या तुमने किसी को भागते देखा?'

नसरुद्दीन ने कहा कि 'नहीं, मेरी पत्नी को लेकर कोई आदमी भाग गया है। तो मैंने सोचा, जरूर कोई पागलखाने से छूट गया है। क्योंकि हम खुद ही छूटना चाह रहे थे, वह अपने हाथ से आ फंसा है।'

पतियों से पूछो! संसार में जो खड़ा है, उसके दुख का कोई अंत नहीं है। भाग नहीं सकता; क्योंकि उसे सुख कहीं दूसरी जगह दिखायी भी नहीं पड़ता, कहां जाए? और जहां जाएगा, संसार साथ तो होगा ही। और फिर, बड़ी आकांक्षाओं से इस जगह को उसने बनाया है और अब इतने बनाने के बाद तोड़ना मुश्किल है; पूरी जिंदगी व्यर्थ होती है।

मोह की खोज करना। जिन चीजों के बिना तुम न रह सको, उनके बिना धीरे-धीरे रहने की भीतरी चेष्टा करना। और, एक ऐसी स्थिति बना लेना कि अगर वे सब भी खो जाएं तो भी तुम्हारे भीतर कोई कम्पन न होगा—तो मोह-विजय हुई। और, यह हो सकता है; यह हुआ है। एक को हुआ है; सभी को हो सकता है।

यह सूत्र कहता है, शिव का : स्थायी रूप से मोह-जय से विद्या फलित होती है। जिस दिन भी मोह-जय हो जाती है, उसी दिन तुम पाते हो कि उस विद्या का तुम्हें अनुभव होने लगा; वह ज्ञान स्फुरने लगा, जो सहज है, जो किसी से सीखा नहीं जाता—वही आत्मज्ञान है।

आत्मज्ञान दूसरे से सीखने की कोई सुविधा नहीं है; वह भीतर स्फुरित होता है। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, जैसे झरने बहते हैं—ऐसा तुम्हारे भीतर जो बह रहा है, कलकल नाद कर रहा है, वह तुम्हारा ही है—सहज; उसे किसी से लेना नहीं। कोई गुरु उसे दे नहीं सकता; सभी गुरु उस तरफ इशारा करते हैं। जब तुम पाओगे, तब तुम पाओगे कि यह भीतर ही छिपा था; यह अपनी ही संपदा है। इसलिए 'सहज विद्या' कहा है।

दो तरह की विद्याएं हैं। संसार की विद्या सीखनी है तो दूसरे से सीखनी पड़ेगी; वह सहज नहीं है। कितना ही बुद्धिमान आदमी हो, संसार की विद्या दूसरे से सीखनी पड़ेगी। और, कितना ही मूढ़ आदमी हो, तो भी आत्मविद्या दूसरे से नहीं सीखनी पड़ेगी। वह तुम्हारे भीतर है। बाधा मोह की है। मोह कट जाता है—बादल छंट जाते हैं, सूर्य निकल आता है!

ऐसे जागृत योगी को 'सारा जगत मेरी ही किरणों का परिस्फुरण है—' ऐसा बोध होता है। और, जिस दिन सहज विद्या का जन्म होता है, जागृति आती है तो दिखाई पड़ता है कि 'सारा जगत मेरी ही किरणों का स्फुरण है।' तब तुम केंद्र हो जाते हो। तुम बहुत चाहते थे कि सारे जगत के केंद्र हो जाओ, लेकिन अहंकार के सहारे वह नहीं हो पाया। हर बार हारे। और अहंकार खोते ही तुम केंद्र हो जाते हो।

तुम जिसे पाना चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायेगा; लेकिन तुम गलत दिशा में खोज रहे हो। तुम भ्रांत मार्ग पर चल रहे हो। तुम जो पाना चाहते हो, वह मिल सकता है; लेकिन जिसके सहारे तुम पाना चाहते हो, उसके सहारे नहीं मिल सकता; क्योंकि तुमने गलत सारथी चुना है। तुमने वाहन गलत चुन लिया है। अहंकार से तुम कभी भी विश्व के केंद्र न बन पाओगे। और, निरहंकारी व्यक्ति तत्क्षण विश्व का केंद्र बन जाता है। बुद्धत्व प्रगट होता है बोधि-वृक्ष के नीचे, सारी दुनिया परिधि हो जाती है; सारा जगत परिधि हो जाता है; बुद्धत्व केंद्र हो जाता है। सारा जगत फिर मेरा ही फैलाव है। फिर सभी किरणें मेरी हैं। सारा जीवन मेरा है—लेकिन, यह 'मेरा' तभी फलित होता हैं, जब 'मैं' नहीं बचता। यही जटिलता है। जब तक 'मैं' है, तब तक तुम कितना ही बड़ा कर लो 'मेरे' के फैलाव को; कितना ही बड़ा साम्राज्य बना लो—तुम धोखा दे रहे हो।

काफी चल चुके हो। अनेक-अनेक जन्मों में भटक चुके हो, फिर भी सजग नहीं हो!

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन हवाई जहाज में सवार हुआ। अपनी

कुर्सी पर बैठते ही उसने परिचारिका को बुलाया और कहा कि 'सुनो ! तेल, पानी, हवा, पेट्रोल, सब ठीक-ठीक हैं न ? ' उस परिचारिका ने कहा कि 'तुम अपनी जगह शांति से बैठो । यह तुम्हारा काम नहीं । यह हमारी चिंता है ।' नसरुद्दीन ने कहा कि 'फिर बीच में उतरकर धक्का देने के लिए मत कहना ।'

मुझे किसी ने बताया तो मैंने नसरुद्दीन को पूछा, 'ऐसी बात घटी ?' उसने कहा, 'घटी । दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है । बस का जला हवाई जहाज में भी चिंता रखता है—बीच में उतरकर धक्का न देना पड़े ।'

तुम बहुत बार जल चुके हो । छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीना तो दूर, तुमने अभी दूध को भी फूंक-फूंक कर पीना नहीं सीखा ।

जीवन की बड़ी-से-बड़ी दुविधा यही है कि हम अनुभव से सीख नहीं पाते । लोग कहते हैं कि हम अनुभव से सीखते हैं; लेकिन दिखाई नहीं पड़ता । कोई अनुभव से सीखता हुआ दिखाई नहीं पड़ता । फिर-फिर तुम वही भूलें करते हो । नयी भी करो, तो भी कुछ कुशलता है । नयी भी करो तो भी कुछ जीवन में गति आए, प्रौढ़ता आए । वही-वही भूलें बार-बार करते हो, पुनरुक्ति करते हो ।

चित्त एक वर्तुल है । तुम उसी-उसी में घुमते रहते हो चाक की तरह और वह चाक चलता है तुम्हारे मोह से । मोह को तोड़ो, चाक रुक जायेगा । चाक के रुकते ही तुम पाओगे कि तुम केंद्र हो । तुम्हें केंद्र बनने की जरूरत नहीं है, तुम हो । तुम्हें परमात्मा बनने की आवश्यकता नहीं है, तुम हो ही । इसलिए वह विद्या सहज है ।

ऐसे जाग्रत योगी को 'सारा जगत मेरी ही किरणों का स्फुरण है'—ऐसा बोध होता है । और, इस बोध का परम आनंद है । इस बोध में परम अमृत है । इस बोध के आते ही तुम्हारे जीवन से सारा अंधकार खो जाता है—सारा सुख, सारी चिंता; तुम एक हर्षोन्माद से भर जाते हो; एक मस्ती, एक गीत का जन्म होता है तुम्हारे जीवन में; तुम्हारी श्वांस-श्वांस पुलकित हो जाती है, सुगंधित हो जाती है—किसी अज्ञात के स्रोत से ।

वह सहज विद्या है; कोई शास्त्र उसे सिखा नहीं सकता । कोई गुरु उसे सिखा नहीं सकता । लेकिन, गुरु तुम्हें बाधाएं हटाने में सहयोगी हो सकता है । इस बात को ठीक से खयाल में ले लेना ।

उस परम विद्या को सीखने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन परम विद्या के मार्ग में जो-जो बाधाएं हैं, उनको दूर करने का उपाय सीखना पड़ता है । ध्यान से वह परम संपदा नहीं मिलेगी; ध्यान से केवल दरवाजे की चाबी मिलेगी । ध्यान से केवल

दरवाजा खुलेगा। वह परम संपदा तुम्हारे भीतर है। तुम ही हो वह—तत्वमसि! वह ब्रह्म तुम ही हो।

सब उपाय बाधाएं हटाने के लिए हैं—मार्ग के पत्थर हट जाएं। मंजिल, मंजिल तुम अपने साथ लिए चल रहे हो। सहज है ब्रह्म; कठिनाई है तुम्हारे मोह के कारण। कठिनाई यह नहीं है कि ब्रह्म को मिलने में देर है; कठिनाई यह है कि संसार को तुमने इतने जोर से पकड़ा है कि जितनी देर तुम छोड़ने में लगा दोगे, उतनी ही देर उसके मिलने में हो जाएगी। इस क्षण छोड़ सकते हो—इसी क्षण उपलब्धि है। रुकना चाहो—जन्मों-जन्मों से तुम रुके हो, और भी जन्म-जन्म रुक सकते हो। वैसे काफी हो गया, जरूरत से ज्यादा रुक लिये। अब और रुकना जरा भी अर्थपूर्ण नहीं है।

समय पक गया है; अब संसार के वृक्ष से तुम्हें गिर जाना चाहिए। और, डरो मत कि वृक्ष से गिरेंगे तो खो जाएंगे। खो जाओगे, लेकिन तुम्हारा जो व्यर्थ है वही खोएगा; जो सार्थक है, वह अनंत गुना होकर उपलब्ध हो जाता है।

आज इतना ही।

डायमंड
पाकेट बुक्स में
डा० विनय द्वारा
डायमंड
शाश्वत कथा माला
महाभारत के अमर पात्र
□ महासती गान्धारी
□ वीरवर कर्ण
□ योगीराज कृष्ण
□ कर्त्तव्यनिष्ठ कुन्ती
□ गान्डीवधारी अर्जुन
□ महाबली भीम
□ पितामह भीष्म
□ धर्मराज युधिष्ठिर
□ आस्थावती द्रौपदी
□ महाराजा धृतराष्ट्र
□ द्रुपद □ शकुनि □ दुर्योधन
□ आस्थानिष्ठ एकलव्य
□ आचार्य द्रौण

डायमंड पाकेट बुक्स में
बंगला साहित्यकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के अविस्मरणीय उपन्यास
आनन्द मठ
कपाल कुण्डला
देवी चौधरानी
दुर्गेशनंदिनी
दुर्गेशनन्दिनी 10.00
कपाल कुण्डला 10.00
मृणालिनी 10.00
देवी चौधरानी 10.00
सीताराम, राधारानी 10.00
विषवृक्ष 10.00
चन्द्रशेखर 10.00
रजनी 10.00
कृष्णकांत का वसीयतनामा 10.00
राजसिंह 10.00
आनन्दमठ 10.00
प्रेमचन्द साहित्य
उपन्यास
निर्मला 10.00
वरदान 12.00
प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र 12.00
सेवासदन 20.00
गोदान 25.00
प्रेमाश्रम 20.00
कर्मभूमि 25.00
रंगभूमि-I 20.00
रंगभूमि-II 20.00
कायाकल्प 20.00
मनोरमा 12.00
रूठीरानी व प्रेमा 12.00
गबन 20.00
नाटक
कर्बला 12.00
संग्राम 12.00
कहानी संग्रह
मानसरोवर भाग-1 20.00
मानसरोवर भाग-2 20.00
मानसरोवर भाग-3 20.00
मानसरोवर भाग-4 20.00
मानसरोवर भाग-5 20.00
मानसरोवर भाग-6 20.00
मानसरोवर भाग-7 20.00
मानसरोवर भाग-8 20.00
कफन 12.00
प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ 15.00
जयशंकर प्रसाद साहित्य
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (काव्य)-I 40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (नाटक)-II 40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (उपन्यास)-III 40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (कहानी-निबन्ध)-IV 40.00
'प्रसाद' की अलग प्रकाशित पुस्तकें
उपन्यास
कंकाल 15.00
तितली 15.00
इरावती 6.00
निबन्ध
काव्य कला तथा अन्य निबन्ध 15.00
कहानी संग्रह
छाया 6.00
इन्द्रजाल 8.00
आकाशदीप 7.00
प्रतिध्वनि 5.00
आंधी 6.00
काव्य
लहर 5.00
कामायनी 8.00
आंसू 5.00
झरना 5.00
महाराजा का महत्व 2.00
प्रेम पथिक 3.00
नाटक
स्कंदगुप्त 10.00
अजात शत्रु 6.00
ध्रुवस्वामिनी 3.00
जनमेजय का नाग यज्ञ 6.00
कामना 5.00
एक घूंट 5.00
चन्द्रगुप्त 10.00
राज्य श्री 5.00
विशाख 6.00
शरत साहित्य
विप्रदास 15.00
शुभदा 12.00
पथ के दावेदार 15.00
देवदास 10.00
पंडित जी 10.00
मंझली दीदी 10.00
दत्ता 10.00
शेष प्रश्न 15.00
देना पावना 10.00
चरित्रहीन 20.00
शेष परिचय 15.00
विराज बहू 10.00
काशीनाथ 10.00
चन्द्रनाथ 10.00
परिणीता 10.00
गृहदाह 15.00
कमला 10.00
श्रीकांत 20.00
बैकुंठ का वसीयतनामा 10.00
देहाती समाज 10.00
समाज का अत्याचार 10.00
ब्राहमण की बेटी 10.00
शरत के नाटक 25.00
देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास
चन्द्रकांता 15.00
चन्द्रकांता सन्तति I 15.00
चन्द्रकांता सन्तति II 15.00
चन्द्रकांता सन्तति III 15.00
चन्द्रकांता सन्तति IV 15.00
चन्द्रकांता सन्तति V 15.00
चन्द्रकांता सन्तति VI 15.00
संस्कृत के महान ग्रन्थ
मृच्छकटिकम् 10.00
कादम्बरी 10.00
नलदमयन्ती (नैषधचरितम्) 10.00
हर्षचरित 12.00
मुद्राराक्षस 12.00
किरातार्जुनीय 12.00
वेणीसंहार 12.00
कालिदास साहित्य
अभिज्ञान शकुन्तलम् 10.00
कालिदास के नाटक 10.00
रघुवंश 10.00
मेघदूत 10.00
डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715 दरियागंज नई दिल्ली-110002

ओशो रजनीश

ओशो रजनीश मनुष्यता की वह विरलतम विभूति हैं जो अपनी कोटि आप ही हैं। हम उनके समयुगीन हैं, यह हमारा सबसे बड़ा सौभाग्य है। लेकिन उनसे हमारी यह सन्निधि ही हमसे उनके विराट को ओझल किये देती है। हिमालय की ऊंचाई और विस्तार देखने के लिए दूरी का परिप्रेक्ष्य चाहिए।

मनुष्य की जो चरम संभावना है, वह ओशो रजनीश में वास्तव हुई है। उन्होंने स्वयं की आदिम, निष्कल, निखिल सत्ता को जाना है। वह मनुष्य में बसी भगवत्ता के गौरीशंकर हैं।

ओशो रजनीश जगत और जीवन को उसकी परिपूर्णता में स्वीकारते हैं। वह पृथ्वी और स्वर्ग, चार्वाक और बुद्ध को जोड़नेवाले पहले सेतु हैं। उनके हाथों पहली बार अखंडित धर्म का, वैज्ञानिक धर्म का, जागतिक धर्म का उद्घाटन हो रहा है। यही कारण है कि जीवन-निषेध पर खड़े अतीत के सभी धर्म उनके विरोध में खड्गहस्त हैं।

ओशो रजनीश स्वतंत्रता को परम मूल्य देते हैं। व्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्ति की गरिमा के वह प्रथम प्रस्तोता हैं। धर्म नहीं, धार्मिकता उनका मौलिक दान है।